वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 391
ISBN 978-93-82071-76-1

समवसरण रचना

(श्री यतिवृषभाचार्य-श्रीवीरसेनाचार्य-श्रीजिनसेनाचार्य-श्रीजिनसेनाचार्य कृत तिलोयपण्णत्ति-धवलाटीका-आदिपुराण-हरिवंशपुराण के आधार से)

-संकलनकर्त्री-

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की सुशिष्या, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वाग्देवी, चारित्रचन्द्रिका, तीर्थोद्धारिका, राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, 250 से अधिक ग्रंथों की लेखिका, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत दिव्यशक्ति, पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा-18 अक्टूबर 2013, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 62वें त्यागदिवस एवं 80वें जन्मदिवस-अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
500 प्रतियाँ	आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, 18 अक्टूबर 2013	100/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

इस बीसवीं सदी में पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने विपुल साहित्य सृजन करके एक अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया है जो इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित रहेगा। पूज्य माताजी ने बड़े-बड़े आध्यात्मिक ग्रंथों के लेखन के साथ ही छोटे-छोटे सभी प्रकार के ग्रंथों की भी रचना की है जिनमें बच्चों के लिये बाल विकास, जैन बाल भारती आदि तथा युवाओं के लिये जीवनदान, आटे का मुर्गा, प्रतिज्ञा आदि प्रेरणास्पद लघु उपन्यास भी लिखे हैं। भक्ति गंगा में सराबोर होने के लिये पूज्य माताजी ने छोटे-बड़े लगभग ४०-५० विधानों की रचना की है जिनके माध्यम से सभी भक्त प्रभु भक्ति में निमग्न होकर प्रसन्न होते हैं।

पूज्य माताजी की लेखनी सतत चलती रहती है जिसके द्वारा नई-नई कृतियों का उद्गम होता रहता है। वर्तमान में पूज्यनीय माताजी अपने ६१ वर्षीय संयमी जीवन में स्वाध्याय किये गये पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत प्राचीन ग्रंथों से आलोडन करके महत्वपूर्ण एवं सर्वजन से अछूते विषयों को लघु पुस्तकों में निबद्ध कर हमें प्रदान कर रही हैं। जिनमें से यह है—"समवसरण रचना" नामक ग्रंथ। प्रथमानुयोग, करणानुयोग के ग्रंथों में समवसरण का वैभव उसकी महिमा का बहुत ही विस्तृत व सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसे "समवसरण रचना" नामक इस ग्रंथ के माध्यम से आप सभी के स्वाध्याय के लिये संस्थान द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। यह कृति आप सबके रत्नत्रय को वृद्धिंगत करते हुए श्रुतज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो यही मंगल भावना है।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	समवसरण वंदना	१
२.	समवसरण रचना (भूमिका)	५
३.	समवसरण रचना (तिलोयपण्णति से)	७
४.	समवसरण रचना (षट्खण्डागम धवला पुस्तक ९ से)	४६
५.	समवसरण रचना (आदिपुराण भाग-१ से)	५१
६.	समवसरण रचना (हरिवंश पुराण से)	११८
७.	समवसरण स्तोत्र	१३७
८.	भगवान ऋषभदेव-समवसरण रचना	१३९
९.	प्रशस्ति	१६२
१०.	समवसरण का ध्यान	१६३
११.	योजन एवं कोस बनाने की विधि	१६५
१२.	चौबीस तीर्थंकरों की कल्याणक तिथियाँ	१६७

आद्य वक्तव्य

-आर्यिका चन्दनामती

धर्मस्नेही प्रिय पाठक बंधुओं!

समवसरण का नाम सुनकर चतुर्थकाल के युग का स्मरण करना है, जब साक्षात् तीर्थंकर भगवान केवलज्ञान प्राप्त करके अधर आकाश में नीलमणि की गोल शिला पर निर्मित समवसरण नाम की दिव्य सभा में विराजमान होते हैं और असंख्य भव्य प्राणियों को दिव्यध्वनि का पान कराते हैं। आज भी ऐसे समवसरण विदेह क्षेत्र में विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तों के पाये जाते हैं, क्योंकि वहाँ शाश्वतकर्मभूमि के रूप में हमेशा चतुर्थकाल की व्यवस्था रहती है।

वर्तमान में हमारे भरतक्षेत्र के अन्दर तीर्थंकर भगवान के अभाव में उनकी प्रतिमाएँ बनाकर जिनमंदिरों में विराजमान की जाती हैं अतः मंदिर के दर्शन समवसरण के समान ही आत्मा को पवित्र बनाने में निमित्त माने जाते हैं।

इस ग्रंथ में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने प्राचीनतम आगम ग्रंथों के आधार से समवसरण के अप्रतिम वैभव का वर्णन प्रस्तुत किया है। इस पूरे ग्रंथ को आद्योपान्त पढ़ने से आपको स्वयं ज्ञात होगा कि आगम सम्मत समवसरण कैसा होना चाहिए। पूज्य माताजी का रोम-रोम शास्त्रीय प्रमाणों से अनुस्यूत रहता है, यही कारण है कि हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की रचनाएँ साकार होकर भगवान महावीर एवं परम्परागत आचार्यों की वाणी को जीवन्तस्वरूप प्रदान कर रही हैं। इसी प्रकार शाश्वत तीर्थ अयोध्या में एवं भगवान ऋषभदेव की दीक्षा-ज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ पर निर्मित समवसरण की रचनाओं में भी शास्त्रीय स्वरूप का ही पूर्ण दिग्दर्शन प्राप्त होता है।

आने वाले शीघ्रकालीन भविष्य में जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के तीर्थ परिसर में भी भगवान शांतिनाथ का समवसरण भी धरती से लगभग ५० फुट की ऊँचाई पर निर्मित होकर आप सभी को भगवान के दिव्य उपदेशामृत का पान कराएगा। पूज्य माताजी की यह कृति युग-युग तक जीवन्त रहे तथा भव्यात्माओं को समवसरण का समीचीन ज्ञान प्राप्त हो, यही समवसरण के अधिपति भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

''समवसरण विंशतिका''

—दोहा —

सरस्वती लक्ष्मी जहाँ, नितप्रति करें प्रणाम।
पुण्यमयी उस धाम का, समवसरण है नाम।।

समवसरण का स्वरूप

छंद-विष्णुपद (कहाँ गये चक्री-बारहभावना)

जहाँ पहुँचते ही दर्शक का पाप शमन होता।
जहाँ पहुँचते ही मानी का मान गलन होता।।
सबको शरण प्रदाता वह ही समवसरण माना।
जिनवर की उस धर्मसभा को नमूँ परमधामा।।१।।

समवसरण के स्वामी

तीर्थंकर प्रभु तप करके बनते केवलज्ञानी।
वे ही बन अरिहंत कहाते समवसरण स्वामी।।
इन्द्राज्ञा से धनकुबेर रचता इक धर्मसभा।
नमूँ उसे नश जाती जिससे भव की पूर्ण व्यथा।।२।।

मानस्तंभ का महत्व

समवसरण की चार दिशा में मानस्तंभ बने।
जिनवर से बारह गुणिते ऊँचे अप्रतिम घने।।
मुख्यद्वार में जाते ही उनका दर्शन होता।
नमूँ वही मानस्तंभ जहाँ मिथ्यात्व वमन होता।।३।।

चैत्यप्रासाद भूमि

प्रथम कोट जो धूलिसाल उससे आगे भूमी।
चैत्यभवन एवं महलों से सहित प्रथम भूमी।।
देव मनुज क्रीड़ा करते वहाँ जाते पुण्यात्मा।
जिनप्रतिमा युत चैत्य भूमि को नमें महानात्मा।।४।।

खातिका भूमि

वेदी के पश्चात् खातिका भू में पुष्प खिले।
जो नव पुष्प कहीं नहिं मिलते वे भी वहाँ मिलें।।
जल से भरी खातिका में भव्यों के भव दिखते।
पावन समवसरण की भू को नमूँ सदा शुचि से।।५।।

लताभूमि

पुनः वेदिका के नन्तर है लताभूमि सुन्दर।
जाते जहाँ मनोरंजन करने को इन्द्र प्रवर।।
कहीं न दिखने वाली दिव्य लताएँ मन हरतीं।
नमूँ तृतिय भूमी को जो संताप सभी हरती।।६।।

उपवन भूमि

दूजे परकोटे के नन्तर उपवन भूमी है।
सप्तच्छद चंपक अशोक वन आम्र की पंक्ती हैं।।
चैत्यवृक्ष चारों दिश में एकेक कहे जाते।
नमूँ जिनेन्द्रों की प्रतिमा मन उपवन खिल जाते।।७।।

ध्वजा भूमि

वेदी के पश्चात् पाँचवी ध्वजाभूमि आती।
दशचिन्हों से युक्त ध्वजा केशरिया लहराती।।
परम अहिंसा का ध्वज लेकर जग में लहराओ।
भक्तिसहित प्रभु समवसरण को बंधु! शीश नावो।।८।।

कल्पभूमि

परकोटा तृतीय के नन्तर कल्पवृक्ष भूमी।
दशविध कल्पवृक्ष से जनता मांग करे पूरी।।
वहाँ बने सिद्धार्थ वृक्ष में सिद्धों की प्रतिमा।
उन सिद्धों को नमते ही निज कार्य सिद्धि करना।।९।।

भवनभूमि

पुनः वेदिका के नन्तर इक भवनभूमि आती।
नव नव स्तूपों से युत महिमा गाई जाती।।
अर्हत् सिद्धों की प्रतिमाएँ उनमें राज रहीं।
उसी भवनभूमी को वंदूँ जो है पुण्यमही।।१०।।

श्रीमण्डपभूमि

चौथा स्फटिकमयी परकोटा श्रीमण्डपभूमी।
समवसरण में सबसे अंतिम है अष्टमभूमी।।
वहाँ बने द्वादश कोठों में भव्यजीव बैठें।
नमन करूँ इस भू को जिसके सम्मुख जिन तिष्ठें।।११।।

बारह सभा वर्णन

गणधर मुनि साक्षात् प्रभू के वचन ग्रहण करते।
प्रथम सभा में इसीलिए स्थान ग्रहण करते।।
पुनः आर्यिका देव-देवियाँ मनुज पशू रहते।
जिनवर की दिव्यध्वनि सुनकर जन्म सफल करते।।१२।।

गंधकुटी की महिमा

समवसरण के मध्य गंधकुटी में हैं तीर्थंकर।
मुख है एक तथापी दिखते सभी ओर जिनवर।।
इसीलिए तो चतुर्मुखी ब्रह्मा माने जाते।
नमूँ प्रभू की गंधकुटी जहाँ दिव्य सुरभि व्यापे।।१३।।

तीर्थंकर महिमा

धर्मतीर्थ जो करें प्रवर्तित तीर्थंकर होते।
चार घातिया कर्म नाश कर वे जिनवर होते।।
उनके कल्याणक में रत्नों की वृष्टी होती।
उन्हें नमूँ तो निश्चित ही मेरी मुक्ती होगी।।१४।।

ॐकाररूप दिव्यध्वनि

तीर्थंकर की दिव्यध्वनि ॐकारमयी खिरती।
सात शतक अट्ठारह भाषामय हो परिणमती।।
समवसरण में देव मनुज पशु सभी समझ जाते।
नमूँ दिव्यध्वनि को जिसको केवलज्ञानी पाते।।१५।।

गणधर की महिमा

श्रीजिनेन्द्र की वाणी गणधर ही झेला करते।
चारज्ञान से द्वादशांग की रचना वे करते।।
भव्यों के प्रश्नों का उत्तर उनसे ही मिलता।
चौदह सौ बावन गणधर को नमूँ हृदय खिलता।।१६।।

प्रमुख श्रोता का पुण्य

दिव्यध्वनि को सुनने वाले एक प्रमुख श्रोता।
होते हैं प्रत्येक समवसरण में इक श्रोता।।
प्रथम भरत अंतिम श्रेणिक ने प्रश्न किये बहुते।
मैं भी बनूँ प्रमुख श्रोता वन्दन कर प्रभु पद में।।१७।।

समवसरण का प्रभाव

जहाँ-जहाँ तीर्थंकर का शुभ समवसरण बनता।
वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष आदि सारा संकट टलता।।
शेर गाय भी वैर छोड़ मैत्री धारण करते।
समवसरण के इस प्रभाव को नमूँ भक्ति करके।।१८।।

तीर्थंकर के श्रीविहार में स्वर्णकमल रचना

केवलज्ञानी तीर्थंकर जब श्रीविहार करते।
समवसरण विघटित हो जाता गमन गमन करते।।
देवप्रभू के चरणकमल तल स्वर्ण कमल रचते।
सोने में सुगंधि को वे चरितार्थ तभी करते।।१९।।

समवसरण दर्शन का महत्व

इस कलियुग में समवसरण साक्षात् नहीं बनते।
चूँकि यहाँ पर तीर्थंकर अब जन्म नहीं धरते।।
फिर भी ये जिनमंदिर भी हैं समवसरण माने।
कालचतुर्थ सदृश इनके दर्शन से भव हानें।।२०।।

समवसरण श्रीविहार की महिमा

ऐसा ही इक समवसरण इस धरती पर आया।
ऋषभदेव के उपदेशों को उसने फैलाया।।
गणिनी माता ज्ञानमती की सूझबूझ जानो।
कलियुग में भी सतयुग का दर्शन पाया मानो।।२१।।

उपसंहार

हे प्रभु! वर दो मुझको सच्चा समवसरण पाऊँ।
समवसरण के स्वामी तीर्थंकर का पद पाऊँ।।
जब तक वह पद मिले नहीं सम्यक्त्व नहीं छूटे।
उसके बाद "चंदनामति" चाहे सब कुछ छूटे।।१।।

—दोहा—

वीर संवत् पच्चीस सौ, चौबिस की कृति जान।
दुतिया कृष्ण आषाढ़ में, किया प्रभू गणगान।।१।।
समवसरण की भक्ति यह, पूर्ण करे सब आश।
यही चन्दनामति हृदय, में है शुभ अभिलाष।।२।।

प्रस्तावना

-आर्यिका सुदृढ़मती (संघस्थ)

सरस्वती लक्ष्मी जहाँ, नितप्रति करें प्रणाम।
पुण्यमयी उस धाम का, समवसरण है नाम।।

जैनशासन में भूतकाल में अनंत तीर्थंकर हो चुके हैं, भविष्यकाल में भी होते रहेंगे तथा वर्तमान काल में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं जिनमें भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर पर्यंत हैं। जैन आगम के अनुसार इन चौबीस तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान तथा निर्वाण ये पाँच कल्याणक मनाए जाते हैं। इनमें से केवलज्ञान कल्याणक होने पर सौधर्मइन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर दिव्य समवसरण की रचना करता है। तीर्थंकर भगवंतों की दिव्य उपदेश सभा का नाम "समवसरण" है अथवा जो सम्यक् प्रकार से भव्यजीवों को शरण प्रदान करने वाला है, जहाँ पर असंख्य भव्यात्मा एक दूसरे को बाधा पहुँचाए बिना शरण को प्राप्त करते हैं, भगवान की दिव्य देशना को श्रवण करते हैं उसे "समवसरण" कहते हैं।

इस पुस्तक में पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने तिलोयपण्णत्ति, षट्खण्डागम् पु. ९, आदिपुराण भाग १ एवं हरिवंशपुराण, इन ४ ग्रंथों के आधार से समवसरण का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से चौबीसों तीर्थंकरों के समवसरण संबंधी संपूर्ण वर्णन का विस्तृत विवेचन किया है, षट्खंडागम, धवला पुस्तक ९ के आधार से ग्रंथकर्ता भगवान महावीर के जीवन चरित्र में उनके समवसरण का सुंदर उल्लेख है, आदिपुराण भाग १ से भगवान ऋषभदेव के समवसरण का तथा हरिवंशपुराण से भगवान नेमिनाथ के केवलज्ञान व समवसरण का विस्तृत वर्णन किया गया है। वर्तमान में इस पंचमकाल में तीर्थंकरों के जन्म न होने के कारण हम साक्षात् "समवसरण" के दर्शन नहीं कर सकते तथा न ही उस दिव्य वैभव को देख सकते हैं। किन्तु आगमरूपी चक्षुओं के द्वारा अर्थात् पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रंथों के आधार से हम उस दिव्य रचना की प्रतिकृति बनाकर उसके दर्शन का पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। उपरोक्त प्राचीन ग्रंथों के अनुसार यह समवसरण भूमि गोल है, आकाश में अधर है, इन्द्रनीलमणि की एक ही शिला पर समतल भाग में ही ८ भूमियाँ होती हैं जिनमें आठवीं श्रीमंडपभूमि में तीन कटनियों से सहित गंधकुटी में सिंहासन से ४ अंगुल अधर तीर्थंकर केवली भगवान विराजमान रहते हैं। पर आज अनेक स्थानों पर ८ भूमियों को कटनीदार बनाकर समवसरण की रचना दर्शाई गई है जो आगम के आधार से नहीं है। आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व अजमेर (सोनी जी की नशिया) एवं सुजनागढ़ में तथा अन्य प्राचीन स्थानों पर बने समवसरण शास्त्रोक्त विधि से समतल भूमि पर ही बने हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित शाश्वत तीर्थ अयोध्या और भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि प्रयाग में शास्त्रोक्त "समवसरण रचना" निर्मित की गई है। तथा हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र में (जंबूद्वीप स्थल पर) भी भगवान शांतिनाथ समवसरण की रचना का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ होकर सुंदर आगमोक्त रचना के दर्शन होंगें। वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का समवसरण १२ योजन (९६ मील) का था तथा घटते-घटते भगवान महावीर के समवसरण का विस्तार १ योजन (८ मील) का रह गया था। यह प्रमाण अवसर्पिणी काल के तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का है। उत्सर्पिणी काल में इससे विपरित क्रम है। विदेहक्षेत्र के सभी तीर्थंकरों की समवसरणभूमि

का प्रमाण १२ योजन ही है क्योंकि वहाँ हमेशा चतुर्थकाल के प्रारम्भ जैसी ही कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है।

सरलता से समझने के लिये इस समवसरण भूमि में ४ परकोटे, ५ वेदियाँ, ८ भूमियाँ एवं ३ कटनी हैं। तीसरी कटनी पर गंधकुटी है। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के आधार से इस समवसरण में देव, मनुष्यों और तिर्यंचों के चढ़ने के लिये चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ऊपर-ऊपर सुवर्णमय बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं।[१] समवसरण का ऐसा माहात्म्य है कि अंधे, लूले, लंगड़े, बालक, वृद्ध, बीमार आदि सभी जन इन सीढ़ियों को अंतर्मुहूर्त—४८ मिनट में ही पार कर लेते हैं। समवसरण में सबसे बाहर धूलिसाल नामक परकोटा है। जो पंचवर्णी रत्नों से निर्मित है जिसमें मार्ग व अट्टालिकाएँ बनी हैं और पताकायें फहरा रही हैं।

इस परकोटे में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के चार गोपुर द्वार होते हैं। जैसा कि कहा है–

"विजयं तु पुव्वदारं दक्खिणदारं च वइजयंतं ति। पच्छिमउत्तरदारा जयंतअपराजिदा णामा[२]।।७३५।।

"एक्केक्क गोउराणां बाहिरमज्झम्मि दारदो पासे। बाउलया वित्थिण्णा मंगलणिहिधूवघडभरिदा[३]।।७३७।।

प्रत्येक 'गोपुर' के बाहर और मध्यभाग में द्वार के दोनों पार्श्वभागों में आठ मंगल द्रव्य, नव निधियाँ रखी रहती हैं। बहुत सी पुत्तलिकाएँ बनी हुई होती हैं जिनके मस्तक पर धूपघट रखे हुए रहते हैं। इन धूपघटों में हमेशा अग्नि जलती रहती है जिनमें देवगण धूप खेया करते हैं। ये ८ मंगलद्रव्य और ९ निधियाँ प्रत्येक १०८-१०८ वहाँ रहते हैं।

इस धूलिसाल के अभ्यंतर भाग में चारों तरफ से वेष्टित ऐसी प्रथम चैत्यप्रासाद भूमि है। इनमें एक-एक जिनमंदिर ऊँचे-ऊँचे बने होते हैं और एक-एक मंदिर के अंतराल में पाँच-पाँच प्रासाद बने होते हैं। जो नाना प्रकार के उद्यान, बावड़ी आदि से मनोहर तथा तीर्थंकर भगवान की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे होते हैं। इस प्रथमभूमि में चारों तरफ गलियों में सुवर्ण-रत्न से निर्मित दो-दो नाट्यशालाएँ बनीं रहती है। जिनमें प्रत्येक में ३२-३२ रंगभूमियाँ और एक-एक रंगभूमि में ३२-३२ भवनवासी देवांगनाएँ तीर्थंकरों के विजयगीत गाती, नृत्य करती रहती हैं और पुष्पांजलि क्षेपण करती रहती हैं। इस चैत्यप्रासाद भूमि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के आधार से है क्योंकि अन्य ग्रंथों में ७ भूमियाँ ही बताई गई हैं।

प्रथम पृथिवी के बहुमध्यभाग में चारों गलियों के बीचों-बीच मानस्तंभ भूमियाँ हैं। इन मानस्तंभ भूमि के चारों तरफ गोपुर द्वारों से सहित परकोटा है। इनमें तीन परकोटों में से अभ्यंतर कोट के बीच में तीन कटनियाँ हैं जिनमें तीसरी कटनी के बीचों-बीच में मानस्तंभ खड़े हुए हैं। ये मानस्तंभ अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे होते हैं। इन मानस्तंभों में ऊपरी भाग में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमाएँ विराजमान होती हैं। इन प्रतिमाओं मे ंआठ-आठ प्रातिहार्य रहते हैं। ऊपर शिखर बने हुए हैं जिनमें ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। इन मानस्तम्भों को देखने मात्र से मिथ्यादृष्टि एवं महामानियों का भी मान गलित हो जाता है इसलिये इनका मानस्तंभ यह नाम सार्थक है।

आदिपुराण के अनुसार कहा भी है–

हिरण्मयांगाः प्रोत्तुंगा मुर्ध्निच्छत्रत्रयांकिताः। सुरेन्द्रनिर्मितत्त्वाच्च प्राप्तेन्द्रध्वजरूढिकाः।।१०१।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, श्लोक ७२०, पृ० २३३। २-३. तिलोयपण्णत्ति, पृ. २३६।

मानस्तंभान्महामान-योगात्त्रैलोक्यमानतात्। अन्वर्थसंज्ञया तज्ज्ञैर्मानस्तंभाः प्रकीर्तिताः[१]।।१०२।।

अर्थ—इन मानस्तंभों के ऊपर तीन छत्र फिर रहे थे, इन्द्र के द्वारा बनाये जाने के कारण उनका (मानस्तंभों का) 'इन्द्रध्वज' यह नाम भी रूढ़ हो गया था। उनके दर्शन से मिथ्यादृष्टि जीवों का सब मान नष्ट हो जाता है, वे बहुत ऊँचे प्रमाणवाले थे और तीनों लोकों के जीव उनका सम्मान करते थे इसलिये इनका 'मानस्तम्भ' यह नाम सार्थक था। इस चैत्यप्रासाद भूमि को वेढ़कर प्रथम वेदी है। प्रथम वेदी के आगे स्वच्छ जल से भरी खातिका भूमि है जो अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से चतुर्थभाग प्रमाण गहरी होती है। पुनः वेदी है जिसके आगे तीसरी लता भूमि है जिसमें पुन्नाग, नाग, कुब्जक आदि की बेलें सुंदर पुष्पों से युक्त होती हैं। इस लतावन को घेरकर दूसरा कोटा अर्थात् परकोटा है। हरिवंशपुराण में कहा है–सुवर्णमयी इस कोट के गोपुरद्वारों के रक्षक व्यंतर जाति के देव द्वारपाल हैं जो कटक आदि आभूषणों से सुंदर हैं, मुद्गर हाथ में लिये रहते हैं और अपने प्रभाव से अयोग्य व्यक्तियों को दूर हटाते रहते हैं[२]। चौथी उपवनभूमि में अशोक, सप्तच्छद, चंपा और आम के बगीचे हैं। इन चारों वनों के बीच-बीच में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं। ये तीर्थंकर की ऊँचाई से १२ गुने ऊँचे हैं। इन चैत्यवृक्षों में चारों दिशाओं में एक-एक अर्हंत देव की मणिमय प्रतिमाएँ विराजमान हैं। एक-एक चैत्यवृक्षों के आश्रित-प्रतिमाओं के सामने एक-एक मानस्तंभ बने हुए हैं। जिनमें प्रत्येक में चार-चार प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये चैत्यवृक्ष पृथ्वीकायिक रत्नों से निर्मित हैं।

उपवनभूमि में बनी वापिकाओं में स्नान करने से मनुष्य अपना एक भव देख लेते हैं। और उन वापिकाओं के जल में अपना मुख देखने से अपने पूर्व के तीन, वर्तमान का एक और भविष्यत् के तीन ऐसे ७ भव देख लेते हैं।[३] हरिवंशपुराण में भी इन बावड़ियों का वर्णन बहुत ही सुंदर है—चारों दिशाओं में स्थित वापियों की पूजा करने पर ये क्रमशः उदयफल, विजयफल, प्रीतिफल और ख्यातिफल को देती हैं[४]। पांचवीं ध्वजाभूमि में दिव्य ध्वजाएँ हैं। जो सिंह, गज आदि १० प्रकार के चिन्हों से चिन्हित हैं। ये चारों दिशाओं में प्रत्येक प्रकार की १०८-१०८ होती हैं और इनमें भी प्रत्येक की १०८ क्षुद्रध्वजाएँ होती हैं जो सभी रत्नों से निर्मित हैं।

छठी कल्पवृक्षभूमि में दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं जो अपने नाम के अनुसार ही वस्तुएँ प्रदान करते हैं। सातवीं भवनभूमि में ऊँचे-ऊँचे भवन बने हुए हैं, जिनमें जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं जिनका देवगण नित्य अभिषेक करते रहते हैं। इस भूमि में सिद्धों की प्रतिमाओं से सहित प्रत्येक दिशा में रत्नों से बने ९-९ स्तूप हैं। भव्यजीव इन स्तूपों का अभिषेक पूजन और प्रदक्षिणा करते हैं। ये स्तूप ऐसे दिखते हैं मानों भगवान की नौ केवल लब्धियाँ ही हों।[५]

अंतिम आठवीं श्रीमंडपभूमि है। इसमें १२ कोठे बने हुए हैं। जिनके बीच में निर्मल स्फटिकमणि की १६ दीवालें हैं। इन बारह कोठों में पूर्व दिशा से प्रदक्षिणा के क्रम से ऋषि, मुनि आदि १२ गण बैठते हैं। समवसरण के प्रभाव से सभी कोठों में बैठने वाले भव्यजीव पूर्व वैर को छोड़कर परस्पर में मैत्री भाव को धारण करते हैं। आठवीं भूमि के मध्य में तीन कटनी—पीठ हैं जिनमें प्रथम कटनी स्फटिकमणी की है जिस पर चारों दिशाओं में एक-एक यक्षेन्द्र अपने मस्तक पर धर्मचक्र को लिये स्थित रहते हैं तथा यहीं पर अष्टमंगल द्रव्य भी

---

१. आदिपुराण पर्व २२ पृ. ५१६। २. हरिवंशपुराण सर्ग ५७, पृ० ६४८। ३. तिलोयपण्णत्ति अ. ४. पृ. २४८। ४. हरिवंशपुराण सर्ग ५७, पृ. ६४८-६४९। ५. आदिपुराण पृ. ५३३।

होते हैं। दूसरी स्वर्णमयी कटनी—पीठ है जहाँ पर मणिमय स्तंभों पर ८ प्रकार के चिन्हों से सहित महाध्वजाएँ रहती हैं। तथा अंतिम तृतीय कटनी पर एक सुंदर गंधकुटी होती है जो माला, चंवर किंकिणी आदि से सुशोभित रहती है। यहाँ चंदन आदि सुगन्धित धूपों से सहित धूपघट रहते हैं। इस गंधकुटी के मध्य स्फटिकमणि से निर्मित भगवान की ऊँचाई के योग्य रमणीय सिंहासन है। जिस पर आकाश में चार अंगुल अधर केवली भगवान विराजमान होते हैं। जिसमें एक ओर मुख करके भगवान बैठते हैं पर चार मुख दिखते हैं यह केवलज्ञान का अतिशय है। उस गंधकुटी के ऊपर शिखर रहते हैं जिनपर करोड़ों ध्वजाएँ फहराती हैं, ऐसे शिखरों से सहित वह गंधकुटी नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित है।[१] भगवान के समवसरण में ८ प्रतिहार्य भी होते हैं—अशोकवृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, छत्रत्रय, चामर, देवदुंदुभि, भामंडल, सिंहासन और दिव्यध्वनि। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में इस दिव्यध्वनि को केवलज्ञान के अतिशय में लिया है। यह दिव्यध्वनि ऊँकारमय खिरती है जो ७१८ भाषाओं में परिणत होती है जिसे समवसरण में बैठे देव, मनुज, पशु-पक्षी सभी अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं।

भगवान के समवसरण में भगवान के यक्ष-यक्षिणी भी रहते हैं जिन्हें शासन देव-देवी भी कहते हैं, जिनके नाम तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के पृ० २६६-२६७ के आधार से दिये गए हैं। समवसरण के माहात्म्य से बालक, वृद्ध आदि सभी जीव वहाँ प्रवेश करने तथा बाहर निकलने में अंतर्मुहूर्त काल के भीतर ही असंख्यात योजन चले जाते हैं और थकान नहीं होती है। वहाँ कोठों में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और मनरहित असंज्ञी जीव नहीं होते हैं तथा वहाँ जिनेन्द्र भगवान के प्रभाव से आतंक, रोग, मरण , वैर, क्षुधा, तृषा आदि भी नहीं होते हैं[२]।

इस प्रकार अतीव महिमाशाली तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ वैभव से युक्त इस समवसरण की महिमा का वर्णन शब्दों में करना अत्यंत दुर्लभ है। पूज्य माताजी जैसे महान गुरुओं के कृपाप्रसाद से हमें पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत इन अमूल्य कृतियों में से मक्खन के रूप में निकले ऐसे सुन्दर-सुन्दर विषयों का रसास्वादन करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो रहा है। समवसरण में विराजित समस्त अर्हंत केवली भगवान के चरणों में कोटि-कोटि वंदन करते हुए यह अभिलाषा करते हैं कि हे प्रभु! जब तक हमें भी साक्षात् ऐसे समवसरण के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता तब तक हमारा सम्यक्त्व रूपी रत्न न छूँटे। तथा यही सम्यकदर्शन एक दिन क्षायिक सम्यक्त्व में परिणत होकर परम उत्कृष्ट केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कराने में प्रबल कारण बने यही मंगल भावना है।

१. आदिपुराण पर्व २३, पृ. ५४९। २. तिलोयपण्णत्ति अ. ४ पृ. २६६-२६७।

श्री यतिवृषभ आचार्य

श्री गुणधर आचार्य रचित "कषायपाहुड" गाथा सूत्रों पर चूर्णिसूत्रों की रचना करने वाले आचार्य का नाम "यतिवृषभ" है। जयधवला टीका के निर्देशानुसार आचार्य यतिवृषभ ने आर्यमंक्षु और नागहस्ति से कसायपाहुड की गाथाओं का सम्यक् प्रकार अध्ययन कर अर्थ अवधारण किया और कसायपाहुड पर चूर्णिसूत्रों की रचना की। अतः दिगम्बर संप्रदाय में चूर्णिसूत्रों के प्रथम रचयिता होने के कारण इन यतिवृषभ आचार्य का अत्यधिक महत्त्व है।

समय निर्णय—इनके विद्यागुरु के नाम आर्यमंक्षु और नागहस्ति बताए गए हैं। ऐसा जयधवला के मंगलाचरण से स्पष्ट होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि यतिवृषभ ने नागहस्ति और आर्यमंक्षु से ज्ञान प्राप्त कर चूर्णिसूत्रों की रचना की। इस दृष्टि से इनका समय वी. नि. सं. की ७ वीं शताब्दी आता है। चूँकि ये भूतबलि आचार्य के समकालीन अथवा उनके कुछ ही उत्तरवर्ती प्रतीत होते हैं अतः यतिवृषभ का समय वि. सं. ६६६ के पश्चात् नहीं हो सकता है।

श्री नेमिचंद ज्योतिषाचार्य ने "यतिवृषभ" का समय ईस्वी सन् की द्वितीय शती माना है[१]।

रचना—यतिवृषभ की दो ही कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—(१) कषायपाहुड "चूर्णिसूत्र" (२) तिलोयपण्णत्ति। चूर्णिसूत्र रचना महान सिद्धान्त है और तिलोयपण्णत्ति की रचना में तीन लोक का सविस्तार वर्णन बहुत ही सुन्दर किया है। तथा इस तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में चौबीसों तीर्थंकरों के समवसरणों का भी संपूर्ण वर्णन विस्तारपूर्वक किया है, जो इस पुस्तक में यथावत् प्रस्तुत किया गया है। पं. हीरालालजी शास्त्री के मतानुसार आचार्य श्री यतिवृषभ की एक अन्य रचना "कम्मपयडि" चूर्णि भी है जिसका उल्लेख उन्होंने "कसायपाहुडसुत्त" की प्रस्तावना में किया है।

इनके द्वारा रचित दोनों ग्रंथ महान प्रमाणता की कोटि में आते हैं। ये आचार्य परमागम रूप सिद्धान्त के और भौगोलिक विषय के तथा बीजगणित आदि के उच्चकोटि के विद्वान थे इस प्रकार से श्री यतिवृषभ आचार्य के वचनों की प्रमाणता को समझकर उनके ग्रंथों पर पूर्ण श्रद्धान रखना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

आचार्य श्री वीरसेन

धवलाटीका की प्रशस्ति में आचार्य देव ने स्वयं अपने गुरु का नाम एलाचार्य लिखा है और इसी प्रशस्ति की चौथी गाथा में गुरु का नाम आर्यनंदि तथा दादा गुरु का नाम चंद्रसेन कहा है। डॉ. हीरालाल जैन का अनुमान है कि एलाचार्य इनके विद्यागुरु और आर्यनंदि इनके दीक्षागुरु थे। इस प्रशस्ति से श्री वीरसेनाचार्य सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण और न्याय के वेत्ता थे, ऐसा स्पष्ट है।

समयकाल—इनके शिष्य जिनसेन ने इनकी अपूर्ण जयधवला टीका को शक संवत् ७५९ की फाल्गुन शुक्ला दशमी को पूर्ण किया है अतः इस तिथि के पूर्व ही वीरसेनाचार्य का समय होना चाहिए। इसलिये इनका समय ईस्वी सन् की ९ वीं शताब्दी (८१६) का है।

---

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा।

रचनाएँ—इनकी दो ही रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक धवला टीका और दूसरी जयधवला टीका। इनमें से द्वितीय टीका तो अपूर्ण रही है। इन्होंने ७२००० श्लोक प्रमाण में समस्त षट्खण्डागम पर "धवला" नाम से टीका रची। यह टीका प्राकृत और संस्कृत भाषा में मिश्रित होने से मणिप्रवाल न्याय से प्रसिद्ध है। षट्खंडागम धवला पु. ९ में ग्रंथकर्ता भगवान महावीर के समवसरण का सुंदर विवेचन किया है। जिसे इस पुस्तक में वैसा ही उल्लिखित किया गया है। दूसरी रचना "कसायपाहुड सुत्त" पर जयधवला नाम से टीका है। इसको वे केवल २०००० श्लोक प्रमाण ही लिख पाये थे कि वे असमय में स्वर्गस्थ हो गये। इन्होंने अपने जीवन में ९२००० श्लोक प्रमाण रचना लिखी यह एक आश्चर्य की बात है।

आचार्य श्री वीरसेन स्वामी अपने पूर्वाचार्यों के वचनों को साक्षात् भगवान की वाणी मानते थे और जहाँ कहीं दो मत आते थे तो उनमें से किसे सत्य माना जाय इसका निर्णय स्वयं न करके यह बात केवली, श्रुतकेवली के गम्य है ऐसा कहकर दोनों प्रकरण रखते थे। ये इनकी पापभीरूपा का द्योतक है। जैसे—एक जगह वनस्पति के विषय में कुछ प्रश्न होने पर वीरसेन स्वामी कहते हैं—"गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो" अर्थात् यहाँ गौतमस्वामी से पूछना चाहिए हम इसका उत्तर नहीं दे सकते। अतः ऐसे प्रकरणों से आज के साधुओं एव विद्वानों को शिक्षा लेनी चाहिए कि वे आगम के किसी भी विषय में निर्णय देते समय आचार्यों को अथवा उनके ग्रंथों को अप्रमाणिक कहने में अतिसाहस न करें।

आचार्य श्री जिनसेन स्वामी (आदिपुराण कर्ता)

आचार्य श्री जिनसेन सिद्धान्त और पुराण के रचयिता अपने समय के एक महान आचार्य हुए हैं। इन्हें आज भगवज्जिनसेनाचार्य एवं इनके महापुराण को "आर्षग्रंथ" के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस महापुराण के अन्तर्गत ही यह आदिपुराण ग्रंथ है।

इन्होंने किस, कुल, जाति और देश को विभूषित किया यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता फिर भी इनका सम्बन्ध चित्रकूट के साथ होने से तथा राजा अमोघवर्ष द्वारा सम्मानित होने से इनका जन्मस्थान महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमाभूमि अनुमानित किया जा सकता है।

आपने अपने दीक्षित जीवन का परिचय अपने "जयधवला" ग्रंथ की प्रशस्ति में स्वयं दिया है। "श्री वीरसेन स्वामी" आपके गुरु थे तथा दादा गुरु का नाम आर्यनंदि था। वीरसेन के गुरू भाई जयसेन थे। यही कारण है कि जिनसेन ने अपने आदिपुराण में "जयसेन" का भी गुरु रूप में स्मरण किया है।

इनके बारे में कहा जाता है कि इन्होंने बहुत छोटी उम्र में दीक्षा ले ली थी। किंवदंती भी यही है कि इनका कर्णवेधन संस्कार भी नहीं हुआ था जब ये दिगम्बर मुनि के पास अध्ययन हेतु छोड़ दिये गए थे। इनका सिद्धान्त, काव्य, अलंकार, न्याय, छंद, ज्योतिष, गणित, राजनीति आदि सभी विषयों पर पूर्ण अधिकार था जभी इन्होंने स्वयं को सरस्वती से विवाहने वाला कहा है।

समय—जयधवला की टीका की प्रशस्ति में स्वयं ही आचार्य ने लिखा है कि शक संवत् ७५९ फाल्गुन शुक्ला १० के दिन पूर्वाण्ह में यह टीका पूर्ण हुई अतः ईसवी सन् की ८वीं शती का उत्तरार्ध ही इनका समय है।

रचनाएँ—(१) जयधवला टीका (२) पार्श्वाभ्युदय (३) वर्धमान पुराण (४) आदिपुराण (महापुराण)।

इनमें से वर्धमान पुराण अभी तक उपलब्ध नहीं है। महापुराण के पूर्वार्ध को "आदिपुराण" तथा उत्तरार्ध को "उत्तरपुराण" कहते हैं। पूर्वार्ध आदिपुराण में ४७ पर्व हैं जिनमें प्रारम्भ के ४२ पर्व और ४३ वें पर्व के मात्र ३ श्लोक जिनसेनाचार्य द्वारा रचित हैं। शेष पर्वों के १६२० श्लोक उनके शिष्य श्री गुणभद्राचार्य द्वारा विरचित हैं। इस पुस्तक में आदिपुराण भाग-१ में वर्णित भगवान ऋषभदेव के जीवन दर्शन में से उनके समवसरण का संपूर्ण विस्तृत वर्णन लेकर ज्यों का त्यों दिया गया है।

इस पुराण को महापुराण क्यों कहा इसके लिये भी जिनसेनाचार्य ने कहा है–यह ग्रंथ अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है इसलिये "पुराण" पुराना कहलाता है। इसमें महापुरुषों का वर्णन है अथवा तीर्थंकर आदि महापुरुषों ने इसका उपदेश दिया है अथवा इसके पढ़ने से महान कल्याण की प्राप्ति होती है इसलिये इसे "महापुराण" कहते हैं। इसमें ६३ शलाका पुरुषों का जीवन संग्रहीत है।

आचार्य श्री जिनसेन (हरिवंशपुराणकर्ता)

हरिवंश पुराण के रचयिता आचार्य श्री जिनसेन पुन्नाट संघ के थे। ये महापुराण (आदिपुराण) के कर्ता जिनसेन से भिन्न हैं। इनके गुरू का नाम कीर्तिषेण तथा दादागुरू का नाम जिनसेन था। पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम है इसलिये इस देश के मुनिसंघ का नाम पुन्नाट संघ था। जिनसेन के जन्मस्थान, माता-पिता तथा प्रारम्भिक जीवन का कुछ भी उल्लेख उपलब्ध नहीं है। गृहविरत के लिये इन सबके उल्लेख की आवश्यकता भी नहीं है। आचार्य जिनसेन बहुश्रुत विद्वान थे—यह हरिवंशपुराण के स्वाध्याय से स्पष्ट हो जाता है। हरिवंश पुराण पुराण तो है ही साथ में इसमें जैन वाङ्गमय के विविध विषयों का अच्छा निरूपण किया गया है इसलिये यह जैन साहित्य का अनुपम ग्रंथ है। ग्रंथकर्ता ने अपनी गुरूपरम्परा में अमितसेन को पुन्नाटगण का अग्रणी तथा शतवर्ष जीवी बताया है।

रचना स्थान व काल—जिनसेनाचार्य ने हरिवंश पुराण के अंतिम सर्ग के ५२ वें श्लोक में हरिवंश का रचना काल शक संवत् ७०५ लिखा है जो वि. सं. ८४० होता है। हरिवंश पुराण की रचना का प्रारम्भ वर्द्धमानपुर (बढ़वाण) के पार्श्वनाथ जिनालय में जो कि नन्नराज वसति के नाम से प्रसिद्ध था हुआ तथा समाप्ति दोस्तटिका के शांतिनाथ जिनालय में हुई।

हरिवंशपुराण में श्री जिनसेनाचार्य ने मुख्यतया २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान का चरित्र लिखा है परन्तु प्रसंगोपात्त अन्य कथानक भी इसमें लिखे हैं। भ. नेमिनाथ के चरित्र में उनके केवलज्ञान कल्याणक के वर्णन में समवसरण का आद्योपांत सुन्दर विवेचन किया है जिसे इस पुस्तक के माध्यम से आप सभी को पढ़कर ज्ञान एवं पुण्य के अर्जन का विशेष अवसर प्राप्त हो रहा है।

राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

१. जन्म, वैराग्य और दीक्षा-२२ अक्टूबर सन् १९३४, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में "मैना" का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र १८ वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् १९५२ में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में २४ घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।

नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् १९५३ में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् १९५५ में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् १९५६ में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके "**आर्यिका ज्ञानमती**" नाम प्राप्त किया।

२. अध्ययन और अध्यापन-ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि

अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

३. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से-भगवान महावीर के पश्चात् २६०० वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् १९५४ में सहस्त्रनाम के १००८ मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् १९६९-७० में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग २५० से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

४. सिद्धांत चक्रेश्वरी-पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की सोलहों पुस्तकों के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। क्रम-क्रम से हिन्दी टीका सहित इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य चल रहा है। आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा १००० वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

५. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् १९६९ में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन

भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् १९७८ में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग १०० विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

६. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-सन् १९८५ में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् १९९८ में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। ११ जून २००० को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ (Proceedings) प्रस्तुत हो चुकी हैं।

७. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ-किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा ५ फरवरी १९९५ को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं। पुनः इसके उपरांत ८ अप्रैल २०१२ को पूज्य माताजी के ५७वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

८. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम-त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् १९५६-५७ में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री

शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् १९६७ में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवक यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के प्रथम पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की शृँखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी, आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चन्दनामती) तथा आर्यिका श्री सम्मेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी आदि अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका, महावीर स्तोत्र की संस्कृत टीका एवं कतिपय संस्कृत रचनाएँ लिखने का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है।

६१ वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

९. तीर्थ विकास की भावना-तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम **भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर'** में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् १९९३ से १९९५ तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्त्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान

कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-**खेरवाड़ा में** कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, **पिड़ावा में** समवसरण रचना की प्रेरणा, **सोलापुर (महा.) में** भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, **श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में** मंदारवृक्ष की स्थापना, **अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में** पारिजातवृक्ष की स्थापना, **केकड़ी (राज.) में** सम्मेदशिखर की रचना आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की **जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)** के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि **'राजगृही' में** 'मुनिसुव्रतनाथ जिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली **पावापुरी में** जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली **गुणावां जी में** गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, **श्री सम्मेदशिखर जी में** भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की शृँखला में **भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में** 'श्री पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' का निर्माणकार्य होकर उसमें भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा ९ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हो चुकी हैं।

तीर्थंकरों की शाश्वत **जन्मभूमि अयोध्या में** वर्तमानकालीन वहाँ जन्में पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर आपने संस्कृति को जीवन्त करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। उस शृँखला में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सुन्दर कलात्मक मंदिर बनकर उसमें सवा चार फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा सरयू नदी के तट पर भगवान अनन्तनाथ के मंदिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक सम्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार क्रमशः अन्य टोकों पर भी मंदिरों के शिलान्यास होकर निर्माण चल रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल-**माधोराजपुरा (राज.) में** भी 'गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम सम्मेदशिखर पर्वत का निर्माण करके १५ फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई हैं। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा २१ नवम्बर से २६ नवम्बर २०१० तक पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (वर्तमान पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन हुई है।

इसी शृँखला में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती,

क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक २९ जनवरी से २ फरवरी २०१२ तक सानंद सम्पन्न किया गया।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थंकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना-

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने वाली इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् २००७ में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान २१२७ जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं ५६ फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् २०१० में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद लगा रही हैं।

१०. विश्व में अनोखी १०८ फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा-विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से द्रुतगति से चल रहा है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

११. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ-शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्त रूप ले रही है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो चुका है और अब वहाँ सुन्दर कमल मंदिर का निर्माण किया जा रहा है।

१२. जृम्भिका तीर्थ विकास की प्रेरणा-भगवान महावीर स्वामी की कैवल्य भूमि जृंभिका जो आज बिहार प्रान्त में जमुई के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ एक नूतन भूमि पर भगवान की प्रतिमा विराजमान हो चुकी है तथा इस जृम्भिका तीर्थ का विकास हो रहा है, जो शीघ्र ही भक्तों के तीर्थयात्रा की श्रेणी में आएगा।

१३. धर्मप्रभावना के विविध आयाम-जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का संचालन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली से उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्डरूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् १९९८ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् भगवान ऋषभदेव की दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'समवसरण मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों

तक के लिए भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिला रहा है। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् २००३ में 'भगवान महावीर ज्योति रथ' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी शृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने सन् १९९७ में राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, जिसका झण्डारोहण पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने किया एवं दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह तथा श्रीमती सुषमा स्वराज आदि अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' (सन् १९९७-१९९८ में) तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (सन् २००० में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित) भी पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित हुए एवं हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित कर रहे है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

१४. संघर्ष विजेत्री-पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है।

१५. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्त्राब्दि महोत्सव का आयोजन-२३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में ६ जनवरी २००५ को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्त्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष २००६ को "सम्मेदशिखर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर २००७ में अहिच्छत्र में आयोजित 'सहस्त्राब्दि महामस्तकाभिषेक' के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

१६. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती -वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. २५३२ अर्थात् १५ अप्रैल २००६ को अपनी आर्यिका दीक्षा के ५० वर्ष पूर्ण करने वाली प्रथम साध्वी पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में १४ से १६ अप्रैल २००६ तक **'गणिनीप्रमुख**

श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव' का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

१७. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने-२१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् २००९ "शांति वर्ष" में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

१८. 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाने की प्रेरणा-बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष २०१० को "प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, ११ जून २०१० को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, ३१ मई २०११ तक यह वर्ष पूरे देश के विभिन्न अंचलों में अनेक धर्मप्रभावनात्मक कार्यक्रमों के साथ विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया गया।

१९. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष मनाने की प्रेरणा-शरदपूर्णिमा-२०११ के शुभ अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, जो पूज्य माताजी के दीक्षा गुरु भी हैं, का वर्ष मनाने की घोषणा की अतः यह वर्ष समाज द्वारा विभिन्न आयोजन पूर्वक सानंद मनाया गया।

२०. चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा की आयु है, अर्थात् १८ वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के ६० वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये। इसीलिए इनके ७९वें जन्मदिवस एवं ६१वें त्यागदिवस पर हमने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के आह्वान पर चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष २०१२-२०१३ मनाने की घोषणा की। इस वर्ष में सभी को शक्ति अनुसार चारित्र ग्रहण करने का संदेश दिया गया।

२१. मंगलमय अमृत महोत्सव — अब पूज्य माताजी के ८०वें जन्मदिवस को शरदपूर्णिमा-१८ अक्टूबर २०१३ को "गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव" के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा है। इस अवसर पर "सम्मेदशिखर विधान" के ८० मांडले बनाकर ८० परिवारों के द्वारा उनकी पूजन करने का विहंगम दृश्य उपस्थित होने जा रहा है। ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में "आचार्य शांतिसागर धाम" नामक स्मारक का निर्माण किया जा रहा है, जो आचार्य श्री की सम्मेदशिखर यात्रा (सन् १९२७-२८ में की गई) की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराएगा।

इन चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो एवं आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ का भारत भ्रमण

(एक दिव्य अनुभूति)

-ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

तीर्थंकर भगवान को जब दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति होती है तब सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर अर्धनिमिष मात्र में आकाश में अधर दिव्य "समवसरण" की रचना कर देता है जिसमें आठ भूमियाँ एवं ३ कटनी होती हैं जिसके ऊपर गंधकुटी में तीर्थंकर भगवान विराजमान होते हैं। उस समवसरण की अचिन्त्य महिमा है जिसमें पूर्व दिशा में मुख करके विराजमान भगवान चारों दिशाओं में दिखने से "चतुर्मुखी ब्रह्मा" कहलाते हैं। बारह सभा में बैठे मुनि, आर्यिका, मनुष्य, देव-देवियां, तिर्यंच आदि भगवान की ऊँकारमयी दिव्यध्वनि को अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं। अन्धे, पंगु, रोगी, बालक आदि अन्तर्मुहूर्त में २० हजार सीढ़ी पार कर जाते हैं। जहां परस्पर में जन्मजात विरोधी पशु भी मित्रता के साथ रहें ऐसी व्यवस्था जैनशासन के अतिरिक्त कहीं भी नहीं मिलती है। ऐसी अनेकानेक विशेषताओं से समन्वित उस दिव्य समवसरण का दर्शन इस भरतक्षेत्र में पंचमकाल में सम्भव नहीं है किन्तु उसकी आगमोक्त प्रतिकृति के दर्शन का सौभाग्य सन् १९९८ में भारत की जनता को घर बैठे उस समय प्राप्त हुआ जब जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, साक्षात् सरस्वती स्वरूपा, परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी को ज्ञात हुआ कि लौकिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक कहकर पढ़ाया जाता है। उस समय पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा "भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ एवं ऐरावत हाथी रथ" का शुभारम्भ २२ मार्च १९९८, चैत्र कृ० नवमी-ऋषभ जयन्ती के पावन दिन राजधानी दिल्ली के लाल किला मैदान से हुआ पुनः जैनधर्म की प्राचीनता एवं भगवान ऋषभदेव के अहिंसामयी-सर्वोदयी सिद्धान्तों एवं शाकाहार-सदाचार की भावना को भारत के कोने-कोने में पहुँचाने हेतु चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, महावीर जयन्ती के पावन दिन ९ अप्रैल, १९९८ को राजधानी दिल्ली के तालकटोरा इन्डोर स्टेडियम से भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय श्री अटलबिहारी वाजपेयी के द्वारा श्री वी० धनन्जय कुमार जी जैन (वित्तराज्य मंत्री-भारत सरकार) की अध्यक्षता में भारत भ्रमण हेतु इसका प्रवर्तन कराया गया।

राजधानी दिल्ली में २२ मार्च से २ मई १९९८ तक विभिन्न कालोनियों में सफल प्रवर्तन के साथ धर्म की ध्वजा को फहराता हुआ यह रथ हरियाणा प्रांत में पहुँचा, गुडगांवा से २ मई को प्रारम्भ होकर २६ नगरों में रथ प्रवर्तन द्वारा अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई, पुनः राजस्थान प्रांत के तिजाराजी अतिशय क्षेत्र से प्रारम्भ होकर ४१६ नगरों में सफल प्रवर्तन कर जैनत्व की प्राचीनता का बिगुल बजाता हुआ, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्यों को उच्चता के अग्रशिखर पर पहुँचाता हुआ यह समवसरण रथ मध्यप्रदेश में पहुँच गया, नीमच से प्रारम्भ हुई यह धर्मयात्रा ३५३ नगरों में भ्रमण करती हुई अपूर्व धर्मप्रभावनापूर्वक आगे गुजरात प्रांत में प्रविष्ट हुई, दाहोद से शुभारम्भपूर्वक ४५ नगरों में भगवान ऋषभदेव के अहिंसामयी-सर्वोदयी सिद्धान्तों की अनुगूंज करते हुए इस रथ का पदार्पण महाराष्ट्र प्रांत में हुआ, परभणी से प्रारम्भ इस समवसरण रथ का निरन्तर ५

महीने तक २१० नगरों एवं २८ जिलों में सफल भ्रमण हुआ और विशेष धर्मप्रभावना हुई। आशातीत सफलता के साथ यह रथ धर्मध्वजा को फहराते हुए उत्तरप्रदेश में प्रविष्ट हुआ। अनन्तानन्त तीर्थंकरों की शाश्वत जन्मभूमि एवं वर्तमान चौबीसी के पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने के साथ-साथ इस रथप्रवर्तन की प्रेरणास्रोत पू० गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की जन्मभूमि होने का गौरव इस उत्तर प्रदेश को प्राप्त है। राजधानी लखनऊ से रथप्रवर्तन का शुभारम्भ होकर १३५ नगरों में समवसरण का भ्रमण विशेष उल्लासमयी वातावरण में हुआ, यहां यह विशेषता रही कि पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का प्रयाग इलाहाबाद तीर्थ की ओर पदविहार होने से कन्नौज, कानपुर एवं इलाहाबाद में उनका ससंघ मंगल सानिध्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार प्रायः सभी प्रान्तों में भ्रमण के पश्चात् पूर्वांचल में बिहार, बंगाल, झारखण्ड, आसाम, नागालैण्ड और मणिपुर में रथ का धर्मप्रभावनापूर्वक प्रवर्तन हुआ जिसका शुभारम्भ अनंतानंत तीर्थंकरों की सिद्धभूमि सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र से हुआ और लगभग ८४ नगरों में रथ का भ्रमण होकर यह यात्रा सम्पूर्ण हुई। लगभग तीन वर्षों तक इस रथ का आशातीत सफलता के साथ भारत के कोने-कोने में भ्रमण हुआ जिससे जन-जन ने भगवान ऋषभदेव के कल्याणकारी, अहिंसामयी-सर्वोदयी सिद्धान्तों को हृदयंगम कर अहिंसा, शाकाहार और विश्वमैत्री आदि की प्रेरणा प्राप्त की, साथ ही गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के प्रति विनयावनत हुए।

इस समवसरण रथ प्रवर्तन के मध्य जहाँ लगभग ८० तीर्थक्षेत्र—तीर्थंकर जन्मभूमि, सिद्धक्षेत्र और अतिशयक्षेत्रों के दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ, वहीं २० आचार्य संघ, ३९ मुनिराजों, ५ गणिनी आर्यिका संघ, ३० आर्यिका संघ और १० ऐलक, क्षुल्लक महाराजों का विभिन्न प्रांतों में मंगल सानिध्य और आशीर्वाद प्राप्त हुआ। लगभग २२० नेताओं ने अपनी गरिमामयी उपस्थिति प्रदान कर भगवान ऋषभदेव एवं पूज्य माताजी का गुणानुवाद करते हुए भगवान ऋषभदेव के सिद्धान्तों को अपनाने का संकल्प लिया जिसमें महामहिम राज्यपाल श्री एन. एल० टिबरेवाल (राजस्थान सरकार), श्री गुलाबसिंह जी सक्तावत (सहकारिता मंत्री राज्य सरकार), जशवंत भाई भामोर-मंत्री गुजरात सरकार, श्री लालजी टंडन आवास-विकासमंत्री एवं सुश्री सीमा रिजवी उच्च शिक्षा मंत्री (उ. प्र. सरकार), श्री अनिलभूषण चौधरी श्रम राज्यमंत्री-असम सरकार आदि अनेक मंत्री, उपमुख्यमंत्री, शासन-प्रशासन अधिकारी, डी. एम., एस. डी. एम., विधायक, तहसीलदार, वाइसचांसलर, नगरपालिका अध्यक्ष, ग्राम पंचायत अध्यक्ष, ग्राम प्रधान, सरपंच, एम. एल. ए., न्यायाधीश, सांसद, मेयर, महापौर, वरिष्ठ पत्रकार, प्रोफेसर, स्वतन्त्रता सेनानी आदि प्रमुख थे। इस रथप्रवर्तन की केन्द्रीय समिति के साथ-साथ प्रान्तीय समितियाँ भी बनाई गईं जिन्होंने तन, मन, धन से इसमें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। भारत के कोने-कोने में इस रथ का सफल प्रवर्तन करने का संयोजकत्व पं० श्री सुधर्मचन्द्र शास्त्री जबलपुर (म० प्र०) एवं पं० विजयकुमार जैन, जम्बूद्वीप हस्तिनापुर ने निभाया जो साधुवाद के पात्र हैं।

प्रिय बन्धुओ! कई बार लोगों के मुख से सुनने में आता है कि आज के समय में हमें भगवान महावीर को मन्दिरों से निकालकर चौराहे पर लाना चाहिए किन्तु माताजी ने तो उसे साकार करते हुए भगवान ऋषभदेव के इस समवसरण को नगर-नगर में, डगर-डगर में, गली-गली में ही नहीं अपितु हर घर के दरवाजे-दरवाजे पर पहुँचाकर धर्म का जो शंखनाद किया उसकी अनुगूंज जन-जन के मानसपटल पर युगों-युगों तक अंकित रहेगी। मुझे भी इस रथप्रवर्तन में अनेक स्थानों पर ब्र० बहनों एवं कर्मयोगी बाल ब्र० श्री रवीन्द्रकुमार जी (भाई जी) के

साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन नगरों की भक्ति, उत्कण्ठा, उल्लास आदि का जो वातावरण, पूज्य माताजी के प्रति जो अनन्य भक्ति और हम सभी के प्रति जो स्नेह, वात्सल्य मैंने महसूस किया वह वर्णनातीत है। पूज्य माताजी की प्रेरणा से बनी समवसरण की यह मनभावन प्रतिकृति एवं सन् १९९४ में शाश्वत तीर्थ अयोध्या में बनी समवसरण की सुन्दर रचना तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के आधार से समतल भूमि पर बनी हुई है। पूज्य माताजी का सदैव यही कहना रहता है कि रचना निर्माण में सुन्दरता के साथ-साथ उसे आगम के अनुकूल ही निर्मित करना चाहिए। इस समवसरण प्रवर्तन से प्राप्त अर्थराशि का सदुपयोग दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के माध्यम से भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान से पवित्र भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" नामक तीर्थ का निर्माण करके किया गया तथा वहीं पर उस समवसरण की स्थापना की गई। वर्तमान में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित वह तीर्थ जन-जन की आस्था का केन्द्र है।

इस प्रकार परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा एवं मंगल आशीर्वाद, परम पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी के कुशल मार्गदर्शन एवं पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर महाराज व कर्मयोगी बाल ब्र० श्री रवीन्द्र कुमार जी के कुशल निर्देशन में इस रथप्रवर्तन द्वारा सम्पूर्ण भारत में जैनधर्म के सर्वोदयी सिद्धान्तों की व्यापक प्रभावना हुई। भगवान ऋषभदेव के समवसरण की यह पवित्र प्रतिकृति सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए मंगलकारी होवे यही मंगल भावना है।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी (अध्यक्ष)

राजधानी दिल्ली से ११० किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में सन् १९७४ से 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र अवस्थित है। २०० फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना **'जम्बूद्वीप'** के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित १०१ फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज प्रत्येक व्यक्ति के मन को आकर्षित करती है।

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)**। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से १९७२ में इस संस्थान की स्थापना हुई। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की ३५ एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

१. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की २०७ प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

२. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

३. ध्यान मंदिर-२४ तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'ह्रीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

४. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

५. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में १२वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

६. शांतिनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।

७. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित ॐ (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

८. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान २० तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

९. सहस्त्रकूट मंदिर-जिनेन्द्र भगवान की १००८ प्रतिमाओं सहित।

१०. भगवान ऋषभदेव मंदिर-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

११. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ-'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, ८ प्रतिमाओं से समन्वित ३१ फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

१२. तेरहद्वीप जिनालय-इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल २१२७ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

१३. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर-इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। ४ फरवरी २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

१४. नवग्रह शान्ति जिनमंदिर—पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशांति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन-पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शांति करते हुए देखे जाते हैं।

१५. तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ—हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान की ३१-३१ फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

१६. तीनलोक की भव्य रचना—त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

१७. जम्बूद्वीप पुस्तकालय—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग १५००० ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

१८. जम्बूद्वीप औषधालय

१९. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की १६ जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

२०. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला—१९७२ में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में ३०० से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

२१. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका—यह पत्रिका सन् १९७४ से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

२२. राजा श्रेयांस भोजनशाला—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ ५०० लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

२३. धर्मशालाएँ—२०० से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

२४. मनोरंजन के साधन—तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर १९८१-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

३१ अक्टूबर १९८२-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल १९८५-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून १९८२ से अप्रैल १९८५-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा ४ जून, १९८२ को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए १०४५ दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

१९९२-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

१९९३-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर १९९५-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-९५'**।

मार्च-अप्रैल १९९८-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा ९ अप्रैल १९९८ को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। ३ वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर १९९८-जम्बूद्वीप स्थल पर **'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'**, जिसका उद्घाटन किया गया-स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी २०००-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा ४ फरवरी २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले **'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'** का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर १००८ संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से ४ फरवरी २००० को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून २०००-जम्बूद्वीप स्थल पर ११ जून २००० को **'जैनधर्म की प्राचीनता'** विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी २००१-भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'** का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप ५१ फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की १४ फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप ७२ जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। ४ से ८ फरवरी २००१ तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं १००८ महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् २००३-२००४-भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार-प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

सन् २००५-२००७-भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव-६ जनवरी २००५ को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (२७ दिसम्बर २००५ तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् २००६ में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि "सम्मेदशिखर वर्ष" घोषित किया तथा दिसम्बर २००७ में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके ४ जनवरी २००८ को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष २००९ को ''शांति वर्ष'' के रूप में मनाने की घोषणा की गई। यह 'शांति वर्ष-२००९' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

सन् २०१० में पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित "अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी" द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा ९ फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

सन् २०१२ में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी

विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक २९ जनवरी से २ फरवरी २०१२ तक सानंद सम्पन्न किया गया है तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत इस जैन मंदिर का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् १९९५ से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को १,००,०००/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल २००६ में "गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव" के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् १९९९ में स्थापित २५,०००/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् २००० में स्थापित २५,०००/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार-सन् २००४ से प्रारंभ २५०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् २००३ में स्थापित २५,०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार-सन् २०१० से प्रारंभ ११०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

प्रकाशचंद जैन स्मृति पुरस्कार-सन् २०१२ से प्रारंभ ११०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष' के अवसर पर घोषित '**भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड**', '**ब्राह्मी पुरस्कार**', '**भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार**', '**गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार**', '**हीरक जयंती पुरस्कार**' तथा **रूपाबाई पुरस्कार** आदि भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

पुनः "गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव"-१८ अक्टूबर २०१३ के अवसर पर ८००००/-रुपये की राशि वाला अमृत महोत्सव पुरस्कार भी प्रदान किया जा रहा है।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि

अथ पौर्वाण्हिक[1] स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

चत्तारिमंगलं – अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा – अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि – अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(9 बार णमोकार मंत्र जपना – सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलिअणंतजिणे।
णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।2।।

–लघु श्रुतभक्ति –

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांग - बाह्यभावित - मनन्तविषयं नमस्यामि।।1।।

इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

अथ पौर्वाण्हिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं से लेकर पूरा पाठ पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव पढ़कर भक्ति पढ़ें।)

–आचार्यभक्ति –

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।1।।

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

पुनः स्वाध्याय समापन करते समय –

नमोऽस्तु पौर्वाण्हिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् णमो अरहंताणं आदि पढ़कर 9 बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव' पढ़वर श्रुतभक्ति पढ़ें)

---

1. मध्यान्ह में स्वाध्याय करते समय 'अपराण्हिक' बोलें। रात्रि में स्वाध्याय के प्रारंभ के समय 'पूर्वरात्रिक' बोलें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।१।।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।२।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, पापप्रणाशकं, पुण्यप्रकाशकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं इदं शास्त्रं समवसरण रचना[१] नामधेयं, अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवाः, तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसामासाद्य श्री गणिनी ज्ञानमतीविरचितं[२]।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।४।।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

१. जिस ग्रंथ का स्वाध्याय करना हो उसका नाम लेना चाहिए।
२. उस ग्रंथ के जो रचयिता हों उनका नाम लेना चाहिए।

समवसरण रचना

समवसरण वन्दना

(गणिनी ज्ञानमती कृत)

जय जय तीर्थंकर तीर्थनाथ, जय जय प्रभु धर्मचक्र ईश्वर।
जय जयतु अनंतचतुष्टयमय, अंतर लक्ष्मीपति परमेश्वर।।
जय जय जय प्रभु तुम समवसरण, त्रिभुवन लक्ष्मीयुत अतिशायी।
जय जय जय सुरपति आज्ञा से, धनपति रचता जग सुखदायी।।१।।

जय बारह योजन गोल शिला, या योजन एक[१] नीलमणि की।
धनपति ने पाँच सहस धनु ऊपर, नभ में उसे अधर रख दी।।
जय भूतल से इस हाथ उपरि, सब सीढ़ी बीस हजार बनीं।
जय बालक वृद्ध सभी चढ़ते, अंतर्महूर्त में शांति घनी।।२।।

जय समवसरण के चार कोट, अरु पाँच वेदियाँ अति सोहें।
जय इन नव के मधि आठ भूमि, मुनिगण से संस्तुत मन मोहें।।
जय धूलिसाल प्राकार प्रथम, पचरंगी रत्नमयी सुंदर।
जय द्वितिय कोट है स्वर्णमयी, जय तृतिय कोट चांदी मनहर।।३।।

---

१. भगवान् वृषभदेव का समवसरण बारह योजन का था आगे घटते-घटते महावीर स्वामी का एक योजन रह गया था।

जय चौथा परकोटा सुन्दर, स्फटिकमणी का शोभ रहा।
ये परकोटे चूड़ी समान, आकार धरें अतिशायि महा।।
जय पाँचों वेदी स्वर्णमयी, उपरिम कंगूरे शोभ रहें।
इन चार कोट पणवेदी में, चउदिश चउ चउ महाद्वार कहें।।४।।

सुर ज्योतिष प्रथम साल पर हैं, दूजे पर व्यंतर द्वारपाल।
भावन सुर तृतिय साल रक्षक, कल्पासुर खड़े स्फटिक साल।।
इन दरवाजों पर नवनिधियाँ, वसु मंगल द्रव्य धूप घट हैं।
बहु देव देवियाँ नृत्य करें, जिनगुण गावें जन मनहर हैं।।५।।

सो विजय वैजयंतरु जयंत, अपराजित नाम कहाये हैं।
प्राकार चार के उभय तरफ, दो-दो नाटकशालाएँ हैं।।
इनमें प्रवेश करके सुरनर, जय जय ध्वनि करते जाते हैं।
क्रम क्रम से आठ भूमियों की, शोभा निरखें सुख पाते हैं।।६।।

जय जय जय चैत्य महल भूमी, जय जय जिनमंदिर जिनप्रतिमा।
हम नमन करें नित शीश झुका, जय समवसरण की गुणगरिमा।।
जय द्वितीय खातिका भू पवित्र, अति स्वच्छ मधुर जल पूर्ण भरी।
निज सम मुझ चित्त पवित्र करे, फूलें कमलों से गंधकरी।।७।।
जय तृतीय लता भूमी सुन्दर, बहु रंग विरंगे फूल खिलें।
जय इनका नामस्मरण किये, मेरी मन कलिका पूर्ण खिले।।
जय जय उपवन भूमी सुंदर, चहुँदिश चउविध उद्यान फलें।
इनमें चारों दिश एक एक, हैं 'चैत्यवृक्ष' सुरवंद्य भलें।।८।।
जय जय इन चैत्यवृक्ष की जय, जय जय जय हो जिनबिम्बों की।
मैं नमूँ अनंतों बार प्रभो! मनवांछित फल देवो जल्दी।।
जय जय जय पंचमध्वजा भूमि, दश चिन्हों सहित ध्वजाएँ हैं।
सब जिनवर का यश विस्तारें, नभ को छूती लहराएँ हैं।।९।।
जय जय जय कल्पवृक्ष भूमी, दशविध के कल्पवृक्ष फलते।
इनमें चारों दिश एक एक, सिद्धार्थ वृक्ष इच्छित फल दें।।
जय जय सिद्धार्थ वृक्ष की जय, जय जय सिद्धों के बिम्बों की।
मुझको सवार्थसिद्धि दे दो, मैं नमूँ नमूँ गुण गाऊँ भी।।१०।।
जय जय जय सप्तम भवन भूमि, देवों के सुंदर भवन बने।
उनमें जिनप्रतिमाओं का नित, अभिषेक करें सुर भक्त घने।।

इस भू की चारों गलियों में, नव नव स्तूप बनें सुन्दर।
उनमें प्रतिमा अर्हंतों की, सिद्धों की भी राजें मनहर।।११।।

जय जय इन सब प्रतिमाओं को, मैं हाथ जोड़कर नमन करूँ।
प्रभु ऐसी शक्ती दो मुझको, इंद्रिय कषाय का दमन करूँ।।
जय जय जय श्रीमंडपभूमी, इसमें बारह कोठे सुंदर।
जय जय यह सभाभूमि प्रभू की, उपदेश सुने सुरनर पशुगण।।१२।।

जय पहली कटनी पे चहुँदिश, वर धर्मचक्र अति दीप रहें।
जय दुतयी पर महध्वजा आठ, जय गंधकुटी तृतयी पर हैं।।
जय गंधकुटी में सिंहासन, जय सहस्र दल कमलासन हैं।
जय जय त्रिभुवनपति तीर्थेश्वर, उस पर राजे अधरासन हैं।।१३।।

वेदिकाबद्ध वीथिकाबीच, 'कल्याणजयांगण[१]' शोभ रहा।
केले के वृक्ष बहुत ऊँचे, उनसे यह जन मन मोह रहा।।
इनके आगे सिद्धार्थ वृक्ष, उनके आगे इक मंदिर है।
बारह स्तूप इसे शोभित, करते मानों मेरू गिरि हैं।।१४।।

इन आगे चार दिशाओं में, बावड़ियाँ चार सुशोभित हैं।
उनमें स्नान करें भविजन, निज पूरव भव अवलोकत हैं।।
इन आगे एक 'जयांगण' है, त्रैलोक्य विजय आधार कहा।
जय जय जय श्रेष्ठ जयांगण यह, ध्वज तोरण से बहु शोभ रहा।।१५।।

जय आंगन मध्य इन्द्रध्वज है, मणिमयी 'पताका' लहराये।
किंकिणि रत्नों की मालाएँ, किरणों से ध्वज को चमकायें।।
जय एक हजार स्तंभों पर, वह खड़ा 'महोदय' मंडप है।
जय मूर्तिमती 'श्रुतिदेवि' वहाँ पर, राजें सतत बोधप्रद है।।१६।।

इनको दायें कर मुनिगण में, श्रुतकेवलि श्रुत व्याख्यान करें।
इस मंडप के परिवार चार, मंडप भी जन अज्ञान हरें।।
जय जय विजयांगण कोनों में, जय चार 'लोकस्तूप' बनें।
ये तीन लोक आकार धरें, इक योजन ऊँचे रम्य घने।।१७।।

जय स्वच्छ फटिक मणि से निर्मित, इनमें तीनों जग की रचना।
स्पष्ट झलकते नरक स्वर्ग, भवि देख रहे सुख दुख भरना।।

---

१. यहाँ से आगे 'दिव्यपुर' के वर्णन तक हरिवंशपुराण ५७ वें सर्ग के आधार से है।

जय मध्यलोक इनके आगे, जो मध्य लोक दरसाते हैं।
जय जय जम्बूद्वीपादि असंख्यों, द्वीप समुद्र दिखाते हैं।।१८।।

जय जय जय जय मंदर स्तूप, जय जय चहूँ दिश की प्रतिमाएँ।
जय 'कल्पवासस्तूप' कल्पवासी, सुर वैभव दिखलाएँ।।
जय जय ग्रैवेयकस्तूप नवों, ग्रैवेयक वैभव दिखलाते।
जय जय अनुदिश के नवस्तूप, अहमिन्द्र सौख्य को झलकाते।।१९।।

जय जय सर्वार्थसिद्धी स्तूप, पंचानुत्तर सुख दिखलाएँ।
जय जय जय 'सिद्धस्तूप' सिद्ध, प्रभु की छाया को झलकाएँ।।
जय 'भव्यकूटस्तूप' जिन्हें, नहिं देख सकें हि अभव्य जीव।
जय जय 'प्रमोहस्तूप' जिन्हें, देखत जन दिग्भ्रम हों सदीव।।२०।।

जय जय 'प्रबोधस्तूप' जिन्हें, देखे प्रबोध को प्राप्त करें।
निज तत्त्वज्ञान को पाय साधु, बनते निश्चित भवजलधि तरें।।
जय जय जय दश स्तूप और, जो परिधी तक अति शोभ रहें।
परिधी भीतर कर्णिका एक, जो मंडल से अतिदीप्त रहे।।२१।।

वहाँ गणधर प्रभु की इच्छा से, शुभ एक 'दिव्यपुर' बन जाता।
वह तीर्थंकर के अतिशय से, त्रिभुवन के जीव समा पाता।।
जय जय जिनवर की दिव्य ध्वनी, सम्यग्दृष्टी ही सुनते हैं।
जय जय गणधर गुरु ऋद्धिपती, वदंन से विघ्न विनशते हैं।।२२।।

जय जय जिन मुद्राधर मुनिवर, शत शत 'नमोऽस्तु' मेरा उनको।
जय जय जिन सती आर्यिकायें, शत शत 'वंदामी' उन सबको।।
जय जय जिनवर के मात पिता, जय जय आयू तनु वंश रूप।
जय पंचकल्याणक तीर्थ क्षेत्र, जय जय कल्याणक तिथि अनूप।।२३।।

जय जय जिनशासन यक्षदेव, जय जय जिन शासन यक्षिणियां।
जय जिनशासन अनादि अनिधन, जय जिन सहस्र नामावलियां।।
जय जय जय जिनवर समवसरण, मैं नमूँ अनंतों बार यहाँ।
यह केवल 'ज्ञानमती' लक्ष्मी, मुझको दो पंचकल्याण जहाँ।।२४।।

समवसरण रचना

—गणिनी ज्ञानमती

नमः श्रीवर्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते।।१।।

तीर्थंकर भगवन्तों को केवलज्ञान प्रगट होते ही, पृथ्वीतल से पाँच हजार धनुष—बीस हजार हाथ प्रमाण ऊपर आकाश में अधर पहुँच जाते हैं। उसी समय इंद्रों के आसन कंपित होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अर्धनिमिष में आकाश में अधर ही समवसरण की रचना बना देता है। वही समवसरण भगवंतों की दिव्य उपदेश सभा है। तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि तीनों समय ६-६ घड़ी (२४ × ६ = १४४ मिनट, १४४ ÷ ६ = दो घंटे चौबीस मिनट) तक खिरती है। कहीं अर्धरात्रि में भी दिव्यध्वनि खिरने को मानने से चार बार दिव्यध्वनि खिरती है। समवसरण का विस्तृत विवेचन यहाँ चार ग्रन्थों से दिया जा रहा है।

तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में समवसरण में चार परकोटे पाँच वेदिकाएँ मानी हैं। जिनके अंतराल में आठ भूमियाँ हैं।

१. चैत्यप्रासादभूमि, २. खातिकाभूमि, ३. लताभूमि, ४. उपवनभूमि, ५. ध्वजभूमि, ६. कल्पवृक्षभूमि ७. भवनभूमि और ८. श्रीमंडपभूमि।

आदिपुराण तथा हरिवंशपुराण में प्रथम चैत्यप्रासादभूमि का वर्णन न होने से सात भूमियाँ मानी हैं। संक्षेप में देखिए–

यथा—

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी।
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाध्वा।।
सालः कल्पद्रुमाणां सपरिवृतवनं स्तूपहर्म्यावली च।
प्राकारः स्फाटिकोन्तर्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः।।१९२।।

अर्थ—संक्षेप में समवसरण की रचना इस प्रकार है–सबसे पहले (धूलीसाल के बाद) चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ हैं, मानस्तम्भों के चारों ओर सरोवर हैं, फिर निर्मल जल से भरी हुई परिखा है, फिर पुष्पवाटिका (लतावन) है, उसके आगे पहला कोट है, उसके आगे दोनों ओर दो-दो नाट्यशालाएँ हैं, उसके आगे दूसरा अशोक आदि का वन है, उसके आगे वेदिका है, तदनन्तर ध्वजाओं की पंक्तियाँ हैं, फिर दूसरा कोट है, उसके आगे वेदिका सहित कल्पवृक्षों का वन है, उसके बाद स्तूप और स्तूपों के बाद मकानों की पंक्तियाँ हैं, फिर स्फटिकमणिमय तीसरा कोट है, उसके भीतर मनुष्य, देव और मुनियों की बारह सभाएँ हैं तदनन्तर पीठिका है और पीठिका के अग्रभाग पर स्वयम्भू भगवान् अरहन्तदेव विराजमान हैं।।१९२।।

हरिवंशपुराण में धर्मचक्र का वर्णन है–

पीठानि त्रीणि भास्वन्ति चतुर्दिक्षु भवन्ति तु।
Ûe Jeef Ûene mo eeeCe Cee ee&be eeeCe ehe ee&e।।१४०।।

---

१. हरिवंशपुराण पृ. ६५६।

वहाँ चारों दिशाओं में दैदीप्यमान तीन पीठ होते हैं, उनमें पहले पीठ पर चार हजार धर्मचक्र सुशोभित हैं। यहाँ यह अर्थ संगत नहीं होता है।

इसका अर्थ ऐसा प्रतीत होता है कि तीन पीठ–कटनी में से प्रथम पीठ–कटनी पर चार दिशा में एक-एक ऐसे चार धर्मचक्र रहते हैं जिनमें एक-एक धर्मचक्र में एक-एक हजार आरे होते हैं। तिलोयपण्णत्ति में कहा है– प्रथम पीठ—कटनी पर चारों दिशाओं में शिर पर धर्मचक्र को रखे हुए यक्षेन्द्र स्थित रहते हैं[१]।।"

आदिपुराण में भी वर्णित है। यथा—

तां पीठिकामलं चक्रुरष्टमङ्गलसंपदः। धर्मचक्राणि चोढानि प्रांशु भिर्यक्षमूर्धभिः।।२९२।।

सहस्राराणि तान्युद्यद्रत्नरश्मीनि रेजिरे। भानुबिम्बानिवोद्यन्ति पीठिकोदयपर्वतात्।।२९३।।

अर्थ—उस पीठिका को अष्ट मंगलद्रव्यरूपी सम्पदाएँ और यक्षों के ऊँचे-ऊँचे मस्तकों पर रखे हुए धर्मचक्र अलंकृत कर रहे थे।।२९२।।

जिनमें लगे हुए रत्नों की किरणें ऊपर की ओर उठ रही हैं ऐसे हजार-हजार आराओं वाले वे धर्मचक्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों पीठिकारूपी उदयाचल से उदय होते हुए सूर्य के बिम्ब ही हों।।२९३।।

इसी प्रकार इस समवसरण रचना के वर्णन में हरिवंशपुराण में तीनलोक स्तूप, मध्यलोक स्तूप आदि का वर्णन भी बहुत ही सुन्दर है। इसी पुराण में मूर्तिमती श्रुतदेवता का व लक्ष्मीदेवी का भी वर्णन आया है। यथा– स्थान आप पढ़ें। यह समवसरण की रचना आज पंचमकाल में यहाँ भरतक्षेत्र में नहीं है किन्तु आज भी यहाँ से २० करोड़ मील दूर विदेह क्षेत्र में श्रीसीमंधर भगवान का समवसरण विद्यमान है। हम और आप ऐसी भावना भाते रहें कि प्रभु सीमंधर स्वामी के समवसरण का दर्शन, भगवान की दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य हमें भी प्राप्त होवे, इस भावना से अगले भव में निश्चित ही साक्षात् रूप में भगवान के दर्शन का लाभ प्राप्त होगा। इसी भावना के साथ समवसरण में विराजमान तीर्थंकर भगवंतों को, विद्यमान श्रीसीमंधर, युगमंधर आदि बीस तीर्थंकरों को अनंतानंत बार नमस्कार करती हूँ।

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. २५८।

समवसरण रचना

(तिलोयपण्णत्ति से*)

जे संसारसरीरभोगविसए णिव्वेयणिव्वाहिणो, जे सम्मत्तविभूसिदा सविणया घोरं चरंता तवं।
जे सज्झायमहद्धिवड्ढिव गदा झाणं च कम्मंतकं, ताणं केवलणाणमुत्तमपदं जाएदि किं कोदुकं।।७०४।।
जादे केवलणाणे परमोरालं जिणाण सव्वाणं । गच्छदि उवरिं चावा पंचसहस्साणि वसुहाओ।। ७०५।।
भुवणत्तयस्स ताहे अइसयकोडीय होदि पक्खोहो । सोहम्मपहुदिइंदाण आसणाइं पि कंपंति ।। ७०६।।
तक्कंपेणं इंदा संखुग्घोसेण भवणवासिसुरा । पडहरवेहिं वेंतर सीहणिणादेण जोइसिया ।। ७०७।।
घंटाए कप्पवासी णाणुप्पत्तिं जिणाण णादूणं । पणमंति भत्तिजुत्ता गंतूणं सत्त वि कमाओ ।। ७०८।।
अहमिंदा जे देवा आसणकंपेण तं वि णादूणं । गंतूण तेत्तियं चिय तत्थ ठिया ते णमंति जिणे ।। ७०९।।
ताहे सक्काणाए जिणाण सयलाण समवसरणाणिं । विक्किरियाए धणदो विरएदि विचित्तरूवेहिं।। ७१०।।
उवमातीतं ताणं को सक्कइ वण्णिदुं सयलरूवं । एणिंह लवमेत्तमहं साहेमि जहाणुपुव्वीए ।। ७११।।
सामण्णभूमिमाणं माणं सोवाणयाण विण्णासो।वीही धूलीसाला चेत्तप्पासादभूमीओ ।। ७१२।।

जो संसार, शरीर और भोग-विषयों में निर्वेद को धारण करने वाले हैं, जो सम्यकत्व से विभूषित हैं, विनय से संयुक्त हैं, और घोर तप का आचरण करते हैं, जो स्वाध्याय से महान् ऋद्धि व वृद्धि को प्राप्त हैं और कर्मों का अन्त करने वाले ध्यान को भी प्राप्त हैं, उनके यदि केवलज्ञान रूप उत्तम पद उत्पन्न होता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ।। ७०४ ।।

केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर पृथिवी से पांच हजार धनुष प्रमाण ऊपर चला जाता है ? ।। ७०५ ।।

उस समय तीनों लोकों में अतिशय क्षोभ उत्पन्न होता है और सौधर्मादिक इन्द्रों के आसन कंपायमान होते हैं ।। ७०६ ।।

आसनों के कंपित होने से इन्द्र, शंख के उद्घोष से भवनवासी देव, पटह के शब्द से व्यन्तर देव, सिंहनाद से ज्योतिषी देव और घंटा के शब्द से कल्पवासी देव तीर्थंकरों के केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर भक्ति युक्त होते हुए सात पैर जाकर प्रणाम करते हैं ।। ७०७-७०८ ।।

जो अहमिन्द्र देव हैं, वे भी आसनों के कंपित होने से केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर और उतने ही (सात पैर) आगे जाकर वहां स्थित होते हुए जिन भगवान् को नमस्कार करते हैं ।। ७०९ ।।

उस समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर विक्रिया के द्वारा सम्पूर्ण तीर्थङ्करों के समवसरणों को विचित्र रूप से रचता है ।। ७१० ।।

उन समवसरणों के अनुपम सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन करने के लिये कौन समर्थ है ? अब मैं आनुपूर्वी के अनुसार समवसरण के स्वरूप का लेशमात्र कथन करता हूं ।। ७११ ।।

सामान्य भूमि का प्रमाण, सोपानों का प्रमाण, विन्यास, वीथी, धूलिशाल, चैत्यप्रासाद भूमियां, नृत्यशाला,

---

* तिलोयपण्णत्ति पृ. २३१ से २६७ तक।

णट्टयसाला थंभा वेदी खादी य वेदि-वल्लिखिदी।
साला उववणवसुहा णट्टयसाला य वेदि-धयखोणी।।७१३।।

सालो कप्पमहीओ णट्टयसाला य वेदि-भवणमही।थूहा साला सिरिमंडव य रिसिगणाण विण्णासो।।७१४।।
वेदी पढमं बिदियं तदियं पीढं च गंधउडिमाणं।इदि इगितीसा पुह पुह अहियारा समवसरणाणं।।७१५।।
रविमंडल व्व वट्टा सयला वि य खंधइंदणीलमई । सामण्णखिदी बारस जोयणमेत्तं मि उसहस्स।।७१६।।
तत्तो बेकोसूणो पत्तेक्कं णेमिणाहपज्जंतं । चउभागेण विरहिदा पासस्स य वड्ढमाणस्स।।७१७।।
उ जोयण १२ । अजिय २३ । सं ११ । अहिणं २१ । सु १० । प १९ । सु ९ । चं १७ । पु ८ ।
२ २ २ २
सी १५ । से ७ । वा १३ । वि ६ । अ ११ । ध ५ । सं ९ । कुं ४ । अ ७ । म ३ । मु ५ ।
२ २ २ २ २ २
ण २ । णे ३ । पा ५ । वी १ ।
२ ४
अवसप्पिणिए एदं भणिदं उस्सप्पिणीए विवरीदं । बारसजोयणमेत्ता सा सयलविदेहकत्ताणं ।। ७१८।।
१ । ५ । ३ । २ । ५ । ३ । ७ । ४ । ९ । ५ । ११ । ६ । १३ । ७ । १५ । ८ । १७ । ९ । १९ ।
४ २ २ २ २ २ २ २ २ २
१० । २१ । ११ । २३ । १२ ।
२ २
इह केई आइरिया पण्णारसकम्मभूमिजादाणं । तित्थयराणं बारसजोयणपरिमाणमिच्छंति।। ७१९।।
। सामण्णभूमी समत्ता । पाठान्तरम् ।

मानस्तम्भ, वेदी, खातिका, वेदी, लताभूमि, साल, उपवनभूमि, नृत्यशाला, वेदी, ध्वजक्षोणी, साल, कल्पभूमि, नृत्यशाला, वेदी, भवनमही, स्तूप, साल, श्रीमण्डप, ऋषि आदि गणों का विन्यास, वेदी, पीठ, द्वितीय पीठ, तृतीय पीठ, और गंधकुटी का प्रमाण, इस प्रकार समवसरण के कथन में पृथक्-पृथक् ये इकतीस अधिकार हैं।।७१२-७१५।।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण की सम्पूर्ण सामान्यभूमि सूर्यमण्डल के सदृश गोल, स्कंध (भिन्न) इन्द्रनीलमणिमयी और बारह योजन प्रमाण विस्तार से युक्त थी।। ७१६।।

इसके आगे भगवान् नेमिनाथ पर्यन्त प्रत्येक तीर्थंकर के समवसरण की सामान्य भूमि दो कोस कम और पार्श्वनाथ एवं वर्धमान तीर्थंकर की योजन के चतुर्थ भाग से कम थी।। ७१७।।

यह जो सामान्य भूमि का प्रमाण बतलाया गया है, वह अवसर्पिणी काल का है। उत्सर्पिणी काल में इससे विपरीत है। विदेह क्षेत्र के संपूर्ण तीर्थंकरों के समवसरण की भूमि बारह योजन प्रमाण ही रहती है।।७१८।। ।।

यहां कोई आचार्य पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों की समवसरणभूमि को बारह योजन प्रमाण मानते हैं ।। ७१९ ।। पाठान्तर ।

सामान्यभूमि का वर्णन समाप्त हुआ।

सुरणरतिरियारोहणसोवाणा चउदिसासु पत्तेक्कं । वीससहस्सा गयणे कणयमया उड्ढउड्ढम्मि।।७२०।।

। २०००० ।

उसहादी चउवीसं जोयण एक्कूण णेमिपज्जंतं । चउवीसं भजिदव्वा दीहं सोवाण णादव्वा ।।७२१।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
८। ७। ६। ५। ४। ३।
२४। २४। २४। २४। २४। २४।

पासम्मि पंच कोसा चउ वीरे अट्ठतालअवहरिदा।इगिहत्थुच्छेहा ते सोवाणा एक्कहत्थवासा य।।७२२।।

५। ४।
४८। ४८। १ । १।

। सोवाणा समत्ता ।

चउ साला वेदीओ पंच तदंतेसु अट्ठ भूमीओ। सव्वत्थंतरभागे पत्तेक्कं तिण्णि पीढाणि।। ७२३।।

सा ४ । वे ५ । भू ८ । पी ३ ।

। विण्णासो समत्तो ।

पत्तेक्कं चउसंखा वीहीओ पढमपीढपज्जंता। णियणियजिणसोवाणयदीहत्तणसरिसवित्थारा।।७२४।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। ४।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। ४८। ४८। **पाठान्तरम् ।**

देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों के चढ़ने के लिये आकाश में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ऊपर-ऊपर सुवर्णमय बीस हजार सीढ़ियां होती हैं ।। ७२० ।।

वृषभादिक चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान् नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः चौबीस और एक एक योजन कम चौबीस को चौबीस से भाग देने पर जो लब्ध आवे उतनी सोपानों की लम्बाई जानना चाहिये ।।७२१।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में सीढ़ियों की लम्बाई अड़तालीस से भाजित पांच कोस और वीरनाथ के अड़तालीस से भाजित चार कोस प्रमाण थीं। वे सीढ़ियां एक हाथ ऊंची और एक हाथ ही विस्तार वाली थीं।।७२२।।

सोपानों का कथन समाप्त हुआ ।

चार कोट, पांच वेदियां, इनके बीच में आठ भूमियां और सर्वत्र प्रत्येक अन्तर भाग में तीन पीठ होते हैं।।७२३।।

विन्यास समाप्त हुआ ।

प्रथम पीठ पर्यन्त प्रत्येक में अपने अपने तीर्थंकर के समवसरणभूमिस्थ सोपानों की लम्बाई के बराबर विस्तार वाली चार वीथियां होती हैं ।। ७२४ ।।

एक्केक्काणं दोद्दो कोसा वीहीण रुंदपरिमाणं । कमसो हीणं जाव य वीरजिणं के वि इच्छंति।।७२५।।

पाठान्तरम् ।

च सद्देण णियसोवाणाण दीहत्तणं पि ।

पंचसया बावण्णा कोसाणं वीहियाण दीहत्तं । चउवीसहिदा कमसो तेवीसोणा य णेमिपज्जंतं।। ७२६।।

५५२। ५२९। ५०६। ४८३। ४६०। ४३७। ४१४। ३९१। ३६८। ३४५। ३२२। २९९। २७६।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
२५३। २३०। २०७। १८४। १६१। १३८। ११५। ९२। ६९।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।

पण्णारसेहि अहियं कोसाण सयं च पासणाहम्मि । देवम्मि वड्ढमाणे बाणउदी अट्ठतालहिदा।।७२७।।

११५ ९२
४८ ४८

वीहीदोपासेसुं णिम्मलपलिहोवलेहि रइदाओ । दो वेदीओ वीहीदीहत्तसमाणदीहत्ता।।७२८।।

५५२। ५२९। ५०६। ४८३। ४६०। ४३७। ४१४। ३९१। ३६८। ३४५। ३२२। २९९।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
२७६। २५३। २३०। २०७। १८४। १६१। १३८। ११५। ९२। ६९। ११५। ९२।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। ४८। ४८।

वेदीण रुंद दंडा अट्ठंहरिदाणि छस्सहस्साणि । अड्ढाइज्जसएहिं कमेण हीणाणि णेमिपज्जंत्तं।। ७२९।।

६०००। ५७५०। ५५००। ५२५०। ५०००। ४७५०। ४५००। ४२५०। ४०००। ३७५०। १०००।
८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८।
३५००। ३२५०। ३०००। २७५०। २५००। २२५०। २०००। १७५०। १५००। १२५०। ७५०।
८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८।

एक एक वीथी के विस्तार का परिमाण दो दो कोस है और वीर जिनेन्द्र तक क्रम से हीन होता गया है, ऐसा कितने ही अन्य आचार्य मानते हैं ।। ७२५ ।। पाठान्तर ।

च शब्द से अपने अपने सोपानों की दीर्घता भी (उसी प्रकार दो दो कोस है और क्रम से कम होती गई है, ऐसा जानना चाहिए।)

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में चौबीस से भाजित पांच सौ बावन कोस प्रमाण वीथियों की लंबाई थी और इसके आगे नेमिनाथपर्यन्त क्रमशः भाज्य राशि (५५२) में से उत्तरोत्तर तेईस कम करके चौबीस का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतनी वीथियों की दीर्घता होती है ।। ७२६ ।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में वीथियों की दीर्घता अड़तालीस से भाजित एक सौ पन्द्रह कोस और वर्धमान जिन के अड़तालीस से भाजित बानवै कोस प्रमाण थी ।। ७२७ ।।

वीथियों के दोनों पार्श्व भागों में वीथियों की दीर्घता के समान दीर्घतासे युक्त और निर्मल स्फटिकपाषाण से रचित दो वेदियां होती हैं ।। ७२८ ।।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में वेदियों का विस्तार आठ से भाजित छह हजार धनुष प्रमाण था। पुनः इससे आगे भगवान् नेमिनाथपर्यन्त क्रम से उत्तरोत्तर छह हजार में से अढ़ाई सौ कम होते गये हैं ।।७२९ ।।

कोदंडछस्सयाइं पणवीसजुदाइं अट्ठहरिदाइं । पासम्मि वड्ढमाणे पणघणदंडाणि दलिदाणि।।७३०।।

६२५ । १२५ ।

८ । २ ।

अट्ठाणं भूमीणं मूले बहवा हु तोरणद्दारा । सोहियवज्जकवाडा सुरणरतिरिएहिं संचरिदा।।७३१।।

णियणियजिणेसयाणं देहुस्सेहेण चउहि गुणिदेण। चरियट्टालयचेंचइयाणं वेदीण उस्सेहो।। ७३२।।

२०००। १८०० । १६०० । १४०० । १२०० । १००० । ८०० । ६०० । ४०० । ३६० । ३२० । २८०। २४०। २००। १८०। १६०। १४० । १२० । १०० । ८० । ६० । ४० हत्थाणि ३६ । २८।

। वीही समत्ता।

सव्वाणं बाहिरए धूलीसाला विसालसमवट्टा । विप्फुरियपंचवण्णा मणुसुत्तरपव्वदायारा।। ७३३।।

चरियट्टालयरम्मा पयलपदायाकलप्पकमणिज्जा । तिहुवणविम्हयजणणी चउहिं दुवारेहिं परिअरिया।।७३४।।

विजयं ति पुव्वदारं दक्खिणदारं च वइजयंतं ति । पच्छिमउत्तरदारा जयंतअपराजिदा णामा।।७३५।।

एदे गोउरदारा तवणीयमया तिभूमिभूसणया। सुरणरमिहुणसणाहा तोरणणच्चंतमणिमाला।। ७३६।।

एक्केक्कगोउराणं बाहिरमज्झम्मि दारदो पासे।बाउलया वित्थिण्णा मंगलणिहिधूवघडभरिदा।। ७३७।।

भिंगारकलसदप्पणचामरधयवियणछत्तसुपइट्ठा।इय अट्ठ मंगलाइं अट्ठुत्तरसयजुदाणि एक्केक्कं।।७३८।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में वेदियों का विस्तार आठ से भाजित छह सौ पच्चीस धनुष और वर्धमान स्वामी के दो से भाजित पांच के घन अर्थात् एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण था ।। ७३०।।

आठों भूमियों के मूल में वज्रमय कपाटों से सुशोभित और देव, मनुष्य एवं तिर्यञ्चों के संचार से युक्त बहुत से तोरण द्वार होते हैं ।। ७३१ ।।

मार्ग व अट्टालिकाओं से रमणीक वेदियों की ऊंचाई अपने-अपने जिनेन्द्रों के शरीर के उत्सेध से चौगुनी होती हैं।। ७३२।।

। वीथियों का वर्णन समाप्त हुआ।

सबके बाहिर पांचों वर्णों से स्फुरायमान, विशाल एवं समान गोल, मानुषोत्तर पर्वत के आकार का धूलिसाल नामक कोट होता है।। ७३३।।

उपर्युक्त धूलिसाल कोट मार्ग व अट्टालिकाओं से रमणीय, चंचल पताकाओं के समूह से सुन्दर, तीनों लोकों को विस्मित करने वाला, और चार द्वारों से युक्त होता है।। ७३४।।

इन चार द्वारों में से पूर्व द्वार का नाम विजय, दक्षिण द्वार का नाम वैजयन्त, पश्चिम द्वार का नाम जयन्त और उत्तर द्वार का नाम अपराजित होता है।। ७३५।।

ये चारों गोपुरद्वार सुवर्ण से निर्मित, तीन भूमियों से भूषित, देव एवं मनुष्यों के मिथुनों से (जोडों से) संयुक्त और तोरणों पर नाचती हुई (लटकती हुई) मणिमालाओं से शोभायमान होते हैं।। ७३६।।

प्रत्येक गोपुर के बाहिर और मध्य भाग में द्वार के पार्श्व भागों में मंगलद्रव्य, निधि और धूप घट से युक्त विस्तीर्ण पुतलियां होती हैं।।७३७।।

झारी, कलश, दर्पण, चामर, ध्वजा, व्यजन, छत्र और सुप्रतिष्ठ ये आठ मंगलद्रव्य हैं। इनमें से प्रत्येक

कालमहकालपंडू माणवसंखा य पउमणइसप्पा। पिंगलणाणारयणा अट्ठुत्तरसयजुदाणि णिहि एदे।।७३९।।
उडुजोग्गदव्वभायणधण्णायुहतूरवत्थहम्माणि। आभरणसयलरयणा देंति कालादिया कमसो।।७४०।।
गोसीसमलयचंदणकालागरुपहुदिधूवगंधड्ढा। एक्केक्कबाउलाए धूवघडो होदि एक्केक्कं।।७४१।।
धूलीसालागोउरबाहिरए मयरतोरणसयाणि। अब्भंतरम्मि भागे पत्तेयं रयणतोरणसयाणि।।७४२।।
गोउरदुवारमज्झे दोसु वि पासेसु रयणणिम्मविया। एक्केक्कणट्टसाला णच्चंतसुरंगणाणिवहा।।७४३।।
धूलीसालागोउरदारेसुं चउसु होंति पत्तेक्कं। वररयणदंडहत्था जोइसिया दाररक्खणया।। ७४४।।
चउगोउरदारेसुं बाहिरअब्भंतरम्मि भागम्मि। सुहसुंदरसंचारा सोवाणा विविहरयणमया।। ७४५।।
धूलीसालाण पुढं णियजिणदेहोदयप्पमाणेण । चउगुणिदेणं उदओ सव्वेसुं समवरसणेसुं ।। ७४६।।
२०००। १८००। १६००। १४००। १२००। १०००। ८००। ६००। ४००। ३६०। ३२०। २८०।
२४० । २०० । १८० । १६० । १४० । १२० । १०० । ८० । ६० । ४० । ९ । ७ ।
तोरणउदओ अहिओ धूलीसालाण उदयसंखादो । तत्तो य सादिरेको गोउरदाराण सयलाणं ।। ७४७।।
चउवीसं चेय कोसा धूलीसालाण मूलवित्थारा । बारसवग्गेण हिदा णेमिजिणंतं कमेण एक्कूणा।।७४८।।

एक सौ आठ होते हैं।।७३८।।

काल, महाकाल, पाण्डु, माणवक, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगल और नानारत्न ये नव निधियां प्रत्येक एक सौ आठ होती हैं।। ७३९।।.

उक्त कालादिक निधियाँ क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य (मालादिक), भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, महल, आभरण और सम्पूर्ण रत्नों को देती हैं।। ७४०।।

एक-एक पुतली के ऊपर गोशीर्ष, मलयचन्दन और कालागरु आदिक धूपों के गंध से व्याप्त एक-एक धूपघट होता है।।७४१।।

धूलिसाल सम्बन्धी गोपुरों के प्रत्येक बाह्य भाग में सैकड़ों मकरतोरण और अभ्यन्तर भाग में सैकड़ों रत्नमय तोरण होते हैं।। ७४२।।

गोपुर द्वारों के बीच दोनों पार्श्व भागों में रत्नों से निर्मित और नृत्य करती हुई देवांगनाओं के समूह से युक्त एक-एक नाट्यशाला होती है।। ७४३।।

धूलिसाल के चारों गोपुरों में से प्रत्येक में, हाथ में उत्तम रत्नदण्डको लिये हुए ज्योतिष्क देव द्वाररक्षक होते हैं।। ७४४।।

चारों गोपुर द्वारों के बाह्य और अभ्यन्तर भाग में विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित एवं सुखपूर्वक सुन्दर संचार के योग्य सीढ़ियाँ होती हैं।। ७४५।।

सब समवसरणों में धूलिसालों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकर के शरीर के उत्सेध प्रमाण से चौगुणी होती है।।७४६।।

धूलिसालों की ऊँचाई की संख्या से तोरणों की ऊँचाई अधिक होती है और इससे भी अधिक समस्त गोपुरों की ऊँचाई होती है।।७४७।।

भगवान् ऋषभदेव के समवरण में धूलिसालका मूल विस्तार बारह के वर्ग से भाजित चौबीस कोस प्रमाण था। फिर इसके आगे भगवान् नेमिनाथपर्यन्त भाज्य राशि में से क्रमशः एक-एक कम होता गया है।। ७४८।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२।
१४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४।
११। १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ३।
१४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४।

अडसीदिदोसएहिं भजिदा पासम्मि पंच कोसा य । एक्को य वड्ढमाणे कोसो बाहत्तरीहरिदो।। ७४९।।

५ १
२८८ ७२

मज्झिमउवरिमभागे धूलीसालाण रुंदउवएसो। कालवसेण पणट्ठो सरितीरुप्पण्णविडओ व्व।। ७५०।।

। धूलीसाला समत्ता।

ताणब्भंतरभागे चेत्तप्पासादणामभूमीओ । वेढंति सयलछित्तं जिणपुरपासादसरिसाओ ।। ७५१।।

एक्केक्कं जिणभवणं पासादा पंच पंच अंतरिदा । विविहवणसंडमंडणवरवावीकूवकमणिज्जा ।। ७५२।।

जिणपुरपासादाणं उस्सेहो णियजिणिंदउदएण । बारहदेण य सरिसो णट्ठो दीहत्तवासउवदेसो।। ७५३।।

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० । १२०० । १०८० ।
९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० ।
२७ । २१ ।

दुसयचउसट्ठिजोयणमुसहे एक्कारसोणमणुकमसो । चउवीसवग्गभजिदं णेमिजिणं जाव पढमखिदिरुंदं।।७५४।।

२६४। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९। १९८। १८७। १७६। १६५। १५४। १४३। १३२।
५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६।
१२१। ११०। ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३।
५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में धूलिसाल का मूल विस्तार दो सौ अठासी से भाजित पांच कोस और वर्धमान भगवान् के बहत्तर से भाजित एक कोस प्रमाण था।। ७४९।।

धूलिसालों के मध्य ओर उपरिम भाग में जो विस्तार होता है, उसका उपदेश कालवश से नदी तीरोत्पन्न वृक्ष के समान नष्ट हो गया है।। ७५०।।

धूलिसालों का वर्णन समाप्त हुआ।

उन धूलिसालों के अभ्यन्तर भाग में जिनपुर सम्बन्धी प्रासादों के सदृश चैत्य-प्रासाद नामक भूमियां सकल क्षेत्र को वेष्टित करती हैं।। ७५१।।

एक-एक जिन भवन के अन्तराल से पांच-पांच प्रासाद है, जो विविध प्रकार के वन समूहों से मण्डित और उत्तम वापिकाओं एवं कुओं से रमणीय होते हैं।। ७५२।।

जिनपुर और प्रासादों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारहगुणी होती है। इनकी लम्बाई और विस्तार के प्रमाण का उपदेश नष्ट हो गया है।। ७५३।।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में प्रथम पृथ्वी का विस्तार चौबीस के वर्ग से भाजित दो सौ चौंसठ योजन था। फिर इससे आगे नेमिनाथ तीर्थंकर तक भाज्य राशि में से क्रमशः उत्तरोत्तर ग्यारह कम होते गये हैं।। ७५४।।

पणवण्णासा कोसा पासजिणे अट्ठसीदिदुसयहिदा । बावीस वीरणाहे बारसवग्गेहिं पविभत्ता।।७५५।।

को । ५५ । ४४ ।

।२८८ । २८८।

। चेदियपासादभूमी सम्मत्ता ।

आदिमखिदीसु पुह पुह वीहीणं दोसु-दोसु पासेसुं । दोद्दो णट्टयसाला वरकंचणरयणणिम्मविदा।।७५६।।

२ । २।

णट्टयसालाण पुढं उस्सेहो णियजिणंगउदएहिं । बारसहदेहिं सरिसो णट्टा दीहत्तवासउवएसा।।७५७।।

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० । १२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

एक्केक्काए णट्टयसालाए चउहदट्ठरंगाणि। एक्केक्कस्सिं रंगे भावणकण्णाउ बत्तीसं।।७५८।।

गायंति जिणिंदाणं विजयं विविहत्थदिव्वगीदेहिं । अभिणइय णच्चणीओ खिवंति कुसुमंजलिं ताओ।।७५९।।

एक्केकाए णट्टयसालाए दोण्णि दोण्णि धूवघढा । णाणासुगंधधूवप्पसरेणं वासियदिगंता।। ७६०।।

। णट्टयसाला समत्ता।

णियणियपढमखिदीए बहुमज्झे चउसु वीहिमज्झम्मि।

माणत्थंभखिदीओ समवट्टा विविहवण्णणसहाओ।।७६१।।

अब्भंतरम्मि ताणं चउगोउरदारसुंदरा साला । णच्चंतधयवडाया मणिकिरणुज्जोइअदियंता।। ७६२।।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के सवसरण में प्रथम पृथ्वी का विस्तार दो सौ अठासी से भाजित पचपन कोस और वीरनाथ भगवान् के बारह के वर्ग अर्थात् एक सौ चवालीस से भाजित बाईस कोस प्रमाण था।। ७५५।।

चैत्य-प्रासादा भूमिका कथन समाप्त हुआ।

प्रथम पृथवियों में पृथक्-पृथक् वीथियों के दोनों पार्श्व भागों में उत्तम सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित दो-दो नाट्शालायें होती हैं।।७५६।।

नाट्यशालाओं की ऊँचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों के शरीर की ऊँचाई के सदृश होती है तथा इनकी लम्बाई और विस्तार का उपदेश नष्ट हो गया है।। ७५७।।

प्रत्येक नाट्यशाला में चार से गुणित आठ अर्थात् बत्तीस रंग भूमियां और प्रत्येक रंगभूमि में बत्तीस भवनवासी कन्याएँ अभिनय पूर्वक नृत्य करती हुई नाना प्रकार के अर्थों से युक्त दिव्य गीतों द्वारा तीर्थंकरों की विजय के गीत गाती हैं और पुष्पांजलियों का क्षेपण करती हैं।। ७५८-७५९।।

प्रत्येक नाट्यशाला में नाना प्रकार की सुगन्धित धूप के प्रसार से दिङ्मण्डल को सुवासित करने वाले दो-दो धूप घट रहते हैं।। ७६०।।

। नाट्यशालाओं का वर्णन समाप्त हुआ।

अपनी-अपनी प्रथम पृथ्वी के बहुमध्य भाग में चारों वीथियों के बीचों बीच समान गोल और विविध प्रकार वर्णन के योग्य मानस्तम्भ भूमियाँ होती हैं।। ७६१।।

उनके अभ्यन्तर भाग में चार गोपुर द्वारों से सुन्दर, नाचती हुई ध्वजा-पताकाओं से सहित और मणियों की

ताणं पि मज्झभागे वणसंडा विविहदिव्वतरुभरिया ।
कलकोइलकलकलया किण्णरमिहुणेहि संकिण्णा।।७६३।।

तम्मज्झे रम्माइं पुव्वादिदिसासु लोयपालाणं । सोमजमवरुणधणदा होंति महाकीडणपुराइं ।। ७६४।।
ताणब्भंतरभागे साला चउगोउरादिपरियरिया । तत्तो वणवावीओ कलिंदवरमाणणसहाओ।। ७६५।।
ताणं मज्झे णियणियदिसासु दिव्वाणि कीडाणपुराणिं । हुदवहणेरिदमारुदईसाणाणं च लोयपालाणं।।७६६।।
ताणब्भंतरभागे सालाओ वरविसालदाराओ । तम्मज्झे पीढाणिं एक्केक्के समवसरणम्मि ।।७६७।।
वेरुलियमयं पढमं पीढं तस्सोवरिम्मि कणयमयं । दुइयं तस्स अ उवरिं तदियं बहुवण्णरयणमयं।।७६८।।
आदिमपीढुच्छेहो दंडा चउवीस रूवतियहरिदा । उसहजिणिंदे कमसो रूवूणा णेमिपज्जंते।। ७६९।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९। ८।
३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३।
७ । ६ । ५ । ४ । ३
३ । ३ । ३ । ३ । ३

पासे पंच च्छहिदा तिदयहिदा दोण्णि वड्ढमाणजिणे । सेसाण अद्धमाणा आदिमपीढस्स उदयाओ।।७७०।।

५। २।
६। ३।

किरणों से दिङ्मण्डल को प्रकाशित करने वाले कोट होते हैं।। ७६२।।

इनके भी मध्य भाग में विविध प्रकार के दिव्य वृक्षों से युक्त, सुन्दर कोयलों के कल-कल शब्दों से मुखरित और किन्नर युगलों से संकीर्ण वनखंड होते हैं।। ७६३।।

इनके मध्य में पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से सोम, यम, वरुण और कुबेर, इन लोकपालों के रमणीय महा क्रीड़ानगर होते हैं।। ७६४।।

उनके अभ्यन्तर भाग में चार गोपुरादि से वेष्टित कोट और फिर इसके आगे वनवापिकाएँ होती हैं जो प्रफुल्लित नीलकमलों से शोभायमान हैं।। ७६५।।

उनके बीच में लोकपालों के अपनी अपनी दिशा तथा आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान, इन विदिशाओं में भी दिव्य क्रीडनपुर होते हैं।। ७६६।।

उनके अभ्यन्तर भाग में उत्तम विशाल द्वारों से युक्त कोट होते हैं और फिर इनके बीच में पीठ होते हैं। ऐसी रचना प्रत्येक समवसरण में होती है।। ७६७।।

इनमें से पहला पीठ वैडूर्यमणिमय, उसके ऊपर सुवर्णमय द्वितीय पीठ, और उसके भी ऊपर बहुत वर्ण के रत्नों से निर्मित तृतीय पीठ होता है।। ७६८।।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में प्रथम पीठ की ऊँचाई तीन से भाजित चौबीस धनुष प्रमाण थी। फिर इसके आगे नेमिनाथपर्यन्त क्रम से उत्तरोत्तर भाज्य राशि में से एक अंक कम होता गया है।। ७६९।।

इसके आगे पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवसरण में प्रथम पीठ की ऊँचाई छः से भाजित पाँच, और वर्धमान जिन के तीन से भाजित दो धनुष प्रमाण थी। शेष दो पीठों की ऊँचाई प्रथम पीठ की ऊँचाई से आधी थी।।७७०।।

विदियपीढाण उदओ दंड–

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९। ८।
६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६।
७। ६। ५। ४। ३। ५। २।
६। ६। ६। ६। ६। १२। ६।

तदियपीढाणं उदयं दंडा–

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९। ८।
६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६।
७। ६। ५। ३। ५। २।
६। ६। ६। ६। १२। ५।

पीढत्तयस्स कमसो सोवाणं चउदिसासु एक्केक्कं। अट्ठं चउ चउ माणं जिणजाणिददीहवित्थारा।।७७१।।

पढमपीढाणं–

८। ८।

विदियपीढाणं सोवाणं–

४। ४।

तदियपीढाणं सोवाणं–

४। ४।

पढमाणं विदियाणं वित्थारं माणथंभपीढाणं। जाणेदि जिणेंदो त्ति य उच्छिण्णो अम्ह उवएसो।। ७७२।।

दंडा तिण्णि सहस्सा तियहरिदा तदियपीढवित्थारो।
उसहजिणिंदे कमसो पणघणहीणा य जाव णोमिजिणं।।७७३।।

द्वितीय पीठों की ऊँचाई–(मूल में देखिए)

तृतीय पीठों की ऊँचाई–(मूल में देखिए)

चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में इन तीनों पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण क्रम से आठ, चार और चार है। इन सीढ़ियों की लम्बाई और विस्तार जिन भगवान् ही जानते हैं, अर्थात् उसका उपदेश नष्ट हो गया है।।७७१।।

प्रथम पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण–(मूल में देखिए)

द्वितीय पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण–(मूल में देखिए)

तृतीय पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण–(मूल में देखिए)

प्रथम और द्वितीय मानस्तम्भ पीठों का विस्तार जिनेन्द्र ही जानते हैं, हमारे लिए तो इसका उपदेश अब नष्ट हो चुका है।। ७७२।।

ऋषभदेव के समवसरण में तृतीय पीठ का विस्तार तीन से भाजित तीन हजार धनुष प्रमाण था। फिर इसके आगे

३०००। २८७५। २७५०। २६२५। २५००। २३७५। २२५०। २१२५। २०००। १८७५। १७५०।
३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३।
१६२५। १५००। १३७५। १२५०। ११२५। १०००। ८७५। ७५०। ६२५। ५००। ३७५।
३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३।

पणवीसाधियछस्सयधणूणि पासम्मि छक्कभजिदाणि। दंडाणं पंचसदा छक्कहिदा वीरणाहम्मि।। ७७४।।

६२५। ५००।
६। ६।

पीढाण उवरि माणत्थंभा उसहम्मि ताण बहुलत्तं । दुपणणवतिदुगदंडा अंककमे तिगुणअट्ठपविहत्ता।।७७५।।

अडणउदिअधियणवसयऊणा कमसो य णेमिपरियंतं।
पण्णकदी पंचूणा चउवीसहिदा य पासणाहम्मि।।७७६।।

उसहादिणेमिपरियंतं–

२३९५२। २२९५४। २१९५६। २०९५८। १९९६०। १८९६२। १७९६४। १६९६६।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
१५९६८। १४९७०। १३९७२। १२९७४। ११९७६। १०९७८। ९९८०। ८९५२।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
७९८४। ६९८६। ५९८८। ४९९०। ३९९२। २९९४। २४९५।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।

पंचसया रूऊणा छक्कहिदा वड्ढमाणदेवम्मि। णियणियजिणउदयेहिं बारसगुणिदेहिं थंभउच्छेहो।। ७७७।।

४९९ । ६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० ।
६
१२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० ।
३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

नेमिजिनेन्द्र तक क्रमशः उत्तरोत्तर पांच का घन अर्थात् एक सौ पच्चीस भाज्य राशि में से कम होते गए हैं।।७७३।।

भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में तृतीय पीठ का विस्तार छः से भाजित छः सौ पच्चीस धनुष और वीरनाथ भगवान् के छः से भाजित पाँच सौ धनुष प्रमाण था।। ७७४।।

पीठों के ऊपर मानस्तम्भ होते हैं। उनका बाहल्य ऋषभदेव के समवसरण में आठ के तिगुणे अर्थात् चौबीस से प्रविभक्त, अंक क्रम से दो, पाँच, नौ, तीन और दो अर्थात् तेईस हजार नौ सौ बावन (२३९५२) धनुष प्रमाण था। इसके आगे नेमिनाथ तीर्थंकर तक भाज्य राशि में से क्रम से उत्तरोत्तर नौ सौ अट्टानवे कम होते गए हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में मानस्तम्भों का बाहल्य चौबीस से भाजित पचास के वर्ग में से पाँच कम अर्थात् दो हजार चार सौ पंचानवे बटे चौबीस धनुष प्रमाण था।। ७७५-७७६।।

ऋषभादिनेमिपर्यन्त–(मानस्तम्भों का बाहल्य मूल में देखिए)

वर्धमान तीर्थंकर के समवसरण में मानस्तम्भों का बाहल्य छः से भाजित एक कम पाँच सौ धनुष प्रमाण था। इन मानस्तम्भों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकर के शरीर की ऊँचाई से बारह गुणी होती है।।७७७।।

जोयणमधियं उदयं माणत्थंभाण उसहसामिम्मि । कमहीणं सेसेसुं एवं केई परूवेंति ।। ७७८।।

पाठान्तरम् ।

२४ । २३ । २२ । २१ । २० । १९ । १८ । १७ । १६ । १५ । १४ । १३ । १२ । ११
२४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ ।
१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । ५ । ४
२४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । ४८ । ४८ ।

थंभाण मूलभागा दुसहस्सपमाण वज्जदारड्ढा। मज्झिमभागा वट्टा एक्केक्कं पलिहणिम्मविया।।७७९।।

२००० ।

उवरिमभागा उज्जलवेरुलियमया विभूसिया परदो। चामरघंटाकिंकिणिरयणावलिकेदुपहुदीहिं।।७८०।।
ताणं चूले उवरिं अट्ठमहापाडिहेरजुत्ताओ । पडिदिसमेक्केक्काओ रम्माओ जिणिंदपडिमाओ ।।७८१।।

माणुल्लासयमिच्छा वि दूर दो दंसणेण थंभाणं।
जं होंति गलिदमाणा माणत्थंभं ति तं भणिदं।। ७८२।।
सालत्तयबाहिरए पत्तेक्कं चउदिसासु होंति दहा ।
वीहिं पडि पुव्वादिक्कमेण सव्वेसु समवसरणेसु।।७८३।।

णंदुत्तरणंदाओ णंदिमई णंदिघोसणामाओ । पुव्वत्थंभे पुव्वादिएसु भागेसु चत्तारो ।। ७८४।।
विजया य वइजयंता जयंतअवराजिदाइ णामेहिं। दक्खिणथंभे पुव्वादिएसु भागेसु चत्तारो।। ७८५।।

ऋषभनाथ स्वामी के समवसरण में मान स्तम्भों की ऊँचाई एक योजन से अधिक थी। शेष तीर्थंकर के मानस्तम्भों की ऊँचाई क्रम से हीन होती गई है, ऐसा कितने ही आचार्य निरूपण करते हैं।। ७७८।।

पाठान्तर।

प्रत्येक मानस्तम्भ के मूल भाग दो हजार (धनुष) प्रमाण वज्र द्वारों से युक्त और मध्यम भाग स्फटिक मणि से निर्मित वृत्ताकार होते हैं।। ७७९।।

इन मानस्तम्भों के उज्ज्वल वैडूर्य मणिमय उपरिम भाग चारों ओर चमर, घंटा, किंकिणी, रत्नहार एवं ध्वजा इत्यादिकों से विभूषित रहते हैं।। ७८०।।

इनके शिखर पर उपरिम भाग में प्रत्येक दिशा में, आठ महाप्रतिहार्यों से युक्त रमणीय एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमाएँ होती हैं।। ७८१ ।।

चूँकि दूर से ही मानस्तम्भों के देखने से मान से युक्त मिथ्यादृष्टि लोग अभिमान से रहित हो जाते हैं, इसीलिए इनको 'मानस्तम्भ' कहा गया है।। ७८२ ।।

सब समवसरणों में तीनों कोटों के बाहर चार दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में क्रम से पूर्वादिक वीथी के आश्रित द्रह (वापिकाएँ) होते हैं।। ७८३।।

पूर्व मानस्तम्भ के पूर्वादिक भागों में क्रम से नन्दोत्तरा, नन्दा, नन्दिमती और मन्दिघोषा नामक चार द्रह होते हैं।।७८४।।

दक्षिण मानस्तम्भ के आश्रित पूर्वादिक भागों में क्रमशः विजया, वैजयन्ता, जयन्ता और अपराजिता नामक चार द्रह होते हैं।। ७८५ ।।

अभिधाणे य असोगा सुप्पहजुद्धाउ कुमुदपुंडरिया। पच्छिमथंभे पुव्वादिएसु भाएसु चत्तारो।।७८६।।
हिदयमहाणंदाओ सुप्पइबुद्धा पहंकरा णामा । उत्तरथंभे पुव्वादिएसु भाएसु चत्तारो।। ७८७।।
एदे समचउरस्सा पवरदहा पउमपहुदिसंजुत्ता।
टंकुक्किण्णा वेदियचउतोरणरयणमालरमणिज्जा।।७८८।।
सव्वदहाणं मणिमयसोवाणा चउतडेसु पत्तेक्कं । जलकीडणजोग्गेहिं संपुण्णं दिव्वदव्वेहिं ।। ७८९।।
भावणवेंतरजोइसकप्पंवासी य कीडणपयट्टा । णरकिण्णरमिहुणाण य कुंकुमपंकेण पिंजरिदा ।। ७९०।।
एक्केक्ककमल संडे दोद्दो कुंडाणि णिम्मलजलाइं। सुरणरतिरिया तेसुं धुव्वंतो चरणरेणूवो ।। ७९१ ।।
। माणत्थंभा समत्ता ।
वररयणकेदुतोरणघंटाजालादिएहिं जुत्ताओ।आदिमवेदी वि तहा सव्वेसु वि समवसरणेसु ।। ७९२ ।।
गोउरदुवारवाउलपहुदी सव्वाण वेदियाण तहा । अट्ठुत्तरसयमंगलणवणिहिदव्वाई पुव्वं व ।। ७९३ ।।
णवरि विसेसो णियणियधूलीसालाण मूलरुंदेहिं । मूलोवरिभागेसुं समाणवासाओ वेदीओ ।। ७९४।।
२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३।
१४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४।

पश्चिम स्तम्भ के आश्रित पूर्वादिक भागों में क्रम से अशोका, सुप्रतियुद्धा (सुप्रसिद्धा, या सुप्रबुद्धा) कुमुदा और पुण्डरीका नामक चार द्रह होते हैं।। ७८६ ।।

उत्तर मानस्तम्भ के आश्रित पूर्वादिक भागों में क्रम से हृदयानन्दा, महानन्दा, सुप्रतिबुद्धा और प्रभंकरा नामक चार द्रह होते हैं।। ७८७ ।।

ये उपर्युक्त उत्तम द्रह समचतुष्कोण, कमलादिक से संयुक्त, टंकोत्कीर्ण और वेदिका, चार तोरण एवं रत्न मालाओं से रमणीय होते हैं।। ७८८ ।।

सब द्रहों के चारों तटों में से प्रत्येक तट पर जल क्रीड़ा के योग्य दिव्य द्रव्यों से परिपूर्ण मणिमयी सोपान होते हैं।।७८९।।

इन द्रहों में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव क्रीड़ा में प्रवृत्त होते हैं, तथा वे मुनष्य एवं किन्नर युगलों के कुंकुमपंक से पीतवर्ण रहते हैं।। ७९० ।।

प्रत्येक कमलखंड अर्थात् द्रह के आश्रित निर्मल जल से परिपूर्ण दो-दो कुण्ड होते हैं, जिनमें देव, मनुष्य ओर तिर्यञ्च अपने पैरों की धूलि को धोया करते हैं।। ७९१।।

मानस्तम्भों का वर्णन समाप्त हुआ ।

सब समवसरणों में उत्तम रत्नमय ध्वजा, तोरण और घंटाओं के समूहादिक से युक्त प्रथम वेदियाँ भी उसी प्रकार होती हैं।। ७९२ ।।

सब वेदियों के गोपुर द्वार और पुत्तलिका प्रभृति तथा एक सौ आठ मंगलद्रव्य एवं नौ निधियाँ पूर्व के समान होती हैं।। ७९३ ।।

विशेषता केवल यह है कि इन वेदियों के मूल और उपरिम भाग का विस्तार अपने-अपने धूलिसालों के

१२। ११। १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। १।
१४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। २८८। ७२।

। पढमवेदी समत्ता ।

खाइयखेत्ताणि तदो हवंति वरसच्छसलिलपुण्णाणि।
णियणियजिणउदएहिं चउभजिदेहिं सरिच्छगहिराणि।।७९५।।

१२४। २२५। १००। १७५। ७५। १२५। ५०। ७५। २५। ४५। २०। ३५। १५।
२ २ २ २ २ २
२५। ४५। १०। ३५। १५। २५। ५। १५। ५। हत्था। ९। ७।
२ ४ ४ २ ४ ४ २ ४ ४

फुल्लंतकुमुदकुवलयकमलवणामोदभवसुगंधीणि। मणिमयसोवाणजुदाणि पक्खीहिं हंसपहुदीहिं।।७९६।।
णियणियपढमखिदीणं जेत्तियमेत्तं खु वासपरिमाणं। णियणियबिदियखिदीणं तेत्तियमेत्तं च पत्तेक्कं।।७९७।।

२६४। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९। १९८। १८७। १७६। १६५। १५४। १४३।
५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६।
१३२। १२१। ११०। ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३। ५५। ११
५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। २८८। ७२

चेत्तप्पासादखिदिं केई णेच्छंति ताण उवएसे । खाइयखिदीय जोयणमुसहे सेसेसु कमहीणं।। ७९८।।

पाठान्तरम् ।

धूलीसालाणं वित्थरेहिं सहियखाइयखेत्ताणं कमसो रुंदजोयणाणि

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।

मूल विस्तार के समान होता है।। ७९४ ।।

प्रथम वेदी का कथन समाप्त हुआ ।

इसके आगे उत्तम एवं स्वच्छ जल से परिपूर्ण और अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण गहरे खातिका क्षेत्र होते हैं।। ७९५ ।।

ये खातिकाएँ फूले हुए कुमुद, कुवलय और कमल के वनों के आमोद से सुगन्धित तथा मणिमय सोपानों एवं हंस प्रभृति पक्षियों से सहित होती हैं।। ७९६ ।।

अपनी-अपनी प्रथम पृथ्वी के विस्तार का जितना प्रमाण होता है, उतना ही अपनी-अपनी प्रत्येक द्वितीय पृथ्वी का भी विस्तार हुआ करता है।। ७९७ ।।

कोई-कोई आचार्य चैत्यप्रासाद भूमि को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके उपदेशानुसार भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में खातिका भूमि का विस्तार एक योजन प्रमाण था और शेष तीर्थंकरों के क्रम से हीन था ।। ७९८ ।।

पाठान्तर ।

धूलिसाल के विस्तार के साथ खातिका क्षेत्र का विस्तार क्रम से इतने योजन रहता है। (मूल में देखिए)

क्रम से धूलिसाल का मूल विस्तार (मूल में देखिए)

११ । १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । ५ । ४
२४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । ४८ । ४८ ।

विदियाओ वेदीओ णियणियपढमिल्लवेदियाहिं समा । एसो णवरि विसेसो वित्थारा दुगुणपरिमाणं।।७९९।।
वित्थारं दुगुणदुगुणं होदि

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९।
७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२।
८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। १।
७२। ७२। ७२। ७२। ७२। ७२। १४४। ३६।

। विदियवेदीपमाणं सम्मत्तं ।

पुण्णायणायकुज्जयसयवत्तइमुत्तपहुदिजुत्ताणि । वल्लीखेत्ताणि तदो कीडणगिरिगुरुवसोहाणि।।८००।।
मणिसोवाणमणोहरपोक्खरणीफुल्लकमलसंडाणि । ताणं रुंदो दुगुणो खाइयखेत्ताण रुंदादो।।८०१।।

२६४ । २५३ । २४२ । २३१ । २२० । २०९ । १९८ । १८७ । १७६ । १६५ । १५४ । १४३ ।
२८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ ।
१३२ । १२१ । ११० । ९९ । ८८ । ७७ । ६६ । ५५ । ४४ । ३३ । ५५ । ४४ ।
२८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । २८८ । १४४ । १४४ ।

। तदियवल्लीभूमी सम्मत्ता ।

तत्तो विदिया साला धूलीसालाण वण्णणेहिं समा। दुगुणो रुंदो दारा रजदमया जक्खरक्खणा णवरि।।८०२।।

२४ । २३ । २२ । २१ । २० । १९ । १८ । १७ । १६ । १५ । १४ । १३ । १२ । ११ । १० ।
७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ ।
९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । ५ । १ ।
७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । ७२ । १४४ । ३६ ।

। विदियसाला सम्मत्ता ।

दूसरी वेदियाँ अपनी-अपनी पूर्व वेदिकाओं के सदृश हैं। परन्तु विशेषता यह है कि इनका विस्तार दुगुणे प्रमाण है।।७९९।।

विस्तार दूना-दूना होता है (मूल में देखिए)

द्वितीय वेदियों का प्रमाण समाप्त हुआ।

इसके आगे पुन्नाग, नाग, कुब्जक, शतपत्र एवं अतिमुक्त इत्यादि से संयुक्त, क्रीड़ा पर्वतों से अतिशय शोभायमान और मणिमय सोपानों से मनोहर वापिकाओं के विकसित कमल समूहों से सहित वल्ली क्षेत्र होते हैं। इनका विस्तार खातिका क्षेत्रों के विस्तार से दुगुणा रहता है।। ८००-८०१।।

तृतीय वल्ली भूमि समाप्त हुई।

इसके आगे दूसरा कोट है, जिसका वर्णन धूलिसालों के समान ही है। परन्तु इतना विशेष है कि इसका विस्तार दुगुणा और द्वार रजतमय एवं यक्ष जाति के देवों द्वारा रक्षित हैं।। ८०२ ।।

द्वितीय कोट का वर्णन समाप्त हुआ।

तत्तो चउत्थउववणभूमीए असोयसत्तवण्णवणं । चंपयचूदवणाणं पुव्वादिदिसासु राजंति।।८०३।।
विविहवणसंडमंडणविविहणईपुलिणकीडणगिरीहिं । विविहवरवाविआहिं उववणभूमीउ रम्माओ।।८०४।।
एक्केक्काए उववणखिदिए तरवो यसोयसत्तदला । चंपयचूदा सुंदरभूदा चत्तारि-चत्तारि।।८०५।।
चामरपहुदिजुदाणं चेत्ततरूणं हवंति उच्छेहा । णियणियजिणउदएहिं बारसगुणिदेहिं सारिच्छा।।८०६।।
६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००। १०८०।
९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०।
१८० । १२० । २७ । २१ ।
मणिमयजिणपडिमाओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ता । एक्केक्कस्सि चुत्तहुमम्मि चत्तारि-चत्तारि ।। ८०७
उववणवाविजलेणं सित्ता पेच्छंति एक्कभवजाइं। तस्स णिरिक्खणमेत्ते सत्तभवातीदभाविजादीओ।।८०८।।
सालत्तयपरिअरिया पीढत्तयउवरि माणथंभा य । चत्तारो-चत्तारो एक्केक्के चेत्तरुक्खम्मि ।।८०९।।
सहिदा वरवावीहिं कमलुप्पलकुमुदपरिमलिल्लाहिं । सुरणरमिहुणतणुग्गदकुंकुमपंकेहिं पिंजरजलाहिं।।८१०।।
कत्थ वि हम्मा रम्मा कीडणसालाओ कत्थ वि वराओ । कत्थ वि णट्टयसाला णच्चंतसुरेंगणाइण्णा।।८११।।
बहुभूमीभूसणया सव्वे वरविविहरयणणिम्मविदा । एदे पंतिकमेणं उववणभूमीसु सोहंति।।८१२।।

इसके आगे चौथी उपवन भूमि होती है, जिसमें पूर्वादिक दिशाओं के क्रम से अशोकवन, सप्तपर्णवन, चम्पकवन और आम्रवन ये चार वन शोभायमान होते हैं।। ८०३।।

ये उपवन भूमियाँ विविध प्रकार के वन समूहों से मण्डित, विविध नदियों के पुलिन, और क्रीड़ा पर्वतों से तथा अनेक प्रकार की उत्तम वापिकाओं से रमणीय होती हैं।। ८०४।।

एक-एक उपवन भूमि में अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र ये चार-चार सुन्दर वृक्ष होते हैं।। ८०५।।

चामर आदि से सहित चैत्यवृक्षों की ऊँचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई के सदृश होती है।।८०६।।

एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित आठ महाप्रातिहार्यों से संयुक्त चार-चार मणिमय जिन प्रतिमाएँ होती हैं।।८०७।।

उपवन की वापिकाओं के जल से अभिषिक्त जनसमूह एक भव जाति को देखते हैं और उसके निरीक्षण मात्र के होने पर अर्थात् वापी के जल में निरीक्षण करने पर सात अतीत व अनागत भव जातियों को देखते हैं।।८०८।।

एक-एक चैत्य वृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित व तीन पीठों के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं।।८०९।।

ये मानस्तम्भ कमल, उत्पल, और कुमुदों की सुगन्धि से युक्त तथा देव एवं मुनष्य युगलों के शरीर से निकली हुई केशर के पंक से पीत जलवाली उत्तम वापियों सहित होते हैं।।८१०।।

वहां कहीं पर रमणीय भवन, कहीं उत्तम क्रीड़नशाला और कहीं नृत्य करती हुई देवांगनाओं से आकीर्ण नाट्यशालाएँ होती हैं।।८११।।

बहुत भूमियों से (खण्डों से) भूषित तथा उत्तम और नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित ये सब भवन पंक्ति क्रम से उपवन भूमियों में शोभायमान होते हैं।। ८१२।।

ताणं हम्मादीणं सव्वेसुं होंति समवसरणेसुं । णियणियजिणउदएहिं बारसगुणिदेहिं समउदया।।८१३।।
णियणियपढमखिदीणं जेत्तियमेत्तं हु रुंदपरिमाणं । णियणियवणभूमीणं तेत्तियमेत्तं हवे दुगुणं।।८१४।।

२६४। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९।१९८।१८७।१७६।१६५।१५४।१४३।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८।२८८।२८८।२८८।२८८।२८८।२८८।
१३२। १२१। ११० । ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३। ५५। ४४।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८।२८८। २८८।२८८।२८८।५७६।५७६।

। तुरिमवणभूमी सम्मत्ता।

दोद्दोसुं पासेसुं सव्ववणप्पणिधिसव्ववीहीण । दोद्दो णट्टयसाला ताण पुढं आदिमट्ठसालासु।।८१५।।
भावणसुरकण्णाओ णच्चंते कप्पवासिकण्णाओ । अग्गिमअडसालासुं पुव्वा व सुवण्णणा सव्वा।।८१६।।

।णट्टयसाला सम्मत्ता।

तदियाओ वेदिओ हवंति णियबिदियवेदियाहिं समा। णवरि विसेसो एसो जक्खिंदा दाररक्खणया।।८१७।।

। तदिया वेदी सम्मत्ता ।

तत्तो धयभूमीए दिव्वधया होंति ते च दसभेया । सीहगयवसहखगवइसिहिससिरविहंसपउमचक्काय।।८१८।।
अट्ठुत्तरसयसहिए एक्केक्का तं पि अट्ठअधियसया । खुल्लयधयसंजुत्ता पत्तेक्कं चउदिसेसु फुडं।।८१९।।
सुण्णअडअट्ठुणहसगचउक्कअंकक्कमेण मिलिदाणं । सव्वधयाणं संखा एक्केक्के समवसरणम्हि।।८२०।।

४७० ८८०।

सब समवसरणों में इन हर्म्यादिकों की ऊँचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई के बराबर होती है।। ८१३।।

अपनी-अपनी प्रथम पृथ्वी के विस्तार का जितना प्रमाण होता है, उससे दूना अपनी-अपनी उपवन भूमियों के विस्तार का प्रमाण होता है।। ८१४।।

। चतुर्थ वनभूमि का कथन समाप्त हुआ।

सब वनों के आश्रित सब वीथियों के दोनों पार्श्व भागों में दो दो नाट्यशालाएँ होती हैं। इनमें से आदि की आठ नाट्यशालाओं में भवनवासिनी देव कन्याएँ और इससे आगे की आठ नाट्यशालाओं में कल्पवासिनी कन्याएँ नृत्य किया करती हैं। इन नाट्यशालाओं का सुन्दर वर्णन पूर्व के समान ही है।।८१५-८१६।।

नाट्यशालाओं का कथन समाप्त हुआ।

तीसरी वेदियाँ अपनी-अपनी दूसरी वेदियों के समान होती हैं। केवल विशेषता यह है कि यहाँ पर द्वार रक्षक यक्षेन्द्र हुआ करते हैं। ८१७।।

तृतीय वेदी समाप्त हुई।

इसके आगे ध्वजभूमि में दिव्य ध्वजाएँ होती हैं जो सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन चिह्नों से चिह्नित दश प्रकार की होती हैं।। ८१८।।

चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में इन दश प्रकार की ध्वजाओं में से एक-एक एक सौ आठ रहती हैं और इनमें से भी प्रत्येक ध्वजा अपनी एक सौ आठ क्षुद्रध्वजाओं से संयुक्त होती हैं।। ८१९।।

शून्य, आठ, आठ, शून्य, सात, और चार, इन अंकों के क्रमशः मिलाने पर जो संख्या उत्पन्न हो उतनी ध्वजाएँ एक-एक समवरसरण में हुआ करती हैं।। ८२०।।

संलग्गा सयलधया कणयत्थंभेसु रयणखचिदेसुं । थंभुच्छेहो णियणियजिणाण उदएहिं बारसहदेहिं।।८२१।।

६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००। १०८०।
९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०।
१८०। १२०। २७। २१।

उसहम्मि थंभरुंदं चउसट्ठीअधियदुसयपव्वाणि । तियभजिदाणिं कमसो एक्करसूणाणि णेमिपरियंतं।।८२२।।

पासम्मि भंभरुंदा पव्वा पणवण्ण छक्कपविहत्त । चउदालच्छक्कहिदा णिद्दिट्ठा वड्ढमाणम्मि।।८२३।।

२६४। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९। १९८। १८७। १७६। १६५। १५४। १४३।
३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३।
१३२। १२१। ११०। ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३। ५५। ४४।
३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ६। ६।

धयदंडाणं अंतरमुसहजिणे छस्सयाणि चावाणि। चउवीसेहिं हिदाणिं पणकदिहीणाणि जाव णेमिजिणं।।८२४।।

६००। ५७५। ५५०। ५२५। ५००। ४७५। ४५०। ४२५। ४००। ३७५। ३५०। ३२५। ३००।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।
२७५। २५०। २२५। २००। १७५। १५०। १२५। १००। ७५।
२४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४। २४।

पणुवीसअधियधणुसय अडदालहिदं च पासणाहम्मि । वीरजिणे एक्कसयं तेत्तियमेत्तेहिं अवहरिदं।।८२५।।

१२५। १००।
४८। ४८।

महाध्वजा १० × १०८ × ४ = ४३२०। क्षुद्रध्वजा १० × १०८ × १०८ × ४ = ४६६५६०। समस्त ध्वजा ४३२० + ४६६५६० = ४७०८८०।

समस्त ध्वजाएँ रत्नों से खचित सुवर्णमय स्तम्भों में संलग्न रहती हैं। इन स्तम्भों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारहगुणी हुआ करती है।। ८२१।।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में इन स्तम्भों का विस्तार तीन से भाजित दो सौ चौसठ अंगुल था। फिर इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः भाज्य राशि में ग्यारह कम होते गए हैं।। ८२२।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में इन स्तम्भों का विस्तार छः से विभक्त पचपन अंगुल और वर्धमान स्वामी के छः से भाजित चवालीस अंगुल प्रमाण बतलाया गया है।।८२३।।

ऋषभ जिनेन्द्र के समवसरण में ध्वजदण्डों का अन्तर चौबीस से भाजित छः सौ धनुष प्रमाण था। फिर इसके आगे नेमिजिनेन्द्र तक भाज्य राशि में से क्रमशः उत्तरोत्तर पांच का वर्ग अर्थात् पच्चीस-पच्चीस कम होते गए हैं।।८२४।।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवसरण में इन ध्वजदण्डों का अन्तर अड़तालीस से भाजित एक सौ पच्चीस धनुष और वीर जिनेन्द्र के समवसरण में इतने मात्र अर्थात् अड़तालीस से भाजित एक सौ धनुष प्रमाण था।।८२५।।

णियणियवल्लिखिदीणं जेत्तियमेत्ता हवंति वित्थारा । णियणियधयभूमीणं तेत्तियमेत्ता मुणेदव्वं।।८२६।।

२६४। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९। १९८। १८७। १७६। १६५। १५४। १४३।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८।
१३२। १२१। ११०। ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३। ५५। ४४।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। ५७६। ५७६।

। पंचमधयभूमी सम्मत्ता।

तदिया साला अज्जुणवण्णा णियधूलिसालसरिसमणा। णवरि य दुगुणों वासो भावणय दाररक्खणया।।८२७।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८।
१२। ११। १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। १।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। ५७६। १४४।

। तदियसाला समत्ता ।

तत्तो भूमि छट्ठी दसविहकप्पद्दुमेहिं संपुण्णा । णियणियधयभूमीणं वाससमा कप्पतरुभूमी।।८२८।।

२६४। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९। १९८। १८७। १७६। १६५। १५४। १४३।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८।
१३२। १२१। ११०। ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३। ५५। ४४।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। ५७६। ५७६।

पाणंगतूरियंगा भूसणवत्थंगभोयणंगा य । आलपदीवियभायणमालतेंयगया तरओ।।८२९।।

कत्थ वि वरवावीओ कमलुप्पलकुमुदपरिमलिल्लाओ। सुरणरमिहुणतणुग्गदकुंकुमपंकेहिं पिंजरिजलाओ।।८३०।।
कत्थ वि हम्मा रम्मा कीडणसालाओ कत्थ वि वराओ। कत्थ वि पेक्खणसाला गिज्जंतजिणिंदजयचरिया।।८३१।।

अपनी-अपनी लता भूमियों का जितना विस्तार होता है उतना ही विस्तार अपनी-अपनी ध्वज भूमियों का समझना चाहिए। ८२६।।

पंचम ध्वज भूमि का वर्णन समाप्त हुआ।

इसके आगे चाँदी के समान वर्णवाला तीसरा कोट अपने धूलिसाल कोट के ही सदृश होता है। परन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि इस कोट का विस्तार दूना और द्वार रक्षक भवनवासी देव होते हैं।। ८२७।।

तीसरे कोट का वर्णन समाप्त हुआ ।

इसके आगे छठी कल्पभूमि है, जो दस प्रकार के कल्पवृक्षों से परिपूर्ण और अपनी-अपनी ध्वज भूमियों के विस्तार के सदृश विस्तार वाली होती है।। ८२८।।

इस भूमि में पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग ये दश प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं।। ८२९।।

उक्त भूमि में कहीं पर कमल, उत्पल और कुमुदों की सुगन्ध से परिपूर्ण एवं देव और मनुष्य युगलों के शरीर से निकले हुए केशर के कर्दम से पीत जलवाली उत्तम वापिकाएँ, कहीं पर रमणीय प्रासाद, कहीं पर उत्तम क्रीड़नशालाएँ और कहीं पर जिनेन्द्र देव के विजय चरित्र के गीतों से युक्त प्रेक्षणशालाएँ होती हैं।। ८३०-८३१।।

बहुभूमीभूसणया सव्वे वरविविहरयणणिम्मविदा । एदे पंतिकमेणं सोहंते कप्पभूमीसु।।८३२।।
चत्तारो-चत्तारो पुव्वादिसु महा णमेरुमंदारा । संताणपारिजादा सिद्धत्था कप्पभूमीसुं।। ८३३।।
सव्वे सिद्धत्थतरू तिप्पायारा तिमेहलसिरत्था । एक्केक्कस्स य तरुणो मूले चत्तारि-चत्तारि।।८३४।।
सिद्धाणं पडिमाओ विचित्तपीढाओ रयणमइयाओ । वंदणमेत्तणिवारियदुरंतसंसारभीदीओ।।८३५।।
सालत्तयपरिवेढियतिपीढउवरम्मि माणथंभा य । चत्तारो-चत्तारो सिद्धत्थतरुम्मि एक्केक्के।।८३६।।
कल्पतरू सिद्धत्था कीडणसालाओ तासु पासादा । णियणियजिणउदयेहिं बारसगुणिदेहिं समउदया।।८३७।।

६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००। १०८०।
९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०।
१८०। १२०। २७। २१।

छट्ठुमतरुखेत्ताओ सम्मत्ता ।

कप्पतरुभूमिपणधिसु वीहिं पडि दिव्वरयणणिम्मविदा।
चउ-चउ णट्टयसाला णियचेत्ततरूहिं सरिसउच्छेहो।।८३८।।

६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००।
१०८०। ९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०।
१८०। १२०। २७। २१।

पणभूमिभूसिदाओ सव्वाओ दुतीसरंगभूमीओ । जोदिसियकण्णयाहिं पणच्चमाणाहिं रम्माओ।।८३९।।

णट्टयसाला सम्मत्ता।

ये सब हर्म्यादिक बहुत भूमियों (खण्डों) से भूषित और उत्तम विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित होते हुए पंक्ति क्रम से इन कल्पभूमियों में शोभायमान होते हैं।। ८३२।।

कल्प भूमियों के भीतर पूर्वादिक दिशाओं में नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात, ये चार चार महान् सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं।। ८३३।।

ये सब सिद्धार्थ वृक्ष तीन कोटों से युक्त और तीन मेखलाओं के ऊपर स्थित होते हैं। इनमें से प्रत्येक वृक्ष के मूल भाग में विचित्र पीठों से संयुक्त और वंदना करने मात्र से ही दुरन्त संसार के भय को नष्ट करने वाली ऐसी रत्नमय चार-चार सिद्धों की प्रतिमाएँ होती हैं।। ८३४-८३५।।

एक-एक सिद्धार्थ वृक्ष के आश्रित, तीन कोटों से वेष्टित पीठत्रय के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं।।८३६।।

कल्पभूमियों में स्थित सिद्धार्थ कल्पवृक्ष, क्रीड़नशालाएँ और प्रासाद बारह से गुणित अपने-अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई के समान ऊँचाई वाले होते हैं।। ८३७।।

छठे तरु क्षेत्रों का वर्णन समाप्त हुआ।

कल्पतरु भूमि के पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी के आश्रित दिव्य रत्नों से निर्मित और अपने चैत्यवृक्षों के सदृश ऊँचाई वाली चार-चार नाट्यशालाएँ होती हैं।। ८३८।।

सब नाट्यशालाएँ पाँच भूमियों से विभूषित, बत्तीस रंग भूमियों से सहित और नृत्य करती हुई ज्योतिषी कन्याओं से रमणीय होती हैं।। ८३९।।

नाट्यशालाओं का वर्णन समाप्त हुआ।

तत्तो चउत्थवेदी हुवेदि णियपढमवेदियासरिसा । णवरि विसेसो भावणदेवा दाराणि रक्खंति।।८४०।।

चतुर्थवेदी सम्मत्ता ।

तत्तो भवणखिदीओ भवणाइं तासु रयणरइदाओ। धुव्वंतधयवडाइं वरतोरणतुंगदाराइं।।८४१।।
सुरमिहुणगेयणच्चणतूररवेहिं जिणाभिसेएहिं। सोहंते ते भवणा एक्केक्के भवणभूमीसु।।८४२।।
उववणपहुदिं सव्वं पुव्वं विय भवणपंतिविक्खंभा। णियपढमवेदिवासे गुणिदे एक्कारसेहिं सारिच्छा।।८४३।।

२६५। २५३। २४२। २३१। २२०। २०९। १९८। १८७। १७६। १६५। १५४। १४३।
५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६।
१३२। १२१। ११०। ९९। ८८। ७७। ६६। ५५। ४४। ३३। ५५। ४४।
५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ५७६। ११५२। ११५२।

। सत्तमभवणावणी सम्मत्ता ।

भवणखिदिप्पणिधीसुं वीहिं पडि होंति णवणवा थूहा। जिणसिद्धप्पडिमाहिं अप्पडिमाहिं समाइण्णा।।८४४।।
छत्तादिछत्तजुत्ता णच्चंतविचित्तधयवलालोला। अडमंगलपरियरिया ते सव्वे दिव्वरयणमया।।८४५।।
एक्केक्केसिं थूहे अंतरयं मयरतोरणाण सयं। उच्छेहो थूहाणं णियचेत्तदुमाण उदयसमं।।८४६।।

६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००। १०८०।
९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०। १८०। १२०।
२७। २१।

इससे आगे अपनी प्रथम वेदी के सदृश चौथी वेदी होती है। विशेषता केवल इतनी है कि यहाँ भवनवासी देव द्वारों की रक्षा करते हैं।। ८४०।।

चतुर्थ वेदी का वर्णन समाप्त हुआ ।

इससे आगे भवन भूमियाँ होती हैं, जिनमें रत्नों से रचित, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से सहित और उत्तम तोरणयुक्त उन्नत द्वारों वाले भवन होते हैं।। ८४१।।

भवन भूमियों पर स्थित वे एक-एक भवन सुरयुगलों के गीत, नृत्य एवं बाजे के शब्दों से तथा जिनाभिषेकों से शोभायमान होते हैं।। ८४२।।

यहाँ उपवनादिक सब पहले के ही समान होते हैं। उपर्युक्त भवन पंक्तियों का विस्तार ग्यारह से गुणित अपनी प्रथम वेदी के विस्तार के समान होता है।। ८४३।।

सातवीं भवन भूमि का वर्णन समाप्त हुआ।

भवनभूमि के पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी के मध्य में जिन और सिद्धों की अनुपम प्रतिमाओं से व्याप्त नौ नौ स्तूप होते हैं।। ८४४।।

वे सब स्तूप छत्र के ऊपर छत्र से संयुक्त, फहराती हुई ध्वजाओं के समूह से चंचल, आठ मंगल द्रव्यों से सहित और दिव्य रत्नों से निर्मित होते हैं।। ८४५।।

एक एक स्तूप के बीच में मकर के आकार के सौ तोरण होते हैं। इन स्तूपों की ऊँचाई अपने चैत्यवृक्षों की ऊँचाई के समान होती है।। ८४६।।

दीहत्तरुंदमाणं ताणं संपइ पणट्ठउवएसं। भव्वा अभिसेयच्चणपदाहिणं तेसु कुव्वंति।।८४७।।

। थूहा सम्मत्ता ।

तत्तो चउत्थसाला हवेइ आयासपडिहसंकासा। मरगयमणिमयगोउरदारचउक्केण रमणिज्जा।।८४८।।
वररयणदंडमंडणभुवदंडा कप्पवासिणो देवा। जिणपादकमलभत्ता गोउरदाराणि रक्खंति।। ८४९।
सालाणं विक्खंभो कोसं चउवीस वसहणाहम्मि। अडसीदिदुसयभजिदा एक्कूणा जाव णेमिजिणं।।८५०।।

२४।	२३।	२२।	२१।	२०।	१९।	१८।	१७।	१६।	१५।	१४।	१३।	
२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	
१२।	११।	१०।	९।	८।	७।	६।	५।	४।	३।			
२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।	२८८।			

पणवीसाधियछस्सयदंडा छत्तीससंविभत्ता य। वासम्मि वड्ढमाणे णवहिदपणुवीसअधियसयं।।८५१।।

६२५ १२५
३६ ९

। तुरिमसाला समत्ता ।

अह सिरिमंडवभूमी अट्ठमया अणुवमा मणोहरया। वररयणथंभधरिया मुत्ताजालाइकयसोहा।। ८५२।।
णिम्मलपडिहविणिम्मियसोलसभित्तीण अंतरे कोट्ठा।
बारस ताणं उदओ णियजिणउदएहिं बारसहदेहिं।।८५३।।

६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००।
१०८०। ९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०।
१८०। १२०। २७। २१।

इन स्तूपों की लम्बाई और विस्तार के प्रमाण का उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है। भव्य जीव इन स्तूपों का अभिषेक, पूजन और प्रदक्षिणा करते हैं।।८४७।।

स्तूपों का कथन समाप्त हुआ।

इसके आगे आकाश स्फटिक के (ओला या मणि विशेष के) सदृश और मरकत मणिमय चार गोपुर द्वारों से रमणीय ऐसा चतुर्थ कोट होता है।।८४८।।

जिनके भुजदण्ड उत्तम रत्नमय दण्डों से मण्डित हैं और जो जिनभगवान के चरण-कमलों की भक्ति से सहित हैं ऐसे कल्पवासी देव यहाँ गोपुर द्वारों की रक्षा करते हैं।।८४९।।

वृषभनाथ भगवान् के समवसरण में कोट का विस्तार दो सौ अठासी से भाजित चौबीस कोस प्रमाण था। इसके आगे भगवान् नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः एक कम होता गया है।। ८५०।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में कोट का विस्तार बत्तीस से विभक्त छः सौ पच्चीस धनुष और वर्धमान स्वामी के नौ से भाजित एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण था।।८५१।।

चतुर्थ कोट का वर्णन समाप्त हुआ।

इसके पश्चात् अनुपम, मनोहर, उत्तम रत्नों के स्तम्भों पर स्थित और मुक्ताजालादि से शोभायमान आठवीं श्रीमण्डप भूमि होती है।।८५२।।

निर्मल स्फटिकमणि से निर्मित सोलह दीवालों के बीच में बारह कोठे होते हैं। इन कोठों की ऊँचाई अपने

बीसाहियकोससयं रुंदं कोट्ठाण उसहणाहम्मि। बारसवग्गेण हिदं पणहीणं जाव णेमिजिणं।।८५४।।

१२०। ११५। ११०। १०५। १००। ९५। ९०। ८५। ८०। ७५। ७०। ६५।
१४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४।
६०। ५५। ५०। ४५। ४ ०। ३५। ३०। २५। २०। १५।
१४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४। १४४।

पासजिणे पणवीसा अडसीदीअधियदुसयपविहत्ता।
वीरजिणिंदे दंडा पंचघणा दसहदा य णवभजिदा।।८५५।।

२५ । १२५०। २८८ । ९।

। सिरिमंडवा समत्ता ।

चेट्ठंति रिसिगणाइं कोट्ठाणब्भंतरेसु पुव्वादी। पुह पुह पदाहिणेणं गणाण साहेमि विण्णासा।। ८५६।।
अक्खीणमहाणसिया सप्पीखीरामियासवरसाओ। गणहरदेवप्पमुहा कोट्ठे पढमम्मि चेट्ठंति।। ८५७।।
विदियम्मि फलिहभित्तीअंतरिदे कप्पवासिदेवीओ। तदियम्मि अज्जियाओ सावइयाओ विणीदाओ।।८५८।।
तुरिमे जोदिसियाणं देवीओ परमभत्तिमंतीओ। पंचमए विणिदाओ विंतरदेवाण देवीओ।। ८५९।।
छट्ठम्मि जिणवरच्चणकुसलाओ भवणवासिदेवीओ। सत्तमए जिणभत्ता दसभेदा भावणा देवा।।८६०।।
अट्ठमए अट्ठविहा वेंतरदेवा य किण्णरप्पहुदी। णवमे ससिरविपहुदी जोइसिया जिणणिविट्ठमणा।।८६१।।

अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई से बारहगुणी होती है।। ८५३।।

ऋषभनाथ तीर्थंकर के समवसरण में कोठों का विस्तार बारह के वर्ग अर्थात् एक सौ चवालीस से भाजित एक सौ बीस कोस प्रमाण था। इसके आगे नेमिनाथ तीर्थंकर तक क्रमशः उत्तरोत्तर पाँच-पाँच कम होते गए हैं।।८५४।।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवसरण में इन कोठों का विस्तार दो सौ अठासी से भाजित पच्चीस कोस और महावीर स्वामी के पाँच के घन को दश से गुणा करके नौ का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने धनुष प्रमाण था।।८५५।।

श्रीमण्डपों का वर्णन समाप्त हुआ ।

इन कोठों के भीतर पूर्वादि प्रदक्षिण क्रम से पृथक् पृथक् ऋषि आदि बारह गण बैठते हैं। इन गणों के विन्यास का आगे कथन करता हूँ। ८५६।।

इन बारह कोठों में से प्रथम कोठे में अक्षीणमहानसिक ऋद्धि तथा सर्पिरास्रव, क्षीरास्रव व अमृतास्रवरूप रसऋद्धियों के धारक गणधर देव प्रमुख बैठा करते हैं।। ८५७।।

स्फटिकमणिमयी दीवालो से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ और तीसरे कोठे में अतिशय नम्र आर्यिकाएँ तथा श्राविकाएँ बैठा करती हैं।। ८५८।।

चतुर्थ कोठे में परम भक्ति से संयुक्त ज्योतिषी देवों की देवियाँ और पाँचवें कोठे में व्यन्तर देवों की विनीत देवियाँ बैठा करती हैं।। ८५९।।

छठे कोठे में जिनेन्द्र देव के अर्चन में कुशल भवनवासिनी देवियाँ और सातवें कोठे में जिनभक्त दश प्रकार के भवनवासी देव बैठते हैं।। ८६०।।

आठवें कोठे में किन्नरादिक आठ प्रकार के व्यन्तर देव और नवम कोठे में जिनदेव के मन को निविष्ट करने वाले चन्द्र सूर्यादिक ज्योतिषी देव बैठते हैं।। ८६१।।

सोहम्मादी अच्चुदकप्पंता देवराइणो दसमे। एक्करसे चक्कहरा मंडलिया पत्थिवा मणुवा।।८६२।।
बारसमम्मि य तिरिया करिकेसरिवग्घहरिणपहुदीओ। मोत्तूण पुव्ववेरं सत्तू वि सुमित्तभावजुदा।। ८६३।।

। गणविण्णासा समत्ता ।

अह पंचमवेदीओ णिम्मलफलिहोवलेहि रइदाओ। णियणियचउत्थसालासरिच्छउच्छेहपहुदीओ।। ८६४।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८।
१२। ११। १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। ४।
२८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। २८८। ५७६। ५७६।

। पंचमवेदी समत्ता ।

तत्तो पढमे पीढा वेरुलियमणीहि णिम्मिदा ताणं। णियमणथंभादिमहीउच्छेहा हवंति उच्छेहा।। ८६५।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९। ८।
३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३। ३।
७। ६। ५। ४। ३। ५। ४।
३। ३। ३। ३। ३। ६। ६।

पत्तेक्कं कोट्ठाणं पणधीसुं तह य सयलवीहीणं। होंति हु सोलस सोलस सोवाणा पढमपीढेसुं।। ८६६।।
रुंदेण पढमपीढा कोसा चउवीस बारसेहिं हिदा। उसइजिणिंदे कमसो एक्कोणा जाव णेमिजिणं।।८६७।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११।
१२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२।
१०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ३।
१२। १२। १२। १२। १२। १२। १२। १२।

दशवें कोठे में सौधर्म स्वर्ग से आदि लेकर अच्युत स्वर्ग तक के देव और उनके इन्द्र तथा ग्यारहवें कोठे में चक्रवर्ती, माण्डलिक राजा एवं अन्य मनुष्य बैठते हैं।। ८६२।।

बारहवें कोठे में हाथी, सिंह, व्याघ्र और हरिणादिक तिर्यंच जीव बैठते हैं। इनमें पूर्व बैर को छोड़कर शत्रु भी उत्तम मित्रभाव से युक्त होते हैं।। ८६३।।

गणों की रचना समाप्त हुई।

इसके अनन्तर निर्मल स्फटिक पाषाणों से विरचित ओर अपने अपने चतुर्थ कोट के सदृश विस्तारादि से सहित पाँचवीं वेदियाँ होती हैं।। ८६४।।

पाँचवीं वेदी का वर्णन समाप्त हुआ।

इसके आगे वैडूर्यमणियों से निर्मित प्रथम पीठ है। इन पीठों की ऊँचाई अपनी अपनी मानस्तम्भादि पृथ्वी की ऊँचाई सदृश है।। ८६५।।

प्रथम पीठों के ऊपर उपर्युक्त बारह कोठों में से प्रत्येक कोठों के प्रवेश द्वारों में और समस्त (चार) वीथियों के सन्मुख सोलह सोलह सोपान होते हैं।। ८६६।।

ऋषभदेव के समवसरण में प्रथम पीठ का विस्तार बारह से भाजित चौबीस कोस था। फिर इसके आगे

पणपरिमाणा कोसा चउवीसहिदा य पासणाहम्मि। एक्कोच्चिय छक्कीहिदे देवे सिरिवड्ढमाणम्मि।।८६८।।

५ । १।
२४। ६।

पीढाणं परिहीओ णियणियवित्थारतिउणियपमाणा। वररयणणिम्मियाओ अणुवमरमणिज्जसोहाओ।।८६९।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९।
४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४। ४।
८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। ४।
४। ४। ४। ४। ४। ४। ८। ८।

वलयोवमपीढेसुं विविहच्चणदव्वमंगलजुदेसुं। सिरधरिदधम्मचक्का चेट्ठंते चउदिसासु जक्खिंदा।।८७०।।

चावाणि छस्सहस्सा अट्ठहिदा पीढमेहलारुंदं। उसहजिणे पण्णाधियदोसयऊणाणि जाव णेमिजिणं।।८७१।।

६०००। ५७५०। ५५००। ५२५०। ५०००। ४७५०। ४०००। ३७५०।
८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८।
३५००। ३२५०। ३०००। २७५०। २५००। २२५०। २०००। १७५०। १५००। १२५०।
८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८।
१०००। ७५०।
८। ८।

पणवीसाहियछस्सय अट्ठविहत्तं च पासणाहम्मि। एक्कसयं पणवीसब्भहियं वीरम्मि दोहि हिदं।। ८७२।।

६२५ । १२५ ।
८ । २ ।

आरुहिदूणं तेसुं गणहरदेवादिबारसगणा ते। कादूणं विप्पदाहिणमच्चंति संमुहं णाहं।। ८७३।।

नेमि जिनेन्द्र तक क्रमशः एक एक अंश कम होता गया है।। ८६७।।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवसरण में प्रथम वेदी का विस्तार चौबीस से भाजित पाँच कोस और श्रीवर्धमान भगवान् के छः से भाजित एक कोस प्रमाण था।। ८६८।।

पीठों की परिधियों का प्रमाण अपने अपने विस्तार से तिगुणा होता है। ये पीठिकाएँ उत्तम रत्नों से निर्मित और अनुपम रमणीय शोभा से संपन्न होती हैं।। ८६९।।

चूड़ी के सदृश अर्थात् गोल और नाना प्रकार की पूजा द्रव्य एवं मंगल द्रव्यों से सहित इन पीठों पर चारों दिशाओं में सिर पर धर्म चक्र को रखे हुए यक्षेन्द्र स्थित रहते हैं।। ८७०।।

ऋषभ जिनेन्द्र के समवसरण में पीठ की मेखला का विस्तार आठ से भाजित छः हजार धनुष प्रमाण था। पुनः इसके आगे नेमिनाथ तीर्थंकर तक क्रमशः उत्तरोत्तर दो सौ पचास अंश कम होते गए हैं।।८७१।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में पीठ की मेखला का विस्तार आठ से भाजित छः सौ पच्चीस धनुष, और वीर भगवान् के दो से भाजित एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण था।। ८७२।।

वे गणधरदेवादिक बारह गण उन पीठों पर चढ़कर और प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्रदेव के सम्मुख होते हुए पूजा करते हैं।। ८७३।

थोदूण धुदिसएहिं असंखगुणसेढिकम्मणिज्जरणं। कादूण पसण्णमणा णियणियकोट्ठेसु पविसंति।। ८७४।।

। पढमपीढा सम्मत्ता ।

पढमोवरिम्मि विदिया पीढा चेट्ठंति ताण उच्छेहो। चउदंडा आदिजिणे छब्भागोणा य जाव णेमिजिणं।।८७५।।

२४ । २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०। ९।
६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६।
८। ७। ६। ५। ४। ३।
६। ६। ६। ६। ६। ६।

पासजिणे पणदंडा बारसभजिदा य वीरणाहम्मि।
एक्को च्चिय तियभजिदा णाणावररयणणिलयइला।।८७६।।

५। १।
१२ । ३।

चावाणि छस्सहस्सा अट्ठहिदा ताण मेहलारुंदा। उसहजिणे पण्णाहियदोसयऊणा य णेमिपेरंतं।। ८७७।।

६००० । ५७५०। ५५००। ५२५०। ५०००। ४७५०। ४५००। ४२५०। ४०००। ३७५०। ३५००।
८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८।
३२५०। ३०००।२७५०। २५००। २२५०। २०००। १७५०। १५००। १२५०। १०००। ७५०।
८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८। ८।

पणवीसाधियछस्सय अट्ठविभत्तं च पाससामिस्स।
एक्कसयं पणवीसब्भहियं वीरम्मि दोहि हिदं।।८७८।।

६२५। १२५।
८। २।

पश्चात् सैकड़ों स्तुतियों द्वारा कीर्तन करके व असंख्यात गुणश्रेणी रूप कर्मों की निर्जरा करके प्रसन्नचित्त होते हुए अपने अपने कोठों में प्रवेश करते हैं।। ८७४।।

प्रथम पीठों का वर्णन समाप्त हुआ।

प्रथम पीठों के ऊपर दूसरे पीठ होते हैं। भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में प्रथम पीठ की ऊँचाई चार धनुष थी। फिर इसके आगे उत्तरोत्तर क्रमशः नेमि जिनेन्द्र तक एक छठवां भाग कम होता गया है।। ८७५।।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवसरण में प्रथम पीठ का विस्तार बारह से भाजित पाँच धनुष और वीरनाथ के तीन से भाजित एक धनुषमात्र था। ये द्वितीय पीठिकाएँ नाना प्रकार के उत्तम रत्नों से खचित भूमियुक्त होती हैं।। ८७६।।

ऋषभनाथ तीर्थंकर के समवसरण में उन द्वितीय पीठों की मेखलाओं का विस्तार आठ से भाजित छः हजार धनुष था। फिर इसके आगे नेमिनाथपर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर दो सौ पचास भाग कम होता गया है।। ८७७।।

पार्श्वनाथ स्वामी के समवसरण में द्वितीय पीठ की मेखला का विस्तार आठ से भाजित छः सौ पच्चीस धनुष और वीरनाथ भगवान् के दो से भाजित एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण था।। ८७८।।

ताणं कणयमयाणं पीढाणं पंचवण्णरयणमया।
समपट्टा सोवाणा चेट्ठंते चउदिसासु अट्ठट्ठं।।८७९।
केसरिवसहसरोरुहचक्कं वरदामगरुडहत्थिधया।
मणिथंभलंबमाणा राजंते बिदियपीढेसुं।।८८०।

धूवघडा णवणिहिणो अच्चणदव्वाइं मंगलाणिं पि। चेट्ठंति बिदियपीढे को सक्कइ ताण वण्णेदुं।।८८१।।
वीसाहियसयकोसा उसहजिणे विदियपीढवित्थारा। पंचूणा छण्णउदीभजिदा कमसो य णेमिपरियंतं।।८८२।।

१२०। ११५। ११०। १०५। १००। ९५। ९०। ८५। ८०। ७५। ७०। ६५। ६०।
९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९६।
५५। ५०। ४५। ४०। ३५। ३०। २५। २०। १५।
९६। ९६। ९६। ९६। ९६। ९३। २६। ९६। ९६।

पासजिणे पणुवीसं अट्ठोणं दोसएहिं अवहरिदा। पंच च्चिय वीरजिणे पविहत्ता अट्ठतालेहिं।। ८८३।।

२५ । ५ ।
१९२। ४८।

। बिदियपीढा समत्ता।

ताणोवरि तदियाइं पीढाइं विविहरयणरइदाइं। णियणियदुइज्जपीढुच्छेधसमा ताण उच्छेधा।। ८८४।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२। ११। १०।
६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। ६।
९। ८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। १।
६। ६। ६। ६। ६। ६। ६। १२। ३।

उन सुवर्णमय पीठों के ऊपर चढ़ने के लिए चारों दिशाओं में पाँच वर्ण के रत्नों से निर्मित समपृष्ठ सोपान होते हैं।। ८७९।।

द्वितीय पीठों के ऊपर मणिमय स्तम्भों पर लटकती हुई सिंह, बैल, कमल, चक्र, उत्तम माला, गरुड़ और हाथी इनके चिह्नों से युक्त ध्वजाएँ शोभायमान होती हैं।। ८८०।।

द्वितीय पीठ पर जो धूपघट, नव निधियाँ, पूजन द्रव्य और मंगलद्रव्य स्थित रहते हैं, उनका वर्णन करने के लिए कौन समर्थ है? ।। ८८१।।

ऋषभनाथ तीर्थंकर के समवसरण में द्वितीय पीठ का विस्तार छ्यानवे से भाजित एक सौ बीस कोस प्रमाण था। पश्चात् इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रम से पाँच पाँच भाग कम होते गए हैं।। ८८२।।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवसरण में द्वितीय पीठ का विस्तार आठ कम दो सौ से भाजित पच्चीस कोस और वीर जिनेन्द्र के अड़तालीस से भाजित पाँच कोस मात्र था।। ८८३।

द्वितीय पीठों का वर्णन समाप्त हुआ।

द्वितीय पीठों के ऊपर विविध प्रकार के रत्नों से रचित तीसरी पीठिकाएँ होती हैं। इन तीसरी पीठिकाओं की ऊँचाई अपनी अपनी दूसरी पीठिकाओं की ऊँचाई के समान होती है।। ८८४।।

णियआदिमपीढाणं वित्थारचउत्थभागसारिच्छा। एदाणं वित्थारा तिउणकदे तत्थ समधिए परिधी।।८८५।।

२४। २३। २२। २१। २०। १९। १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२।
४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८।
११। १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ३। ५। ४।
४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ४८। ९६। ९६।

ताणं दिणयरमंडलसमवट्टाणं हवंति अट्ठट्ठं। सोवाणा रयणमया चउसु दिसासुं सुहप्पासा।। ८८६।।

। तदियपीढा सम्मत्ता ।

'एक्केक्का गंधउडी होदि तदो तदियपीढउवरिम्मि। चामरकिंकिणिवंदणमालाहारादिरमणिज्जा।। ८८७।।
गोसीसमलयचंदणकालागरुपहुदिधूवगंधड्ढा। पजलंतरयणदीवा पच्चंतविचित्तधयपंती।। ८८८।।
तीए रुंदायामा छस्सयदंडाणि उसहणाहम्मि। पणकदिपरिहीणाणिं कमसो सिरिणेमिपरियंतं।। ८८९।

६००। ५७५। ५५०। ५२५। ५००। ४७५। ४५०। ४२५। ४००। ३७५। ३५०। ३२५।
३००। २७५। २५०। २२५। २००। १७५। १५०। १२५। १००। ७५।

पणवीसब्भहियसयं दोहि विहत्तं च पासणाहम्मि। विगुणियपणवीसाइं तित्थयरे वड्ढमाणम्मि।। ८९०।।

१२५ । ५०
२।

उदए गंधउडीए दंडाणं णवसयाणि उसहजिणे। कमसो णेमिजिणंतं चउवीसविभत्तपभवहीणाणि।।८९१।।

९०० । १७२५। १६५०। १५७५। १५००। १४२५। १३५०। १२७५। १२००। ११२५।
२ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ ।
१०५०। ९७५। ९००। ८२५। ७५०। ६७५। ६००। ५२५। ४५०। ३७५। ३००। २२५।
२ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ ।

इनका विस्तार अपनी प्रथम पीठिकाओं के विस्तार के चतुर्थ भाग प्रमाण होता है, और तिगुणे विस्तार से कुछ अधिक इनकी परिधि होती है।। ८८५।।

सूर्यमण्डल के समान गोल उन पीठों के चारों ओर रत्नमय और सुखकर स्पर्शवाली आठ आठ सीढ़ियाँ होती हैं।। ८८६।।

तृतीय पीठिकाओं का वर्णन समाप्त हुआ।

इसके आगे इन तीसरी पीठिकाओं के ऊपर एक एक गंधकुटी होती है। यह गंधकुटी चामर, किंकिणी, वन्दनमाला और हारादिक से रमणीय, गोशीर, मलयचन्दन और कालागरु इत्यादिक धूपों के गंध से व्याप्त, प्रज्वलित रत्नों के दीपकों से सहित, तथा नाचती हुई विचित्र ध्वजाओं की पंक्तियों से संयुक्त होती है।।८८७-८८८।।

उस गन्धकुटी की चौड़ाई और लम्बाई भगवान् ऋषभनाथ के समवसरण में छः सौ धनुष प्रमाण थी। फिर इसके पश्चात् श्रीनेमिनाथपर्यन्त क्रम से उत्तरोत्तर पांच का वर्ग अर्थात् पच्चीस पच्चीस धनुष कम होती गयी है।।८८९।।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवसरण में गन्धकुटी का विस्तार दो से विभक्त एक सौ पच्चीस धनुष और वर्धमान तीर्थंकर के दुगुणित पच्चीस अर्थात् पचास धनुष प्रमाण था।। ८९०।।

ऋषभ जिनेन्द्र के समवसरण में गन्धकुटी की ऊँचाई नौ सौ धनुष प्रमाण थी। फिर इसके आगे क्रम से

पणुहत्तरिजुदतिसया पासजिणिंदम्मि चउविहत्ता य। पणुवीसोणं च सयं जिणपवरे वीरणाहम्मि।।८९२।।

३७५ । ७५।

४।

सिंहासणाणि मज्झे गंधउडीणं सपादपीढाणि। परफलिहणिम्मिदाणिं घंटाजालादिरम्माणि।। ८९३।।
रयणखचिदाणि ताणिं जिणिंदउच्छेहजोग्गउदयाणिं। इत्थं तित्थयराणं कहिदाइं समवसरणाइं।। ८९४।।

। समवसरणा समत्ता ।

चउरंगुलंतराले उवरिं सिंहासणाणि अरहंता। चेट्ठंति गयणमग्गे लोयालोयप्पयासमत्तंडा।। ८९५।।
णिस्सेदत्तं णिम्मलगत्तत्तं दुद्धधवलरुहिरत्तं। आदिमसंहडणत्तं समचउरस्संगसंठाणं।।८९६।।
अणुवमरूवत्तं णवचंपयवरसुरहिगंधधारित्तं। अट्ठुत्तरवरलक्खणसहस्सधरणं अणंतबलविरियं।। ८९७।।
मिदहिदमधुरालाओ साभावियअदिसयं च दसभेदं। एदं तित्थयराणं जम्मग्गहणादिउप्पण्णं।। ८९८।।
जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासु णियराणा। णहगमणाणमहिंसा भोयणउवसग्गपरिहीणा।।८९९।।
सव्वाहिमुहट्ठियत्तं अच्छायत्तं अपम्हफंदित्तं। विज्जाणं ईसत्तं समणहरोमत्तणं सजीवम्हि।। ९००।।

अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा सयाइं सत्त तहा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभाषाओ।।९०१।।

एदासुं भासासुं तालुवदंतोट्ठकंठवावारे। परिहरिय एक्ककालं भव्वजणे दिव्वभासित्तं।। ९०२।।

पगदीए अक्खलिओ संझत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि।
णिस्सरदि णिरुवमाणो दिव्वझुणी जाव जोयणयं।।९०३।।

नेमिनाथ तीर्थंकर पर्यंत चौबीस से विभक्त मुखप्रमाण (९०० ÷ २४ = ७५/२) से हीन होती गयी है।। ८९१।।

पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के समवसरण में गंधकुटी की ऊँचाई चार से विभक्त तीन सौ पचहत्तर धनुष और वीरनाथ जिनेन्द्र के पच्चीस कम सौ धनुष प्रमाण थी।। ८९२।।

गन्धकुटियों के मध्य में पाद पीठ सहित, उत्तम स्फटिक मणियों से निर्मित और घंटाओं के समूहादिक से रमणीय सिंहासन होते हैं।। ८९३।।

रत्नों से खचित उन सिंहासनों की ऊँचाई तीर्थंकरों की ऊँचाई के ही योग्य हुआ करती है। इस प्रकार यहाँ तीर्थंकरों के समवसरणों का कथन किया गया है। ८९४।।

समवसरणों का वर्णन समाप्त हुआ।

लोक और अलोक को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान भगवान् अरहन्त देव उन सिंहासनों के ऊपर आकाश मार्ग में चार अंगुल के अन्तराल से स्थित रहते हैं।। ८९५।।

स्वेदरहितता, निर्मलशरीरता, दूध के समान धवल रुधिर, आदि का वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्त्ररूप शरीर संस्थान, अनुपमरूप, नवचम्पक की उत्तम गन्ध के समान गन्ध का धारण करना, एक हजार आठ उत्तम लक्षणों का धारण करना, अनन्त बल-वीर्य और हित मित एवं मधुर भाषण, ये स्वाभाविक अतिशय के दश भेद हैं। यह दशभेद रूप अतिशय तीर्थंकरों के जन्म ग्रहण से ही उत्पन्न हो जाते हैं।। ८९६-८९८।।

अपने पास से चारों दिशाओं में एक सौ योजन तक सुभिक्षता, आकाशगमन, हिंसा का अभाव, भोजन का अभाव, उपसर्ग का अभाव, सबकी ओर मुखकरके स्थित होना, छाया रहितता, निर्निमेष दृष्टि, विद्याओं की

सेसेसुं समएसुं गणहरदेविंदचक्कवट्टीणं। पण्हाणुरूवमत्थं दिव्वझुणी अ सत्तभंगीहिं।। ९०४।।
छद्दव्वणवपयत्थे पंचट्ठीकायसत्ततच्चाणि। णाणाविहहेदूहिं दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं।। ९०५।।
घादिक्खएण जादा एक्कारस अदिसया महच्छरिया। एदे तित्थयराणं केवलणाणम्मि उप्पण्णे।। ९०६।।
माहप्पेण जिणाणं संखेज्जेसुं च जोयणेसु वणं। पल्लवकुसुमफलद्धीभरिदं जायदि अकालम्मि।। ९०७।।
कंटयसक्करपहुदिं अवणेंतो वादि सुक्खदो वाऊ। मोत्तूण पुव्ववेरं जीवा वंट्टति मेत्तीसु।। ९०८।।
दप्पणतलसारिच्छा रयणमई होदि तेत्तिया भूमि। गंधोदकाइ वीरसइ मेघकुमारो य सक्कआणाए।।९०९।।
फलभारणमिदसालीजवादिसस्सं सुरा दिकुव्वंति। सव्वाणं जीवाणं उप्पज्जदि णिच्चमाणंदं।। ९१०।।
वायदि विक्किरियाए वाउकुमारो य सीयलो पवणो। कूवतडायादीणिं णिम्मलसलिलेण पुण्णाणि।।९११।।
धूमुक्कपडणपहुदीहिं विरहिदं होदि णिम्मलं गयणं। रोगादीणं बाधा ण होंति सयलाण जीवाणं।।९१२।।
जक्खिंदमत्थएसुं किरणुज्जलदिव्वधम्मचक्काणि। दट्ठूण संठियाइं चत्तारि जणस्स अच्छरिया।। ९१३।।
छप्पण चउदिसासुं कंचणकमलाणि तित्थकत्ताणं।
एक्कं च पायपीढं अच्चणदव्वाणि दिव्वविविधाणि।।९१४।।
। चौत्तीस अइसया समत्ता।

ईशता, सजीव होते हुए भी नख और रोमों का समान रहना, अठारह महाभाषा, सात सौ क्षुद्रभाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अक्षरानक्षरात्मक भाषाएँ हैं उनमें तालु, दाँत, ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय भव्य जनों को दिव्य उपदेश देना। भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्यध्वनि तीनों संध्या कालों में नव मुहूर्तों तक निकलती है और एक योजन पर्यन्त जाती है। इसके अतिरिक्त गणधर देव, इन्द्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह दिव्यध्वनि शेष समयों में भी निकलती है। यह दिव्यध्वनि भव्य जीवों को छः द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है। इस प्रकार घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए ये महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकरों को केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं।।८९९-९०६।।

तीर्थंकरों के महात्म्य से संख्यात योजनों तक वन असमय में ही पत्र, फूल और फलों की वृद्धि से संयुक्त हो जाता है; कंटक और रेती आदि को दूर करती हुई सुखदायक वायु चलने लगती है, जीव पूर्व बैर को छोड़कर मैत्री भाव से रहने लगते हैं, उतनी भूमि दर्पण तल के सदृश स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है, सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगन्धित जल की वर्षा करता है, देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि सस्य को रचते हैं, सब जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है, वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है, कूप और तालाब आदि निर्मल जल से पूर्ण हो जाते हैं, आकाश धुआँ और उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है, सम्पूर्ण जीवों को रोगादि की बाधाएँ नहीं होती हैं, यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्मचक्रों को देखकर जनों को आश्चर्य होता है, तीर्थंकरों के चारों दिशाओं में (विदिशाओं सहित) छप्पन सुवर्णकमल एक पादपीठ और दिव्य एवं विविध प्रकार के पूजनद्रव्य होते हैं।।९०७-९१४।।

चौंतीस अतिशयों का वर्णन समाप्त हुआ।

जेसिं तरूण मूले उप्पण्णं जाण केवलं णाणं। उसहप्पहुदिजिणाणं ते चिय असोयरुक्ख त्ति।। ९१५।।
णाग्गोहसत्तपण्णं सालं सरलं पियंगु तं चेव। सिरिसं णागतरू वि य अक्खा धूली पलास तेंदूवं।।९१६।।
पाडलजंबू पिप्पलदहिवण्णो णंदितिलयचूदा य। कंकल्लिचंपबउलं मेसयसिंगं धवं सालं।।९१७।।
सोहंति असोयतरू पल्लवकुसुमाणदाहि साहाहिं। लंबंतमालदामा घंटाजालादिरमणिज्जा।। ९१८।।
णियणियजिणउदएणं बारसगुणिदेहिं सरिसउच्छेहा। उसहजिणप्पहुदीणं असोयरुक्खा विरायंति।। ९१९।।
किं वण्णणेण बहुणा दट्ठूणमसोयपादवे एदे। णियउज्जाणवणेसुं ण रमदि चित्तं सुरेसस्स।। ९२०।।
ससिमंडलसंकासं मुत्ताजालप्पयाससंजुत्तं। छत्तत्तयं विरायदि सव्वाणं तित्थकत्ताणं।। ९२१।।
सिंहासणं विसालं विसुद्धफलिहोवलेहिं णिम्मविदं। वररयणणिकरखचिदं को सक्कइ वण्णिदुं ताणं।।९२२।।
णिब्भरभत्तिपसत्ता अंजलिहत्था पफुल्लमुहकमला। चेट्ठंति गणा सव्वे एक्केक्कं वेढिऊण जिणं।। ९२३।।
विसयकसायासत्ता हदमोहा पविस जिणपहूसरणं। कहिदुं वा भव्वाणं गहिरं सुरदुंदुही रसइ।। ९२४।।
रुणरुणरुणंतछप्पयछण्णा वरभत्तिभरिदसुरमुक्का। णिवडेंति कुसुमविट्ठी जिणिंदपयकमलमूलेसुं।। ९२५।।
भवसयदंसणहेदुं दरिसणमेत्तेण सयललोयस्स। भामंडलं जिणाणं रविकोडिसमुज्जलं जयइ।। ९२६।।

ऋषभादि तीर्थंकरों को जिन वृक्षों के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोक वृक्ष हैं।। ९१५।।

न्यग्रोध, सप्तपर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, फिर वही (प्रियंगु), शिरीष, नागवृक्ष, अक्ष (बहेड़ा), धूली (मालिवृक्ष), पलाश, तदू, पाटल, पीपल, दधिपर्ण, नन्दी, तिलक, आम्र, कंकेलि (अशोक), चम्पक, वकुल, मेषशृङ्ग, धव और शाल ये अशोक वृक्ष लटकती हुई मालाओं से युक्त और घंटासमूहादिक से रमणीय होते हुए पल्लव एवं पुष्पों से झुकी हुई शाखाओं से शोभायमान होते हैं।। ९१६-९१८।।

ऋषभादिक तीर्थंकरों के उपर्युक्त चौबीस अशोकवृक्ष बारह से गुणित अपने अपने जिन की ऊँचाई से युक्त होते हुए शोभायमान हैं।। ९१९।।

बहुत वर्णन से क्या? इन अशोकवृक्षों को देखकर इन्द्र का भी चित्त अपने उद्यान वनों में नहीं रमता है।।९२०।।

सब तीर्थंकरों के चन्द्रमण्डल के सदृश और मुक्ता समूहों के प्रकाश से संयुक्त तीन छत्र शोभायमान होते हैं।।९२१।।

उन तीर्थंकरों का निर्मल स्फटिक पाषाणों से निर्मित और उत्कृष्ट रत्नों के समूह से खचित जो विशाल सिंहासन होता है, उसका वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है।। ९२२।।

गाढ़ भक्ति से आसक्त, हाथों को जोड़े हुए और विकसित मुखकमल से संयुक्त ऐसे सम्पूर्ण गण प्रत्येक तीर्थंकर को घेरकर स्थित रहते हैं।। ९२३।।

विषय-कषायों में अनासक्त और मोह से रहित होकर जिनप्रभु के शरण में जाओ, ऐसा भव्य जीवों को कहने के लिए ही मानों देवों का दुंदुभी बाजा गम्भीर शब्द करता है।। ९२४।।

जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों के मूल में, रुण-रुण शब्द करते हुए भ्रमरों से व्याप्त और उत्तम भक्ति से युक्त देवों के द्वारा छोड़ी गई पुष्पवृष्टि गिरती है।। ९२५।।

जो दर्शन मात्र से ही सम्पूर्ण लोगों के अपने सौ (सात?) भवों के देखने में निमित्त है और करोड़ों सूर्यों के समान उज्ज्वल है ऐसा वह तीर्थंकरों का प्रभा मण्डल जयवन्त होता है।। ९२६।।

चउसट्ठिचामरेहिं मुणालकुंदेंदुसंखधवलेहिं। सुरकरपणच्चिदेहिं विज्जिज्जंता जयंतु जिणा।। ९२७।।

। अट्ठ महपाडिहेरा समत्ता ।

चउतीसातिसयमिदे अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ते। मोक्खयरे तित्थयरे तिहुवणणाहे णमंसामि।। ९२८।।
जिणवंदणापयट्टा पल्लासंखेज्जभागपरिमाणा। चेट्ठंति विविहजीवा एक्केक्के समवसरणेसुं।।९२९।।
कोट्ठाणं खेत्तादो जीवक्खेत्तंफलं असंखगुणं। होदूण अपुट्ठ त्ति हु जिणमाहप्पेण ते सव्वे।।९३०।।
संखेज्जजोयणाणिं बालप्पहुदी पवेसणिग्गमणे। अंतोमुहत्तकाले जिणमाहप्पेण गच्छंति।।९३१।।
मिच्छाइट्ठिअभव्वा तेसुमसण्णी ण होंति कइआइं। तह य अणज्झवसाया संदिद्धा विविहविवरीदा।।९३२।।
आतंकरोगमरणुप्पत्तीओ वेरकामबाधाओ। तण्हाछुहपीडाओ जिणमाहप्पेण ण हवंति।।९३३।।

-जक्खणाम-

गोवदणमहाजक्खा तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ। मादंगविजयअजिओ बम्हो बम्हेसरो य कोमारो।।८३४।।
छम्मुहओ पादालो किण्णरकिंपुरुसगरुडगंधव्वा। तह य कुबेरो वरुणो भिउडीगोमेधपासमातंगा।। ८३५।।
गुज्झकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसहपहुदीणं। तित्थयराणं पासे चेट्ठंते मत्तिसंजुत्ता।। ९३६।।

मृणाल, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सफेद तथा देवों के हाथों से नचाये गए (ढोरे गए) चौंसठ चामरों से वीज्यमान जिन भगवान् जयवन्त होवें।। ९२७।।

आठ महाप्रातिहार्यों का कथन समाप्त हुआ।

जो चौंतीस अतिशयों को प्राप्त हैं, आठ महाप्रतिहार्यों से संयुक्त हैं, मोक्ष को करने वाले अर्थात् मोक्ष मार्ग के नेता हैं, और तीनों लोकों के स्वामी हैं, ऐसे तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ९२८।।

एक एक समवसरण में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण विविध प्रकार के जीव जिनदेव की वन्दना में प्रवृत्त होते हुए स्थित रहते हैं।। ९२९।।

कोठों के क्षेत्र से यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणा है, तथापि वे सब जीव जिनदेव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं।। ९३०।।

जिनभगवान् के माहात्म्य से बालकप्रभृति जीव प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं।। ९३१।।

इन कोठों में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसाय से युक्त, सन्देह से संयुक्त और विविध प्रकार की विपरीतताओं से सहित जीव भी नहीं होते हैं।। ९३२।।

इसके अतिरिक्त वहाँ पर जिन भगवान् के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, बैर कामबाधा तथा तृष्णा (पिपासा) और क्षुधा की पीड़ाएँ नहीं होती हैं।। ९३३।।

यक्षों के नाम-

गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरव, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व, मातंग और गुह्यक इस प्रकार ये भक्ति से संयुक्त चौबीस यक्ष ऋषभादिक तीर्थंकरों के पास में स्थित रहते हैं।।९३४-९३६।।

जक्खीओ चक्केसरिरोहिणिपण्णत्तिवज्जसिंखलया। वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य।।९३७।।
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली। गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी।। ९३८।।
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य।
बहुरूपिणिकुंभंडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति।।९३९।।

वसन्ततिलकम्-

पीऊसणिज्झरणिहं जिणचंदवाणिं सोऊण बारस गणा णिअकारएसु।
णिच्चं अणंतगुणसेढिविसोहिअंगा छेदंति कम्मपडलं खु असंखसेणिं।। ९४०।।

इन्द्रवज्रा–

भत्तीए आसत्तमणा जिणिंदपायारविंदेसु णिवेसियत्था।
णादीदकालं ण पयट्टमाणं णो भाविकालं पविभावयंति।।९४१।।
एवंपभावा भरहस्स खेत्ते धम्मप्पमुत्तिं परमं दिसंता।
सव्वे जिणिंदा वरभव्वसंघस्सप्पोत्थिदंमोक्खसुहाइ देंतु।। ९४२।।

चौबीस तीर्थंकरों के गणधर की संख्या*

चुलसीदि णउदि पण-तिग-सोलस-एक्कारसुत्तरसयाइं।
पणणउदी तेणउदी गणहरदेवा हु अट्ठपरियंतं।।९६१।।

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, सोलसा अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कूष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरों के समीप में रहा करती हैं।। ९३७-९३९।।

जैसे चन्द्रमा से अमृत झरता है उसी प्रकार खिरती हुई जिनभगवान् की वाणी से अपने कर्त्तव्य के बारे में सुनकर वे भिन्न-भिन्न जीवों के बारह गण नित्य अनन्तगुणश्रेणीरूप विशुद्धि से संयुक्त शरीर को धारण करते हुए असंख्यातश्रेणीरूप कर्मपटल को नष्ट करते हैं।। ९४०।।

जिनका मन भक्ति में आसक्त है और जिन्होंने जिनेन्द्रदेव के पादारविन्दों में आस्था (विश्वास) को रक्खा है ऐसे भव्य जीव अतीत, वर्तमान और भावी काल को भी नहीं जानते हैं।। ९४१।।

उपर्युक्त प्रभाव से संयुक्त वे सब तीर्थंकर भरत क्षेत्र में उत्कृष्ट धर्म प्रवृत्ति का उपदेश देते हुए उत्तम भव्य समूह को आत्मा से उत्पन्न हुए मोक्ष सुखों को प्रदान करें।। ९४२।।

चौबीस तीर्थंकरों के गणधर की संख्या

आठवें तीर्थंकर पर्यन्त क्रम से चौरासी, नब्बे, एक सौ पांच, एक सौ तीन, एक सौ सोलह, एक सौ ग्यारह, पंचानवे और तेरानवे गणधर देव थे।।९६१।।

ऋषभ ८४, अजित ९०, संभव १०५, अभिनन्दन १०३, सुमति ११६, पद्म १११, सुपार्श्व ९५, चन्द्र ९३।

---

* तिलोयपण्णत्ति पृ. २७० से २७१ तक।

उ ८४, अ ९०, सं १०५, णं १०३, सु ११६, प १११, सु ९५, चं ९३।
अडसीदी सगसीदी सत्तत्तरि छक्कसमधिया छट्ठी। पणवण्णा पण्णासा तत्तो य अणंतपरियंतं।।९६२।।
पु ८८, स ८७, से ७७, वासु ६६, वि ५५, अणं ५०।
तेदालं छत्तीसा पणतीसा तीस अट्ठवीसा य। अट्ठारस-सत्तरसेक्कारस-दस-एक्करस य वीरंतं।।९६३।।
ध ४३, संति ३६, कुंथु ३५, अर ३०, म २८, मु १८, ण १७, णे ११, पा १०, वीर ११।।

चौबीस तीर्थंकरों के प्रथम गणधर

पढमो हु उसहसेणो केसरिसेणो य चारुदत्तो य। वज्जचमरो य वज्जो चमरो बलदत्तवेदब्भा।।९६४।।
णागो कुंथू धम्मो मंदिरणामा जओ अरिट्ठो य। सेणो चक्कायुधयो सयंभु कुंभो विसाखो य ।।९६५।।
मल्लीणामो सुप्पहवरदत्ता सयंभुइंदभूदीओ। उसहादीणं आदिमगणधरणामाणि एदाणि।।९६६।।
एदे गणधरदेवा सव्वे वि हु अट्ठरिद्धिसंपण्णा। ताणं रिद्धिसरूवं लवमेत्तं तं णिरूवेमो।।९६७।।
बुद्धी-विकिरिय-किरिया तव-बल-वोसहि-रसक्खिदी रिद्धी।
एदासु बुद्धिरिद्धि अट्ठारसभेदविक्खादा।।९६८।।

भगवान् पुष्पदन्त से लेकर अनन्तनाथ तीर्थंकर तक क्रम से अठासी, सतासी, सतत्तर, छ्यासठ, पचपन और पचास गणधर थे।।९६२।। पुष्पदन्त ८८, शीतल ८७, श्रेयांस ७७, वासुपूज्य ६६, विमल ५५, अनन्त ५०।

धर्मनाथ तीर्थंकर से लेकर महावीर पर्यन्त क्रमशः तेतालीस, छत्तीस, पैंतीस, तीस, अट्ठाईस, अठारह, सत्तरह, ग्यारह, दश और ग्यारह गणधर थे।।९६३।।

धर्म ४३, शान्ति ३६, कुंथु ३५, अर ३०, मल्लि २८, मुनिसुव्रत १८, नमि १७,
नेमि ११, पार्श्व १०, वीर ११।

चौबीस तीर्थंकरों के प्रथम गणधर

ऋषभसेन, केशरिसेन (सिंहसेन), चारुदत्त, वज्रचमर, वज्र, चमर, बलदत्त, (बलि, दत्तक) वैदर्भ, नाग (अनगार), कुंथु, धर्म, मन्दिर, जय, अरिष्ट, सेन (अरिष्टसेन), चक्रायुध, स्वयंभू, कुम्भ (कुंथु), विशाख, मल्लि, सुप्रभ (सोमक), वरदत्त, स्वयंभू और इन्द्रभूति ये क्रमशः ऋषभादि तीर्थंकरों के प्रथम गणधरों के नाम हैं।।९६४-९६६।।

ये सब ही गणधर देव आठ ऋद्धियों से सहित होते हैं। यहाँ उन गणधरों की ऋद्धियों के लवमात्र स्वरूप का हम निरूपण करते हैं।।९६७।।

बुद्धि, विक्रिया, क्रिया, तप, बल, औषधि, रस और क्षिति (क्षेत्र) इन भेदों से ऋद्धि आठ प्रकार की हैं।

चौबीस तीर्थंकर के समवसरण में मुनियों की संख्या*

एत्तो उवरि रिसिसंखं भणिस्सामि—

चउसीदिसहस्साणिं रिसिप्पमाणं हुवेदि उसहजिणे।
इगि-दु-तिलक्खा कमसो अजियजिणे संभवम्मि णंदणए।।१०९२।।

उस ८४०००। अजि १०००००। संभव २०००००। अभि ३०००००।

वीससहस्सजुदाइं लक्खाइं तिण्णि सुमइदेवम्मि। तीससहस्सजुदाणिं पउमपहे तिण्णि लक्खाणिं।।१०९३।।

सुमइ ३२०००००। पउम ३३०००००।

तिण्णि सुपासे चंदप्पहदेवे दोण्णि अद्धसंजुत्ता। सुविहिजिणिंदम्मि दुवे सीयलणाहम्मि इगिलक्खं।।१०९४।।

सुपास ३००००००। चंद २५००००। पुप्फ २००००००। सीय १००००००।

चउसीदिसहस्साइं सेयंसे बासुपुज्जणाहम्मि। बावत्तरि अडसट्ठी विमले छावट्ठिया अणंतम्मि।।१०९५।।

से ८४०००। वा ७२०००। विम ६८०००। अणं ६६०००।

धम्मम्मि संतिकुंथूअरमल्लीसुं कमा सहस्साणि। चउसट्ठी बासट्ठी सट्ठी पण्णास चालीसा।।१०९६।।

सुव्वदणमिणेमीसुं कमसो पासम्मि वड्ढमाणम्मि। तीसं वीसट्ठारस सोलसचोद्दससहस्साणि।।१०९७।।

चौबीस तीर्थंकर के समवसरण में मुनियों की संख्या

यहां से आगे अब ऋषियों की संख्या का कथन किया जाता है—

भगवान् ऋषभनाथ तीर्थंकर के समय में ऋषियों का प्रमाण चौरासी हजार और अजितनाथ, सम्भवनाथ एवं अभिनन्दननाथ तीर्थंकर के वह क्रम से एक लाख, दो लाख और तीन लाख था।।१०९२।।

ऋषभ ८४०००। अजित। १००००००। संभव २००००००। अभिनन्दन ३००००००।

सुमतिनाथ तीर्थंकर के समय में ऋषियों का प्रमाण तीन लाख बीस हजार और पद्मप्रभ के समय में वह तीन लाख तीस हजार था।।१०९३।। सुमति ३२००००। पद्म ३३००००।

सुपार्श्वनाथ स्वामी के समय में ऋषियों की संख्या तीन लाख, चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र के अढ़ाई लाख, सुविधिनाथ तीर्थंकर के दो लाख और शीतलनाथ के एक लाख प्रमाण थी।।१०९४।।

सुपार्श्व ३००००००। चन्द्रप्रभ २५००००। पुष्पदन्त २००००००। शीतल १००००००।

भगवान् श्रेयांस के समय में ऋषियों का प्रमाण चौरासी हजार, वासुपूज्य स्वामी के बहत्तर हजार, विमलनाथ के अड़सठ हजार और अनन्तनाथ के छ्यासठ हजार था।।१०९५।।

श्रेयांस ८४०००। वासुपूज्य ७२०००। विमल ६८०००। अनंत ६६०००।

धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ तीर्थंकर के समय में क्रम से चौंसठ हजार, बासठ हजार, बासठ हजार, साठ हजार पचास हजार और चालीस हजार प्रमाण ऋषियों की संख्या थी।।१०९६।।

धर्म ६४०००। शान्ति ६२०००। कुंथु ६००००। अर ५०००००। मल्लि ४००००।

भगवान् सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान स्वामी के समय में क्रमशः तीस हजार, बीस हजार

---

* तिलोयपण्णत्ति पृ. २८६ से २८७ तक।

सु ३०००००। ण २०००००। णेमि १८०००। पास १६०००। वीर १४०००।
पुव्वधरसिक्खकोहीकेवलिवेकुव्विविउलमदिवादी। पत्तेक्कं सत्तगणा सव्वाणं तित्थकत्ताणं।।१०९८।।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में समस्त मुनियों की संख्या

सव्वगणा २८४८०००।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में आर्यिकाओं की संख्या*

पण्णाससहस्साणिं लक्खाणिं तिण्णि उसहणाहस्स।
अजियस्स तिण्णि लक्खा वीससहस्साणि विरदीओ[१]।।११६६।।
३५००००। ३२००००।

तीससहस्सब्भहिया तियलक्खा संभवस्स तित्थम्मि।
विरदीओ तिण्णि लक्खा तीससहस्साणि छसय तुरिमम्मि।।११६७।।
३३००००। ३३०६००।

तीससहस्सब्भहिया सुमइजिणिंदस्स तिण्णि लक्खाइं।
विरदीओ चउलक्खा वीससहस्साणि पउमपहणाहे।।११६८।।
३३०००० । ४२००००।

तीससहस्सा तिण्णि य लक्खा तित्थे सुपासदेवस्स। चंदपहे तियलक्खा सीदिसहस्साणि विरदीओ।।११६९।।
३३००००। ३८००००।

अठारह हजार, सोलह हजार और चौदह हजार प्रमाण ऋषि थे।।१०९७।।

सुव्रत ३०००००। नमि २०००००। नेमि १८०००। पार्श्व १६०००। वीर १४०००।

सब तीर्थंकरों में से प्रत्येक तीर्थंकर के पूर्वधर, शिक्षक, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रियाऋद्धि के धारक, विपुलमति और वादी, इस प्रकार से सात संघ होते हैं।।१०९८।।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में समस्त मुनियों की संख्या

२८ लाख अड़तालीस हजार है।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में आर्यिकाओं की संख्या

ऋषभनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में तीन लाख पचास हजार और अजितनाथ के तीर्थ में तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएँ थीं।।११६६।। ३५००००। ३२००००।

सम्भवनाथ के तीर्थ में तीन लाख तीस हजार और चतुर्थ तीर्थंकर के तीर्थ में तीन लाख तीस हजार छः सौ आर्यिकाएँ थीं।।११६७।। ३३००००। ३३०६००।

सुमति जिनेन्द्र के तीर्थ में तीन लाख तीस हजार और पद्मप्रभ स्वामी के तीर्थ में चार लाख बीस हजार आर्यिकाएँ थीं।।११६८।। ३३००००। ४२००००।

सुपार्श्वजिन के तीर्थ में तीन लाख तीस हजार और चन्द्रप्रभ के तीर्थ में तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं।।११६९।। ३३००००। ३८००००।

---

* तिलोयपण्णत्ति पृ. २९६ से २९९ तक।

ताइं चिय पत्तेक्कं सुविहिजिणेसम्मि सीयलजिणिंदे। तीससहस्सब्भहियं लक्खं सेयंसदेवम्मि।।११७०।।

३८०००। ३८०००। १३००००।

विरदीओ वासुपुज्जे इगिलक्खं होंति छस्सहस्साणिं। इगिलक्खं तिसहस्सा विरदीओ विमलदेवस्स।।११७१।।

१०६०००। १०३०००।

अट्ठसहस्सब्भहियं अणंतसामिस्स होंति इगिलक्खं।
बासट्ठिसहस्साणिं चत्तारि सयाणि धम्माणाहस्स।।११७२।।

१०८०००। ६२४००।

सट्ठिसहस्सा तिसयब्भहिया संतीसतित्थे विरदीओ। सट्ठिसहस्सा तिसया पण्णासा कुंथुदेवस्स।।११७३।।

६०३००। ६०३५०।

अरजिणवरिंदतित्थे सट्ठिसहस्साणि होंति विरदीओ। पणवण्णसहस्साणिं मल्लिजिणेसस्स तित्थम्मि।।११७४।।

६०००। ५५०००।

पण्णाससहस्साणिं विरदीओ सुव्वदस्स तित्थम्मि। पंचसहस्सब्भहिया चालसहस्सा णमिजिणम्मि।।११७५।।

५०००। ४५०००।

विगुणियवीससहस्सा णेमिस्स कमेण पासवीराणं। अडतीसं छत्तीसं होंति सहस्साणि विरदीओ।।११७६।।

४००००। ३८०००। ३६०००।

णभपणदुछपंचंबरपंचंककमेण तित्थकत्ताणं। सव्वाणं विरदीओ चंदुज्जलणिक्कलंकसीलाओ।।११७७।।

५०५६२५०।

सुविधि और शीतल जिनेन्द्र में से प्रत्येक के तीर्थ में उतनी ही अर्थात् तीन लाख अस्सी हजार तथा श्रेयांस जिन के एक लाख तीस हजार आर्यिकाएँ थीं।।११७०।। ३८०००। ३८०००। १३०००।

वासुपूज्य स्वामी के तीर्थ में एक लाख छः हजार और विमलदेव के तीर्थ में एक लाख तीन हजार आर्यिकाएँ थीं।।११७१।। १०६०००। १०३०००।

अनन्तनाथ स्वामी के तीर्थ में एक लाख आठ हजार और धर्मनाथ के तीर्थ में बासठ हजार चार सौ आर्यिकाएँ थीं।।११७२।। १०८०००। ६२४००।

शान्तिनाथ के तीर्थ में साठ हजार तीन सौ और कुन्थुजिन के तीर्थ में साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाएँ थीं।।११७३।। ६०३००। ६०३५०।

अर जिनेन्द्र के तीर्थ में साठ हजार और मल्लि जिनेन्द्र के तीर्थ में पचपन हजार आर्यिकाएँ थीं।।११७४।।

६०००। ५५०००।

सुव्रत के तीर्थ में पचास हजार और नमिजिन के तीर्थ में पाँच हजार अधिक चालीस हजार अर्थात् पैंतालीस हजार आर्यिकाएँ थीं।।११७५।। ५०००। ४५०००।

नेमिनाथ के तीर्थ में द्विगुणित बीस हजार अर्थात् चालीस हजार और क्रम से पार्श्वनाथ एवं वीर भगवान् के तीर्थ में अड़तीस तथा छत्तीस हजार आर्यिकाएँ थीं।।११७६।। ४०००। ३८०००। ३६०००।

सब तीर्थंकरों के तीर्थ में चन्द्र के समान उज्ज्वल एवं निष्कलंक शील से संयुक्त समस्त आर्यिकाएँ क्रम से शून्य, पाँच, दो, छः, पाँच, शून्य और पाँच, इन अंकों के प्रमाण थीं।।११७७।।

५०५६२५०।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में गणिनी माता के नाम

बम्हप्पकुज्जणामा धम्मसिरी मेरुसेणअयणंता। तह रतिसेणा मीणा वरुणा घोसा य धरणा य।।११७८।।
चारणवरसेणाओ पम्मासव्वस्सिसुव्वदाओ वि। हरिसेणभावियाओ कुंथूमधुसेणपुव्वदत्ताओ।।११७९।।
मग्गिणिजक्खिसुलोया चंदणणामाओ उसहपहुदीणं। एदा पढमगणीओ एक्केक्का सव्वविरदीओ।।११८०।।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में श्रावकों की संख्या

लक्खाणि तिण्णि सावयसंखा उसहादिअट्ठतित्थेसु।
पत्तेक्कं दो लक्खा सुविहिप्पहुदीसु अट्ठतित्थेसुं।।११८१।।
८। ३०००००। २०००००।
एक्केक्कं चिय लक्खं कुंथुजिणिंदादिअट्ठतित्थेसुं।
सव्वाण सावयाणं मेलिदे अडदाललक्खाणिं।।११८२।।
८। १०००००। ४८०००००।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में श्राविकाओं की संख्या

पणचउतियलक्खाइं पण्णविदाट्ठतित्थेसुं। पुह पुह सावगिसंखा सव्वा छण्णउदिलक्खाइं।।११८३।।
५०००००। ४०००००। ३०००००। ९६०००००।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में गणिनी माता के नाम

ब्राह्मी, प्रकुब्जा, धर्मश्री, मेरुषेणा, अनन्ता, रतिषेणा, मीना, वरुणा, घोषा, धरणा, चारणा (धारणा), वरसेना, पद्मा, सुव्रता, हरिषेणा, भाविता, कुंथुसेना, मधुसेना (बंधुसेना), पूर्वदत्ता (पुष्पदत्ता), मार्गिणी, यक्षिणी, सुलोका (सुलोचना) और चन्दना नामक ये एक-एक आर्यिकाएँ क्रम से ऋषभादिक के तीर्थ में रहने वाली आर्यिकाओं के समूह में मुख्य थीं।।११७८-११८०।।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में श्रावकों की संख्या

श्रावकों की संख्या ऋषभादिक आठ तीर्थंकरों में से प्रत्येक के तीर्थ में तीन लाख और सुविधिनाथ प्रभृति आठ तीर्थंकरों में से प्रत्येक के तीर्थ में दो लाख थी।।११८१।।

ऋषभादिक ८-३०००००, सुविधिनाथप्रभृति ८-२०००००।

इसके आगे कुंथुनाथादि आठ तीर्थंकरों में से प्रत्येक के तीर्थ में श्रावकों की संख्या एक-एक लाख कही गयी है। सब श्रावकों की संख्या को मिलाने पर समस्त प्रमाण अड़तालीस लाख होता है।।११८२।।

कुंथुनाथप्रभृति ८-१०००००। समस्त ४८०००००।

चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में श्राविकाओं की संख्या

आठ-आठ तीर्थंकरों के तीर्थों में श्राविकाओं की संख्या पृथक्-पृथक् क्रम से पाँच लाख, चार लाख और तीन लाख; तथा सम्पूर्ण श्राविकाओं की संख्या छयानवे लाख कही गयी है ?।।११८३।।

५०००००। ४०००००। ३०००००। ९६०००००।

समवसरण में देव-देवी-मनुष्य एवं तिर्यंचों की संख्या

देवीदेवसमूहा संखातीदा हुवंति णरतिरिया।
संखेज्जा एक्केक्के तित्थे विहरंति भत्तिजुत्ता य।।११८४।।

समवसरण में देव-देवी-मनुष्य एवं तिर्यंचों की संख्या

प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में असंख्यात देव-देवियों के समूह और संख्यात मनुष्य एवं तिर्यंच जीव भक्ति से संयुक्त होते हुए विहार किया करते हैं।।११८४।।

।।समाप्त।।

अपने-अपने धूलिसालों के विस्तार से रहित अपने-अपने खातिका क्षेत्रों का विस्तार (मूल में देखिए)

। खातिका भूमि का वर्णन समाप्त हुआ।

समवसरण रचना

(षट्खण्डागम धवला पु. ९ से *)

अर्थकर्ता-ग्रन्थकर्ता का विवेचन

कत्तारा दुविहा अत्थकत्तारो गंथकत्तारो चेदि। तत्थ अत्थकत्तारो भयवं महावीरो। तस्स दव्व-खेत्त-काल-भावेहि परूवणा कीरदे गंथस्स पमाणत्तपदुप्पायणट्ठं। केरिसं महावीर-सरीरं ? समचउरससंठाणं वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणं ससुअंधगंधेण आमोइयतिहुवणं सतेजपरिवेढेण विच्छाईकयसुज्जसंघायं सयलदोसवज्जियमिदि। कधमेदम्हादो सरीरादो गंथस्स पमाणत्तमवगम्मदे ? उच्चदे–णिराउहत्तादो जाणाविदकोह-माण-माया-लोह-जाइ-जरा-भरण-भय-हिंसाभावं, णिप्फंदक्खेक्खणादो जाणाविदतिवेदोदयाभावं। णिराहरणत्तादो जाणाविदरागाभावं, भिउडिविरहादो जाणाविदकोहाभावं। वग्गण-णच्चण-हसण-फोडणक्खसुत्त-जडा-मउड-णरसिरमालाधरणविरहादो मोहाभावलिंगं। णिरंबरत्तादो लोहाभावलिंग। ण तिरिक्खेहि वियहिचारो, वइधम्मादो। ण दालिद्दिएहि वियहिचारो, अट्ठुत्तरसयलक्खणेहि अवगयदालिद्दाभावादो। ण गहछलिएहि वियहिचारो, अट्ठुत्तरसयलक्खणेहि अवगयतिहुवणाहिवइत्तस्स गहच्छलणाभावादो। णिव्विसयत्तादो णिस्सेसदोसाभावलिंगं। अग्गि-विसासणि-वज्जाउहादीहि बाहाभावादो घाइकम्माभावलिंगं। ण विज्जावाईहि'

कर्ता दो प्रकार हैं–अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता। उनमें अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं। ग्रन्थ की प्रमाणता को बतलाने के लिए उसकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से प्ररूपणा करते हैं। महावीर का शरीर कैसा है ? वह समचतुरस्रसंस्थान से युक्त, वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन से सहित, सुगन्ध युक्त गन्ध से तीनों लोकों को सुगन्धित करने वाला अपने प्रभामण्डल से सूर्य समूह को फीका करने वाला, तथा समस्त दोषों से रहित है।

शंका–इस शरीर से ग्रन्थ की प्रमाणता कैसे जानी जाती है ?

समाधान–इसका उत्तर कहते हैं–वह शरीर निरायुध होने से क्रोध, मान, माया, लोभ, जन्म, जरा, भरण, भय और हिंसा के अभाव का सूचक है। स्पन्द रहित नेत्र दृष्टि होने से तीनों वेदों के उदय के अभाव का ज्ञापक है, निराभरण होने से राग के अभाव को प्रकट करने वाला है। भृकुटि रहित होने से क्रोध के अभाव का ज्ञापक है। गमन, नृत्य, हास्य, विदारण, अक्षसूत्र, जटा, मुकुट और नरमुण्डमाला को न धारण करने से मोह के अभाव का सूचक है। वस्त्र रहित होने से लोभ के अभाव का सूचक है। यहाँ तिर्यंचों से व्यभिचार नहीं है, क्योंकि, उनमें साधर्म्य का अभाव है। दरिद्रों से भी व्यभिचार नहीं है, क्योंकि एक सौ आठ लक्षणों से महावीर के दरिद्रता का अभाव जाना जाता है। न गृहछलियों से (गृहस्खलित अर्थात् गृहभृष्ट मनुष्यों से) व्यभिचार है, क्योंकि एक सौ आठ लक्षणों से जिनके तीनों लोकों का अधिपतित्व निश्चित है उनके गृहस्खलन हो नहीं सकता। वह शरीर निर्विषय होने से समस्त दोषों के अभाव का सूचक है। अग्नि, विष, अशनि और वज्रायुधादिकों से बाधा न होने के कारण घातिया कर्मों के अभाव का अनुमापक है। यहाँ विद्यावादियों से व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि सौधर्मेन्द्र आदि देवों द्वारा जिसकी विद्याशक्ति छीन ली गई है उसमें चूँकि पूर्वोक्त बाधाएँ पायी जाती हैं तथा सकारण और अकारण बाधाभावों में साधर्म्य भी नहीं है।

---

* षट्खण्डागम, धवला पु. ९, पृ. १०७ से ११३ तक।

वयहिचारो, सोहम्मिंदादिदेवेहि अवहिरिदविज्जासत्तिम्हि तब्बाहाणुवलंभादो सणिबंधणाणिबंधणाणं साहम्माभावादो वा। ण देवेहि वियहिचारो, णिराउहादिविसेसणविसिट्ठस्स अग्गि-विसासणि-वज्जाउहादिबाहाभावादो त्ति सविसेसणसाहणप्पओगादो। पुव्विल्ललिंगेहि जाणाविदमोहाभावेण वा अवगमिदघादिकम्माभावं। वलियावलोयणाभावादो सगासेसजीवपदोसट्ठियणाणं-दंसणावरणाणं णिस्सेसाभावलिंगं। सव्वावयवेहि पच्चक्खावगमादो अणिंदियजणिदणाणत्तलिंगं। आगासगमणेण पहापरिवेढेण तिहुवणभवणविसारिणा ससुरहिगंधेण च जाणाविदअमाणुसभावं। अधवा, ण इमे पादेक्कहेदओ, किंतु एदेसिं समूहो एक्को हेउ त्ति घेत्तव्वो। तदो एदं सरीरं राग-दोस-मोहाभावं जाणावेदि, तदभावो वि महावीरे मुसावादाभावं जाणावेदि, कारणाभावे कज्जस्स अत्थित्तविरोहादो। तदभावो वि आगमस्स पमाणत्तं जाणावेदि। तेण दव्वपरूवणा कायव्वा।।

भगवान महावीर का समवसरण

तित्थुप्पत्ती कम्हि खेत्ते ?

रविमंडलं व समवट्टे, बारहजोयणविक्खंभायामे, एक्किंकदणीलमणिसिलाघडिए, पंचरयणकणयविणिम्मिय-फुरंततेयचउतुंगगोउरधुलिवायारेण परिवेढियपेरंते, तस्संतो तिवायारवेढिय-तिमेहलापीढोवरिट्ठियमणिम-यदिप्पदीहरचउमाणत्थंभविसिट्ठ-विकसितोप्पलकंदोट्टारविंदादिपुप्फा इण्णणंदुत्तरादिवावीणिव-हाऊरियधूलीवायारंतब्भाए, णवणिहिसहियअट्ठुत्तरसयसंखुवलक्खियअट्ठमंगलावूरिदचउगोउरंतरिदसच्छ-

---

विशेषार्थ—विद्यावादियों में बाधाभाव सकारण है, क्योंकि, वहाँ उक्त बाधाभाव विद्याजनित है, न कि जिन भगवान् के समान घातिया कर्मों के अभाव से उत्पन्न बाधाभाव जैसा स्वाभाविक। यही दोनों के बाधाभाव में वैधर्म्य है।

न देवों से व्यभिचार है, क्योंकि निरायुधादि विशेषणों से विशिष्ट उक्त शरीर के अग्नि, विष, अशनि, और वज्रायुधादिकों से कोई बाधा नहीं होती, ऐसे सविशेषण साधन का प्रयोग है। अथवा, पूर्वोक्त हेतुओं से सूचित मोहाभाव के द्वारा वह घातिया कर्मों के अभाव को प्रगट करने वाला है। वलित अर्थात् कुटिल अवलोकन का अभाव होने से अपने समस्त जीव प्रदेशों पर स्थित ज्ञानावरण और दर्शनावरण के पूर्ण अभाव का सूचक है। समस्त अवयवों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होने से अतीन्द्रिय ज्ञानत्व का सूचक है। तथा आकाश गमन से, प्रभामण्डल से एवं त्रिभुवन रूप महल में फैलने वाली अपनी सुरभित गन्ध से अमानुषता का ज्ञापक है। अथवा, ये प्रत्येक अलग-अलग हेतु नहीं हैं, किन्तु इनके समूह रूप एक हेतु है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इस कारण यह शरीर राग, द्वेष एवं मोह के अभाव का ज्ञापक है और रागादि का अभाव भी भगवान् महावीर में असत्य भाषण के अभाव को प्रकट करता है, क्योंकि कारण के अभाव में कार्य के अस्तित्व का विरोध है। और असत्य भाषण का अभाव भी आगम की प्रमाणता का ज्ञापक है। इसलिए द्रव्य से अर्थकर्ता की प्ररूपणा करना चाहिए।

तीर्थ की उत्पत्ति किस क्षेत्र में हुई है ?

जो समवसरणमण्डल सूर्यमण्डल के समान समवृत्त अर्थात् गोल है, बारह योजन प्रमाण विस्तार और आयाम से युक्त है, एक इन्द्रनील मणिमय शिला से घटित है, पाँच रत्नों व सुवर्ण से निर्मित और प्रकाशमान तेज

जलकलिदखाइयापरिवेढिदे, तत्तो परं णाणाविहकुसुमभरेणोण्णयवल्लिवणेण चउरत्थंतरिएण परिवेढियाए, तत्तो परं सुतत्त-सुवण्णविणिम्मिएण अट्ठुत्तरसयट्ठमंगलणवणिहिसयलाहरणसहियधवलतुंगचउगोपुरपायारेण सोहियए, तत्तो परं चउण्हं गोउरवाराणमब्भंतरभागे दोपासट्ठिएहि डज्झंतसुगंधदव्वाणं गंधामोइयभुवणेहि दो-द्दोधूवघडएहि समुब्भडए, तत्तो परं तिभूमीएहि अइधवलरुप्पियरासिविणिम्मिएहि सगंगघडिदसुरलोय-सारमणिसंघायबहुवण्णकिरणपडिच्छाइएहि वज्जंतमुरवसंघायरवबहिरियजीवलोएहि बत्तीसच्छरापडि-बद्धबत्तीसपेक्खणयसहियदोद्दोपासाएहि भूसियए, चउमहावहंतरट्ठिएहि मउवसुगंधणयणहरवण्णसुरलोगरयण-घडियसमुत्तुंगरुक्खएहि विविहवरसुरहिगंधासत्तमत्तमहुवर-महुर-रवविराइयएहि णाणाविहगिरि-सरि-सर-मंडवसंडमंडिएहि चउपासट्ठियजिणिंदयंदपडिबिंबसंबंधेण पत्तच्चणचइत्तरुक्खएहि असोग-सत्तच्छद-चंपयंबवणेहि अइसोहियए, तत्तो परं रुप्पियचउगोउरसंबद्धसुवण्णणिम्मियवणवेइयावेढियए, तत्तो परं चउण्हं रत्थाणमंतरेसुट्ठियएहित्थिरथोरसुरलोयमणित्थंभएहि पादेक्कमट्ठुत्तरसयसंखाएहि एगेगदिसाए दसगुणट्ठहियसयएहि मल्लंबरद्ध-बरहिण-गरुड-गय-केसरि-वसह-हंस-चक्कद्धयणिवएहि परिवेढियए, तत्तो परमवरेण अट्ठुत्तरसयट्ठमंगल-णवणिहिहरचउगोउरमंडिएण विविहमणि-रयण-विचित्तियंगेण आहरणतोरणसयसहियवारेण सुवण्णपायारेण जुत्तए, तस्संतो पुव्वं व दो-द्दो-डज्झंत-सुवंधदव्वगब्भिण-धूवघडमुरव-महुर-रवविराइयतिहूमिधवलहरसमुत्तुंगए, तत्थेव चदुसु रत्थंतरेसु संकप्पियणाणाविहफल-दाणसमत्थएहि रुंटंतमहुअर-

---

से संयुक्त ऐसे चार उन्नत गोपुर युक्त धूलिसाल से जिसका पर्यन्त भाग घिरा हुआ है, उसके भीतर तीन प्राकारों से वेष्टित तीन कटनी युक्त पीठ के ऊपर स्थित मणिमय दैदीप्यमान दीर्घ चार मानस्तम्भों से विशिष्ट व विकसित उत्पल, कंदोट्ट (नील कमल) एवं अरविन्द आदि पुष्पों से व्याप्त ऐसी नन्दोत्तरादि वापियों के समूह से जिसमें धूलिप्राकार का अभ्यन्तर भाग परिपूर्ण है, जो नौ निधियों से सहित व एक सौ आठ संख्या से उपलक्षित आठ मंगलद्रव्यों से परिपूर्ण ऐसे चार गोपुरों से व्यवहित स्वच्छ जल युक्त खातिका से वेष्टित है, इसके आगे चार वीथियों से व्यवहित व नाना प्रकार के पुष्पों के भार से उन्नत ऐसे वल्लीवन से परिवेष्टित है, इसके आगे तपाये हुए सुवर्ण से निर्मित व एक सौ आठ संख्या युक्त आठ मंगल द्रव्य, नौ निधियों एवं समस्त आभरणों से सहित धवल उन्नत चार गोपुर युक्त प्राकार से सुशोभित है; इसके आगे चार गोपुर द्वारों के अभ्यन्तर भाग में दोनों पार्श्व भागों में स्थित, जलते हुए सुगन्ध द्रव्यों के गन्ध से भुवन को आमोदित करने वाले ऐसे दो-दो धूपघटों से संयुक्त है; इसके आगे तीन भूमियों से संयुक्त, अत्यन्त धवल चाँदी की राशि से निर्मित, अपने अवयवों में लगे हुए सुरलोक के श्रेष्ठ मणिसमूह की अनेक वर्ण वाली किरणों से आच्छादित, बजते हुए मृदंगसमूह के शब्द से जीव लोक को बहरा करने वाले, तथा बत्तीस अप्सराओं से सम्बद्ध बत्तीस नाटकों से सहित, ऐसे दो-दो प्रासादों से भूषित है; चार महापथों के बीच में स्थित, मृदु, सुगन्धित एवं नेत्रों को हरने वाले वर्णों से युक्त सुरलोक के रत्नों से निर्मित ऊँचे वृक्षों से संयुक्त, अनेक प्रकार की उत्तम सुगन्ध में आसक्त हुए भ्रमरों के मधुर शब्द से विराजित नाना प्रकार के पर्वत, नदी, सरोवर व मण्डप समूहों से मण्डित तथा चारों पार्श्व भागों में स्थित जिनेन्द्र-चन्द्र के प्रतिबिम्ब के सम्बन्ध से पूजा को प्राप्त हुए चैत्यवृक्षों से सहित ऐसे अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक व आम्र वनों से

कलगलकलयंठीकुलसंकुलएहि सगकिरणणिवहच्छाइयंबरेहि विविहपुर-गिरि-सरि-सरवर-हिंदोल-लयाहरएहि चउगोउरसंबद्धसुवण्णवणवेइयामज्जाएहि सिद्धट्ठियबुद्धि-द्धसिद्धत्थपायव-पवित्तीकयकप्परुक्खवणेहि विहूसियए, तत्तो परं पउमरायमणिमयदेहाहि सगंगणिग्गयतेएण तंबीकयंबराहि सगसव्वंगेहि संधारियजिणिंदयंदाहि मणितोरणंतरियाहि चदुसु रत्थंतरेसु ट्ठियधवलामलपासा-यविहूसियाहि रत्थामज्झट्ठियणव-णवत्थूहाहि अंचियए, तदो गयणप्फलिहमणिघडिएण अट्ठुत्तरसयट्ठमंगल-णवणिहिसणाहपउमरायमणिविणिम्मियगोउरेण पायारेण अहिणंदियए, पीढस्स पढममेहलाए फलिहपायारे च विलग्गियाहि फलिहमणिघडियंगियाहि सोलहभित्तीहि कयबारहकोट्ठएहिमणित्थंभुद्धरियएगागासफलिहघडिय-मंडवच्छाइयएहि सुरलोयसारसुअंधगंधगब्भिणएहि चउव्विहसंघ-कप्पवासिय-मणुव-जोइसिय-वाणवेंतर-भवणवासियजुअईहि भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-मणुव-तिरिक्खेहि य अणुक्कमेण अहिउत्तएहि विराइए, तिमेहलापीढेण मत्थएण

अतिशय शोभित है; इसके आगे चाँदी से निर्मित चार गोपुरों से सम्बद्ध व सुवर्ण से निर्मित ऐसी वनवेदिका से वेष्टित है; इसके आगे चार वीथियों के मध्य भागों में स्थित, स्थिर व स्थूल स्वर्गलोक के मणिमय स्तम्भों से संयुक्त, प्रत्येक एक सौ आठ संख्या से युक्त, एक-एक दिशा में दश से गुणित एक सौ आठ (१०८ × १० = १०८०) ऐसी माला-अम्बराध्व अर्थात् सूर्य और चन्द्र-मयूर-गरुड़-गज-सिंह-वृषभ-हंस और चक्र के चिह्न से युक्त ध्वजाओं के समूह से घिरा हुआ है; इसके आगे एक सौ आठ मंगल द्रव्य व नौ निधियों को धारण करने वाले चार गोपुरों से मण्डित, अनेक प्रकार के मणि व रत्नों से विचित्र देह वाले तथा सैकड़ों आभरण व तोरणों से सहित द्वारों से संयुक्त ऐसे सुवर्ण प्राकार से युक्त है; उसके भीतर पूर्व के समान जलते हुए सुगन्ध द्रव्यों को मध्य में धारण करने वाले दो-दो धूपघटों से युक्त और मृदंग के मधुर शब्द से विराजित तीन भूमियों वाले धवल घरों से उन्नत है; वहाँ पर ही चार वीथियों के अन्तरालों में संकल्पित नाना प्रकार फलों के देने में समर्थ, गुंजार करने वाले भ्रमर व सुन्दर गले वाली कोयलों के समूह से व्याप्त, अपने किरण समूह से आकाश को आच्छादित करने वाले, अनेक प्रकार के पुर-पर्वत-नदी-सरोवर-हिंडोलों एवं लताग्रहों से संयुक्त, चार गोपुरों से सम्बद्ध सुवर्णमय वनवेदिका रूप मर्यादा वाले तथा सिद्ध प्रतिमाओं से दीप्त सिद्धार्थ वृक्षों से पवित्र किए गए ऐसे कल्पवृक्ष वनों से विभूषित है; इसके आगे पद्मरागमणिमय देह से संयुक्त, अपने अंग से निकलने वाले तेज से आकाश को ताम्रवर्ण करने वाले, अपने सब अंगों से जिनेन्द्र-चन्द्रों को धारण करने वाले, मणिमय तोरणों से अन्तरित, चार वीथियों के अन्तरालों में स्थित धवल व निर्मल प्रासादों से विभूषित, ऐसे वीथियों के मध्य में स्थित नौ-नौ स्तूपों से व्याप्त है; इसके आगे आकाश-स्फटिकमणि से निर्मित तथा एक सौ आठ अष्ट-मंगल-द्रव्यों एवं नौ निधियों से सनाथ व पद्मरागमणि से निर्मित गोपुरों वाले प्राकार से अभिनन्दित है; पीठ की प्रथम कटनी व स्फटिक प्राकार से लगी हुई और स्फटिकमणि से निर्मित देहवाली सोलह भित्तियों से विभक्त किए गए, मणिमय स्तम्भों से उद्धृत व एक आकाश स्फटिक से निर्मित मण्डप से आच्छादित, स्वर्गलोक के श्रेष्ठ सुगन्ध गन्धद्रव्य को धारण करने वाले, चतुर्विध मुनिसंघ, कल्पवासिनीदेवी, मनुष्यनी, ज्योतिष्कदेवी, व्यन्तरदेवी भवनवासिदेवी, भवनवासीदेव, वानव्यन्तरदेव, ज्योतिषीदेव, कल्पवासीदेव, मनुष्य व तिर्यंचों से क्रमशः संयुक्त, ऐसे बारह कोठों से विराजित

उड्ढवड्ढमाणदिवायरेण बिदियमेहलाए धरियट्ठमहाधय-मंगलेण मत्थयत्थधम्मचक्कविराइयजक्खकाएण मणिमएण समुत्तुंगवड्ढमाणजिणप्पहामंडलतेएण णट्ठंधारए, णिवदंतसुरकुसुमवरिसेण णिरंतरकयमंगलोवहारए, बहुकोडाकोडिमहुरसुरतूररवेण बहिरियतिहुवण-भवणए, मरगयमणिघडियखंधोवक्खंधेण पउमरायमणिमयपवालंकुरेण णाणाविहफलकलिएण भमर-परहुअ-महुवर-महुरसरविराइएण जिणसासणासोगचिंधेण असोगपायवेण णिण्णासियसयलजणसोगसंघए, सिसिरयरकरधवलेण जोयणंतरवित्थारएण सच्छधवलथूलमुत्ताहलदामकलावसोहमाणपेरंतएण गयणट्ठियछत्तत्तएण वड्ढमाण-तिहुवणाहिवइत्तचिंधएण सुसोहियए, पंचसेलउरणेरइदिसाविसयअइविउलविउलगिरिमत्थयत्थए, गंगोहोव्व चउहि सुरविरइयवारेहि पविसमाणदेव-विज्जाहर-मणुवजणाण मोहए समवसरणमंडले जिणवइतणुमऊहखीरो-वहिणिव्वुडासेसदेहम्मि जक्खिंदकरणियरेहि विज्जिज्जमाणाणेयचामरच्छण्णट्ठदिसाविसयम्मि दिव्वामोयगंध-सुरसाराणेयमणिणिवहघडियम्मि गंधउडिपासायम्मि ट्ठियसीहासणारूढेण वड्ढमाणभडारएण तित्थमुप्पाइदं।

हैं; जिसके मस्तक के ऊपर वर्धमान भगवान् रूपी सूर्य स्थित हैं, जिसकी द्वितीय कटिनी पर आठ ध्वजाएँ व मंगलद्रव्य रखे हुए हैं, जो (प्रथम कटिनी पर) मस्तक पर स्थित धर्मचक्र से विराजित यक्षों के शरीर से संयुक्त है, मणियों से निर्मित है तथा उन्नत वर्धमान जिनके प्रभामण्डल युक्त तेज से सहित है, ऐसे तीन कटिनी युक्त पीठ से अन्धकार को नष्ट करने वाला है; गिरती हुई पुष्पवृष्टि से निरन्तर किए गए मंगल उपहार से युक्त है; अनेक कोड़ाकोड़ी मधुर स्वर वाले वादित्रों के शब्द से त्रिभुवन रूपी भवन को बहरा करने वाला है, मरकतमणि से निर्मित स्कन्ध व उपस्कन्ध से सहित, पद्मरागमणिमय प्रवालांकुरों (पत्तों) से युक्त, नाना प्रकार के फलों से युक्त, भ्रमर कोयल व मधुकर के मधुर स्वरों से विराजित तथा जिनशासन के अशोक अर्थात् आत्मसुख के चिह्नस्वरूप अशोक वृक्ष से समस्त जीवों के शोक समूह को नष्ट करने वाला है; चन्द्रकिरणों के समान धवल, कुछ कम एक योजन विस्तार वाले, स्वच्छ धवल एवं स्थूल मोतियों की मालाओं के समूह से शोभायमान पर्यन्त भाग से संयुक्त तथा वर्धमान भगवान् के तीनों लोकों के अधिपतित्व के चिह्न रूप ऐसे गगनस्थित तीन छत्रों से सुशोभित है; पंचशैलपुर अर्थात् राजगृह नगर के नैऋत्य दिशा भाग में अत्यन्त विस्तृत विपुलाचल के मस्तक पर स्थित है; तथा जो देवों द्वारा रचे गए चार द्वारों से गंगा के प्रवाह के समान प्रवेश करने वाले देव, विद्याधर एवं मनुष्यजनों को मोहित करने वाला है, ऐसे समवसरण मण्डल में जिनेन्द्र देव के शरीर की किरणों रूप क्षीरसमुद्र में डुबी हुई समस्त देह से संयुक्त, यक्षेन्द्रों के हाथों के समूहों से ढोरे गए चामरों से आच्छादित आठ दिशाओं को विषय करने वाले दिव्य आमोद-सुगन्ध युक्त एवं देवों के श्रेष्ठ अनेक मणियों के समूह से रचे गए गन्धकुटी रूप प्रासाद में स्थित सिंहासन पर आरूढ़ वर्धमान भट्टारक ने तीर्थ उत्पन्न किया।

समवसरण रचना

(आदिपुराण भाग–१ से*)

द्वाविंशं पर्व

अथ घातिजये जिष्णोरनुष्णीकृतविष्टपे। त्रिलोक्यामभवत् क्षोभः कैवल्योत्पत्तिवात्यया।।१।।
तदा प्रक्षुभिताम्भोधि वेलाध्वानानुकारिणी। घण्टा मुखरयामास जगत्कल्पामरेशिनाम्।।२।।
ज्योतिर्लोके महान्सिंहप्रणादोऽभूत् समुत्थितः। येनाशु विमदीभावमवापन्सुरवारणाः।।३।।
दध्वान ध्वनदम्भोद ध्वनितानि तिरोदधन्। वैयन्तरेषु गेहेषु महानानकनिःस्वनः।।४।।
शंखः शं खचरैः सार्द्धं यूयमेत जिघृक्षवः। इतीव घोषयन्नुच्चैः फणीन्द्रभवनेऽध्वनत्।।५।।
विष्टराण्यमरेशानामशनैः प्रचकम्पिरे। अक्षमाणीव तदगर्वं सोढू जिनजयोत्सवे।।६।।
पुष्करैः स्वैरथोत्क्षिप्तपुष्करार्धाः सुरद्विपाः। ननृतुः पर्वतोदग्रा महाहिभिरिवाद्रयः।।७।।
पुष्पाञ्जलिमिवातेनुः समन्तात् सुरभूरुहाः। चलच्छाखाकरैदीर्घैर्विगलत्कुसुमोत्करैः।।८।।

अथानन्तर जब जिनेन्द्र भगवान् ने घातिया कर्मों पर विजय प्राप्त की तब समस्त संसार का सन्ताप नष्ट हो गया—सारे संसार में शान्ति छा गयी और केवलज्ञान की उत्पत्तिरूप वायु के समूह से तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न हो गया।।१।।

उस समय क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र की लहरों के शब्द का अनुकरण करता हुआ कल्पवासी देवों का घण्टा समस्त संसार को वाचालित कर रहा था।।। २।।

ज्योतिषी देवों के लोक में बड़ा भारी सिंहनाद हो रहा था जिससे देवताओं के हाथी भी मदरहित अवस्था को प्राप्त हो गए थे।। ३।।

व्यन्तर देवों के घरों में नगाड़ों के ऐसे जोरदार शब्द हो रहे थे जो कि गरजते हुए मेघों के शब्दों को भी तिरस्कृत कर रहे थे।।४।।

'भो भवनवासी देवों, तुम भी आकाश में चलने वाले कल्पवासी देवों के साथ-साथ भगवान् के दर्शन से उत्पन्न हुए सुख अथवा शान्ति को ग्रहण करने के लिए आओ' इस प्रकार जोर-जोर से घोषणा करता हुआ शंख भवनवासी देवों के भवनों में अपने आप शब्द करने लगा था।।५।।

उसी समय समस्त इन्द्रों के आसन भी शीघ्र ही कम्पायमान हो गए थे मानो जिनेन्द्रदेव को घातिया कर्मों के जीत लेने से जो गर्व हुआ था उसे वे सहन करने के लिए असमर्थ होकर ही कम्पायमान होने लगे थे।।६।।

जिन्होंने अपनी-अपनी सूड़ों के अग्रभागों से पकड़कर कमलरूपी अर्घ ऊपर को उठाए हैं और जो पर्वतों के समान ऊँचे हैं, ऐसे देवों के हाथी नृत्य कर रहे थे तथा वे ऐसे मालूम होते थे मानो बड़े-बड़े सर्पोंसहित पर्वत ही नृत्य कर रहे हों।।७।।

अपनी लम्बी-लम्बी शाखाओं रूपी हाथों से चारों ओर फूल बरसाते हुए कल्पवृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भगवान् के लिए पुष्पांजलि ही समर्पित कर रहे हों।।८।।

---

* आदिपुराण भाग-१, पृ. ५०६ से ५३९ तक।

दिशः प्रसत्तिमासेदुः बभ्राजे व्यभ्रमम्बरम्। विरजीकृतभूलोकः शिशिरो मरुदाववौ।।९।।
इति प्रमोदमातन्वन्नकस्माद् भुवनोदरे। केवलज्ञानपूर्णेन्दुर्जगदब्धिमवीवृधत्।।१०।।
चिह्नैरमीभिरह्राय सुरेन्द्रोऽबोधि सावधिः। वैभवं भुवनव्यापि वैभवध्वंसिवैभवम्।।११।।
आथोत्थायासनादाशु प्रमोदं परमुद्वहन्। तद्भरादिव नम्रोऽभून्नतमूर्धा शचीपतिः।।१२।।
किमेतदिति पृच्छन्तीं पौलोभीमतिसंभ्रमात्। हरिः प्रबोधयाभास विभोः कैवल्यसंभवम्।।१३।।
प्रयाणपटहेषूच्चैः प्रध्वनत्सु शताध्वरः। भर्तुः कैवल्यपूजायै निश्चक्राम सुरैवृतः।।१४।।
ततो वलाहकाकार विमानं कामगाह्वयम्। चक्रे बलाहको देवो जम्बूद्वीपप्रमान्वितम्।।१५।।
मुक्तालम्बनसंशोभि तदाभाद् रत्ननिर्मितम्। तोषात्प्रहासमातन्वदिव किङ्किणिकास्वनैः।।१६।।
शारदाभ्रमिवादभ्रं श्वेताखिलदिङ्मुखम्। नागदत्ताभियोग्येशो नागमैरावतं व्यधात्।।१७।।
ततस्तद्विक्रियारब्धमारूढो दिव्यवाहनम्। हरिवाहः सहैशानः प्रतस्थे सपुलोमजः।।१८।।

समस्त दिशाएँ प्रसन्नता को प्राप्त हो रही थीं, आकाश मेघों से रहित होकर सुशोभित हो रहा था और जिसने पृथ्वी लोक को धूलिरहित कर दिया है ऐसी ठण्डी–ठण्डी हवा चल रही थी।।९।।

इस प्रकार संसार के भीतर अकस्मात् आनन्द को विस्तृत करता हुआ केवलज्ञानरूपी पूर्ण चन्द्रमा संसाररूपी समुद्र को बढ़ा रहा था अर्थात् आनन्दित कर रहा था।।१०।।

अवधिज्ञानी इन्द्र ने सब चिह्नों से संसार में व्याप्त हुए और संसार को नष्ट करने वाले, भगवान् वृषभदेव के केवलज्ञानरूपी वैभव को शीघ्र ही जान लिया था।।११।।

तदनन्तर परम आनन्द को धारण करता हुआ इन्द्र शीघ्र ही आसन से उठा और उस आनन्द के भार से ही मानो नतमस्तक होकर उसने भगवान् के लिए नमस्कार किया था।।१२।।

'यह क्या है' इस प्रकार बड़े आश्चर्य से पूछती हुई इन्द्राणी के लिए भी इन्द्र ने भगवान् के केवलज्ञान की उत्पत्ति का समाचार बतलाया था।।१३।।

अथानन्तर जब प्रस्थान काल की सूचना देने वाले नगाड़े जोर–जोर से शब्द कर रहे थे तब इन्द्र अनेक देवों से परिवृत होकर भगवान् के केवलज्ञान की पूजा करने के लिए निकला।।१४।।

उसी समय बलाहकदेव ने एक कामग नाम का विमान बनाया जिसका आकार बलाहक अर्थात् मेघ के समान था और जो जम्बूद्वीप के प्रमाण था।।१५।।

वह विमान रत्नों का बना हुआ था और मोतियों की लटकती हुई मालाओं से सुशोभित हो रहा था तथा उस पर जो किंकिणियों के शब्द हो रहे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो सन्तोष से हँस ही रहा हो।।१६।।

जो आभियोग्य जाति के देवों में मुख्य था ऐसे नागदत्त नाम के देव ने विक्रिया ऋद्धि से एक ऐरावत हाथी बनाया। वह हाथी शरद्ऋतु के बादलों के समान सफेद था, बहुत बड़ा था और उसने अपनी सफेदी से समस्त दिशाओं को सफेद कर दिया था।।१७।।

तदनन्तर सौधर्मेन्द्र ने अपनी इन्द्राणी और ऐशान इन्द्र के साथ–साथ विक्रिया ऋद्धि से बने हुए उस दिव्यवाहन पर आरूढ़ होकर प्रस्थान किया।।१८।।

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदामराः । सात्मरक्षजगत्पालाः सानीकाः सप्रकीर्णकाः।।१९।।
पुरः किल्विषिकेषूच्चैरातन्वत्स्वानकस्वनान्। स्वैरं स्वैर्वाहनैः शक्रं व्रजन्तमनुवव्रजुः।।२०।।
अप्सरस्सु नटन्तीषु गन्धर्वातोद्यवादनैः। किन्नरेषु च गायत्सु चचाल सुरवाहिनी।।२१।
इन्द्रादीनामथैतेषां लक्ष्म किंचिदनू द्यते। इन्दनाद्यणिमाद्यष्टगुणैरिन्द्रो ह्यनन्यजैः।।२२।।
आज्ञैश्वर्याद् विनान्यैस्तु गुणैरिन्द्रेण संमिताः। सामानिका भवेयुस्ते शक्रेणापि गुरूकृताः।।२३।।
पितृमातृगुरुप्रख्याः संमतास्ते सुरेशिनाम्। लभन्ते सममिन्द्रैश्च सत्कारं मान्यतोचितम्।।२४।।
त्रायस्त्रिंशास्त्रयस्त्रिंशदेव देवाः प्रकीर्तिताः। पुरोधोमन्त्र्यमात्यानां सदृशास्ते दिवीशिनाम्।।२५।।
भवाः परिषदीत्यासन् सुराः पारिषदाह्वयाः। ते पीठमर्दसदृशाः सुरेन्द्रैरूप लालिताः।।२६।।
आत्मरक्षाः शिरोर क्षसमानाः प्रोद्यतासयः। विभवायैव पर्यन्ते पर्यटन्त्यमरेशिनाम्।।२७।।
लोकपालास्तु लोकान्तपालका दुर्गपालवत्। पदात्यादीन्यनीकानि दण्डकल्पानि सप्तवै।।२८।।

सबसे आगे किल्विषिक जाति के देव जोर–जोर से सुन्दर नगाड़ों के शब्द करते जाते थे और उनके पीछे इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक और प्रकीर्णक जाति के देव अपनी–अपनी सवारियों पर आरूढ़ हो इच्छानुसार जाते हुए सौधर्मेन्द्र के पीछे–पीछे जा रहे थे।।१९–२०।।

उस समय अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, गन्धर्व देव बाजे बजा रहे थे और किन्नरी जाति की देवियाँ गीत गा रही थीं, इस प्रकार वह देवों की सेना बड़े वैभव के साथ जा रही थी।।२१।।

अब यहाँ पर इन्द्र आदि देवों के कुछ लक्षण लिखे जाते हैं–अन्य देवों में न पाए जाने वाले अणिमा, महिमा आदि गुणों से जो परम ऐश्वर्य को प्राप्त हों उन्हें इन्द्र कहते हैं।।२२।।

जो आज्ञा और ऐश्वर्य के बिना अन्य सब गुणों से इन्द्र के समान हों और इन्द्र भी जिन्हें बड़ा मानता हो वे सामानिकदेव कहलाते हैं।।२३।।

सामानिक जाति के देव इन्द्रों के पिता–माता और गुरु के तुल्य होते हैं तथा ये अपनी मान्यता के अनुसार इन्द्रों के समान ही सत्कार प्राप्त करते हैं।।२४।।

इन्द्रों के पुरोहित मन्त्री और अमात्यों (सदा साथ में रहने वाले मन्त्री) के समान जो देव होते हैं वे त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं। ये देव एक–एक इन्द्र की सभा में गिनती के तैंतीस–तैंतीस ही होते हैं।।२५।।

जो इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते हैं उन्हें पारिषद कहते हैं। ये पारिषद जाति के देव इन्द्रों के पीठमर्द अर्थात् मित्रों के तुल्य होते हैं और इन्द्र उन पर अतिशय प्रेम रखता है।।२६।।

जो देव अंगरक्षक के समान तलवार ऊँची उठाकर इन्द्र के चारों ओर घूमते रहते हैं उन्हें आत्मरक्ष कहते हैं। यद्यपि इन्द्र को कुछ भय नहीं रहता तथापि ये देव इन्द्र का वैभव दिखलाने के लिए ही उसके पास ही पास घूमा करते हैं।।२७।।

जो दुर्गरक्षक के समान स्वर्गलोक की रक्षा करते हैं उन्हें लोकपाल कहते हैं और सेना के समान पियादे आदि जो सात प्रकार के देव हैं उन्हें अनीक कहते हैं। (हाथी, घोड़े, रथ, पियादे, बैल, गन्धर्व और नृत्य करने वाली देवियाँ यह सात प्रकार की देवों की सेना है)।।२८।।

पौरजानपदप्रख्याः सुरा ज्ञेया प्रकीर्णकाः। भवेयुराभियोग्याख्या दासकर्मकरोपमाः।।२९।।
मताः किल्विषमस्त्येषामिति किल्विषिकामराः। बाह्याः प्रजा इव स्वर्गे स्वल्पपुण्योदितर्द्धयः।।३०।।
एकैकस्मिन्निकाये स्युर्दश भेदाः सुरास्त्विमे। व्यन्तरा ज्योतिषस्त्रायस्त्रिंशलोकपवर्जिताः।।३१।।
इन्द्रस्तम्बेरमः कीदृगिति चेत् सोऽनुवर्ण्यते। तुङ्गवंशो महावर्ष्मा सुवृत्तोन्नतमस्तकः।।३२।।
बह्वाननो बहुरदो बहुदोर्विपुलासनः। लक्षणैर्व्यञ्जनैर्युक्तः सात्त्विको जवनो बली।।३३।।
कामगः कामरूपी च शूरः सद्वृत्तकन्धरः। समसंबन्धनो धुर्यो मधुस्निग्धरदेक्षणः।।३४।।
तिर्यग्लोलायतस्थूलसमवृत्तर्जुसत्करः। स्निग्धाताम्रपृथुस्रोतो दीर्घाङ्गुलिसपुष्करः।।३५।।
वृत्तगात्रापरः स्थेयान् दीर्घमेह नबालधिः। व्यूढोरस्को महाध्वानकर्णः सत्कर्णपल्लवः।।३६।।
अर्धेन्दुनिभसुश्लिष्टविद्रुमाभनखोत्करः। सच्छायस्ताम्रतालवास्यः शैलोदग्रो महाकटः।।३७।।

नगर तथा देशों में रहने वाले लोगों के समान जो देव हैं उन्हें प्रकीर्णक जानना चाहिए और जो नौकर-चाकरों के समान हैं वे आभियोग्य कहलाते हैं।।२९।।

जिनके किल्विष अर्थात् पापकर्म का उदय हो उन्हें किल्विषिक देव कहते हैं। ये देव अन्त्यजों की तरह अन्य देवों से बाहर रहते हैं। उनके जो कुछ थोड़ा-सा पुण्य का उदय होता है उसी के अनुरूप उनके थोड़ी-सी ऋद्धियाँ होती हैं।।३०।।

इस प्रकार प्रत्येक निकाय में ये ऊपर कहे हुए दश-दश प्रकार के देव होते हैं परन्तु व्यन्तर और ज्योतिषीदेव त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल भेद से रहित होते हैं।।३१।।

अब इन्द्र के ऐरावत हाथी का भी वर्णन करते हैं–उसका वंश अर्थात् पीठ पर की हड्डी बहुत ऊँची थी, उसका शरीर बहुत बड़ा था, मस्तक अतिशय गोल और ऊँचा था। उसके अनेक मुख थे, अनेक दाँत थे, अनेक सूँड़ें थीं, उसका आसन बहुत बड़ा था, वह अनेक लक्षण और व्यंजनों से सहित था, शक्तिशाली था, शीघ्र गमन करने वाला था, बलवान था, वह इच्छानुसार चाहे जहाँ गमन कर सकता था, इच्छानुसार चाहे जैसा रूप बना सकता था, अतिशय शूरवीर था। उसके कन्धे अतिशय गोल थे, वह सम अर्थात् समचतुस्र संस्थान का धारी था, उसके शरीर के बन्धन उत्तम थे, वह धुरन्धर था, उसके दाँत और नेत्र मनोहर तथा चिकने थे। उसकी उत्तम सूँड नीचे की ओर तिरछी लटकती हुई चंचल, लम्बी, मोटी तथा अनुक्रम से पतली होती हुई गोल और सीधी थी; पुष्कर अर्थात् सूँड़ का अग्रभाग चिकना और लाल था, उसमें बड़े-बड़े छेद थे और बड़ी-बड़ी अंगुलियों के समान चिह्न थे। उसके शरीर का पिछला हिस्सा गोल था, वह हाथी अतिशय गम्भीर और स्थिर था, उसकी पूँछ और लिंग दोनों ही बड़े थे, उसका वक्षःस्थल बहुत ही चौड़ा और मजबूत था, उसके कान बड़ा भारी शब्द कर रहे थे, उसके कानरूपी पल्लव बहुत ही मनोहर थे। उसके नखों का समूह अर्ध चन्द्रमा के आकार का था, अंगुलियों में खूब जड़ा हुआ था और मूँगा के समान कुछ-कुछ लाल वर्ण का था, उसकी कान्ति उत्तम थी। उसका मुख और तालु दोनों ही लाल थे, वह पर्वत के समान ऊँचा था, उसके गण्डस्थल भी बहुत बड़े थे। उसके जघन सुअर के समान थे, वह अतिशय लक्ष्मीमान् था, उसके ओठ बड़े-बड़े थे, उसका शब्द दुन्दुभी शब्द के समान था, उच्छ्वास सुगन्धित तथा दीर्घ था, उसकी आयु अपरिमित थी और उसका सभी कोई आदर करता था। वह सार्थक शब्दार्थ

बराहजघनः श्रीमान् दीर्घोष्टो दुन्दुभिस्वनः। सुगन्धिदीर्घनिःश्वासः सोऽमितायुः कृशोदरः।।३८।।
अन्वर्थवेदी कल्याणः कल्याणप्रकृतिः शुभः। अयोनिजः सुजातश्च सप्तधा सुप्रतिष्ठितः।।३९।।
मदनिर्झरसंसिक्तकर्णचामरलम्बिनीः। मदस्तुतीरिवाविभ्रदपराः षट्पदावली।।४०।।
मुखैर्बहुभिराकीर्णो गजराजः स्म राजते। सेव्यमान इवायातैर्भक्त्या विश्वैरनेकपैः।।४१।।
(दशभिः कुलकम्)
अशोकपल्लवाताम्रतालुच्छायाछलेन यः। वहन्मुहुरिवारुच्या पल्लवान् कवलीकृतान्।।४२।।
मृदङ्गमन्द्रनिर्घोषैःकर्णतालाभिताडनैः। सालिवीणारुतैर्ह्लादैरारब्धातोद्यविभ्रमः।।४३।।
करं सुदीर्घनिः श्वासं मदवेणीं च यो वहन्। सनिर्झरस्य सशयोः बिभर्ति स्म गिरेः श्रियम्।।४४।।
दन्तालग्नैर्मृणालैर्यो राजते स्मायतैर्भृशम्। प्रारोहैरिव दन्तानां शशाङ्कशकलामलैः।।४५।।
पद्माकर इव श्रीमान् दधानः पुष्करश्रियम्। कल्पद्रुम इव प्रांशुर्दानार्थिभिरुपासितः।।४६।।

का जानने वाला था, स्वयं मङ्गलरूप था, उसका स्वभाव भी मङ्गलरूप था, वह शुभ था, बिना योनि के उत्पन्न हुआ था, उसकी जाति उत्तम थी अथवा उसका जन्म सबसे उत्तम था, वह पराक्रम, तेज, बल, शूरता, शक्ति, संहनन और वेग इन सात प्रकार की प्रतिष्ठाओं से सहित था। वह अपने कानों के समीप बैठी हुई उन भ्रमरों की पंक्तियों को धारण कर रहा था जो कि गण्डस्थलों से निकलते हुए मदरूपी जल के निर्झरनों से भींग गयी थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानों मद की दूसरी धाराएँ ही हों। इस प्रकार अनेक मुखों से व्याप्त हुआ वह गजराज ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भक्तिपूर्वक आए हुए संसार के समस्त हाथी ही उसकी सेवा कर रहे हों।।३२-४१।।

उस हाथी का तालु अशोक वृक्ष के पल्लव के समान अतिशय लाल था। इसलिए वह ऐसा जान पड़ता था मानो लाल-लाल तालु की छाया के बहाने से खाए हुए पल्लवों को अच्छे न लगने के कारण बार-बार उगल ही रहा हो।।४२।।

उस हाथी के कर्णरूपी तालों की ताड़ना से मृदङ्ग के समान गम्भीर शब्द हो रहा था और वहीं पर जो भ्रमर बैठे हुए थे वे वीणा के समान शब्द कर रहे थे, उन दोनों से वह हाथी ऐसा जान पड़ता था मानो उसने बाजा बजाना ही प्रारम्भ किया हो।।४३।।

वह हाथी, जिससे बड़ी लम्बी श्वास निकल रही है ऐसी शुण्ड तथा मद जल की धारा को धारण कर रहा था और उन दोनों से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो निर्झरने और सर्प से सहित किसी पर्वत की ही शोभा धारण कर रहा हो।।४४।।

इसके दाँतों में जो मृणाल लगे हुए थे उनसे वह ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो चन्द्रमा के टुकड़ों के समान उज्ज्वल दाँतों के अँकुरों से ही सुशोभित हो रहा हो।।४५।।

वह शोभायमान हाथी एक सरोवर के समान मालूम होता था क्योंकि जिस प्रकार सरोवर पुष्कर अर्थात् कमलों की शोभा धारण करता है उसी प्रकार वह हाथी भी पुष्कर अर्थात् सूँड़ के अग्रभाग की शोभा धारण कर रहा था, अथवा वह हाथी एक ऊँचे कल्पवृक्ष के समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार कल्पवृक्ष दान अर्थात् अभिलषित वस्तुओं की इच्छा करने वाले मनुष्यों के द्वारा उपासित होता है उसी प्रकार वह हाथी भी दान अर्थात् मदजल के अभिलाषी भ्रमरों के द्वारा उपासित (सेवित) हो रहा था।।४६।।

रेजे सहैमकक्ष्योऽसौ हेमवल्लीवृताद्रिवत्। नक्षत्रमालयाक्षिप्त शरदम्बरविभ्रमः।।४७।।

(षड्भिः कुलकम्)

ग्रैवेयमालया कण्ठं स वाचालितमुद्वहन्। पक्षिमालावृतस्याद्रिनितम्बस्य श्रियं दधौ।।४८।।
घण्टाद्वयेन रेजेऽसौ सौवर्णेन निनादिना। सुराणामवबोधाय जिनार्चामिव घोषयन्।।४९।।
जम्बूद्वीपविशालोरुकायश्रीः स सरोवरान्। कुलाद्रीनिव वभ्रेऽसौ रदानायामशालिनः।।५०।।
श्वेतिम्ना वपुषः श्वेतद्वीपलक्ष्मीमुवाह सः। चलत्कैलासशैलाभः प्रक्षरन्मदनिर्झरः।।५१।।
इति व्यावर्णितारोह परिणाह वपुर्गुणम्। गजानीकेश्वरश्चक्रे महैरावतदन्तिनम्।।५२।।
तमैरावणमारूढः सहस्राक्षोऽद्युतत्तराम्। पद्माकर इवोत्फुल्लपङ्कजो गिरिमस्तके।।५३।।
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य प्रत्यास्यं च रदाष्टकम्। सरः प्रतिरदं तस्मिन्नब्जिन्येका सरः प्रति।।५४।।
द्वात्रिंशत्प्रसवास्तस्यां तावत्प्रमितपत्रकाः। तेष्वायतेषु देवानां नर्तक्यस्तत्प्रमाः पृथक्।।५५।।
नृत्यन्ति सलयं स्मेरवक्त्राब्जा ललितभ्रुवः। पश्चाच्चित्तद्रुमेपूच्चैर्न्यस्यन्त्यः प्रमदाङ्कुरान्।।५६।।

उसके वक्षःस्थल पर सोने की साँकल पड़ी हुई थी जिससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो सुवर्णमयी लताओं से ढका हुआ पर्वत ही हो और गले में नक्षत्रमाला नाम की माला पड़ी हुई थी जिससे वह अश्विनी आदि नक्षत्रों की माला से सुशोभित शरद् ऋतु के आकाश की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था।।४७।।

जो गले में पड़ी हुई माला से शब्दायमान हो रहा है ऐसे कण्ठ को धारण करता हुआ वह हाथी पक्षियों की पङ्क्ति से घिरे हुए किसी पर्वत के नितम्ब भाग (मध्य भाग) की शोभा धारण कर रहा था।।४८।।

वह हाथी शब्द करते हुए सुवर्णमयी दो घण्टाओं से ऐसा जान पड़ता था मानो देवों को बतलाने के लिए जिनेन्द्रदेव की पूजा की घोषणा ही कर रहा हो।।४९।।

उस हाथी का शरीर जम्बूद्वीप के समान विशाल और स्थूल था तथा वह कुलाचलों के समान लम्बे और सरोवरों से सुशोभित दाँतों को धारण कर रहा था इसलिए वह ठीक जम्बूद्वीप के समान जान पड़ता था।।५०।।

वह हाथी अपने शरीर की सफेदी से श्वेत द्वीप की शोभा धारण कर रहा था और झरते हुए मदजल के निर्झरनों से चलते–फिरते कैलास पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था।।५१।।

इस प्रकार हाथियों की सेना के अधिपति देव ने जिसके विस्तार आदि का वर्णन ऊपर किया जा चुका है ऐसा बड़ा भारी ऐरावत हाथी बनाया।।५२।।

जिस प्रकार किसी पर्वत के शिखर पर फूले हुए कमलों से युक्त सरोवर सुशोभित होता है उसी प्रकार उस ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुआ इन्द्र भी अतिशय सुशोभित हो रहा था।।५३।।

उस ऐरावत हाथी के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में आठ–आठ दाँत थे, एक–एक दाँत पर एक–एक सरोवर था, एक–एक सरोवर में एक–एक कमलिनी थी, एक–एक कमलिनी में बत्तीस–बत्तीस कमल थे, एक–एक कमल में बत्तीस–बत्तीस दल थे और उन लम्बे–लम्बे प्रत्येक दलों पर, जिनके मुखरूपी कलम मन्द हास्य से सुशोभित हैं, जिनकी भौंहें अतिशय सुन्दर हैं और जो दर्शकों के चित्तरूपी वृक्षों में आनन्दरूपी अंकुर उत्पन्न करा रही हैं ऐसी बत्तीस–बत्तीस अप्सराएँ लय–सहित नृत्य कर रही थीं।।५४–५६।।

तासां सहास्य शृङ्गाररसभावलयान्वितम्। पश्यन्तः कैशिकीप्रायं नृत्तं पिप्रियिरे सुराः।।५७।।
प्रयाणे सुरराजस्य नेटुरप्सरसः पुरः। रक्तकण्ठाश्च किन्नर्यो जगुर्जिनपतेर्जयम्।।५८।।
ततो द्वात्रिंश दिन्द्राणां पूतना बहुकेतनाः। प्रसस्रुर्विलसच्छत्रचामराः प्रततामराः।।५९।।
अप्सरःकुङ्कुमारक्तकुचचक्राह्वयुग्मके। तद्वक्त्रपङ्कजच्छन्न लसत्तन्नयनोत्पले।।६०।।
नभःसरसि हारांशुच्छन्नवारिणि हारिणि। चलन्तश्चामरापीडा हंसायन्ते स्म नाकिनाम्।।६१।।
इन्द्रनीलमयाहार्य रुचिभिः क्वचिदाततम्। स्वामाभां बिभराभास धौतासिनिभमम्बरम्।।६२।।
पद्मरागरुचा व्याप्तं क्वचिद्व्योमतलं बभौ। सान्ध्यं रागमिवाबिभ्रदनुरञ्जितदिङ्मुखम्।।६३।।
क्वचिन्मरकतच्छायासमाक्रान्तमभान्नभः। स शैवलमिवाम्भोधेर्जलं पर्यन्तसंश्रितम्।।६४।।
देवाभरणमुक्तौघशबलं सहविद्रुभम्। भेजे पयोमुचां वर्त्म विनीलं जलधेः श्रियम्।।६५।।
तन्व्यः सुरुचिराकारा लसदंशुकभूषणाः। तदामरस्त्रियो रेजुः कल्पवल्ल्य इवाम्बरे।।६६।।

जो हास्य और शृंगार रस से भरा हुआ था, जो भाव और लय से सहित था तथा जिसमें कैशिकी नामक वृत्ति का ही अधिकतर प्रयोग हो रहा था ऐसे अप्सराओं के उस नृत्य को देखते हुए देव लोग बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे।।५७।।

उस प्रयाण के समय इन्द्र के आगे अनेक अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और जिनके कण्ठ अनेक राग रागिनियों से भरे हुए हैं ऐसी किन्नरी देवियाँ जिनेन्द्रदेव के विजय गीत गा रही थीं।।५८।।

तदनन्तर जिनमें अनेक पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनमें छत्र और चमर सुशोभित हो रहे थे, और जिनमें चारों ओर देव ही देव फैले हुए थे ऐसी बत्तीस इन्द्रों की सेनाएँ फैल गयीं।।५९।।

जिसमें अप्सराओं के केसर से रँगे हुए स्तनरूपी चक्रवाक पक्षियों के जोड़े निवास कर रहे हैं, जो अप्सराओं के मुखरूपी कमलों से ढका हुआ है, जिसमें अप्सराओं के नेत्ररूपी नीले कमल सुशोभित हो रहे हैं और जिसमें उन्हीं अप्सराओं के हारों की किरण रूप ही स्वच्छ जल भरा हुआ है ऐसे आकाशरूपी सुन्दर सरोवर में देवों के ऊपर जो चमरों के समूह ढोले जा रहे थे वे ठीक हंसो के समान जान पड़ते थे।६०–६१।।

स्वच्छ तलवार के समान सुशोभित आकाश कहीं–कहीं पर इन्द्रनीलमणि के बने हुए आभूषणों की कान्ति से व्याप्त होकर अपनी निराली ही कान्ति धारण कर रहा था।।६२।।

वही आकाश कहीं पर पद्मराग मणियों की कान्ति से व्याप्त हो रहा था जिससे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो समस्त दिशाओं को अनुरंजित करने वाली सन्ध्याकाल की लालिमा ही धारण कर रहा हो।।६३।।

कहीं पर मरकतमणि छाया से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो शैवाल से सहित और किनारे पर स्थित समुद्र का जल ही हो।।६४।।

देवों के आभूषणों में लगे मोतियों के समूह से चित्र–विचित्र तथा मूँगाओं से व्याप्त हुआ वह नीला आकाश समुद्र की शोभा को धारण कर रहा था।।६५।।

जो शरीर से पतली हैं, जिनका आकार सुन्दर है और जिनके वस्त्र तथा आभूषण अतिशय देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसी देवांगनाएँ उस समय आकाश में ठीक कल्पलताओं के समान सुशोभित हो रही थीं।।६६।।

स्मेरवक्त्राम्बुजा रेजुर्नयनोत्पलराजिताः। सरस्य इव लावण्यरसापूर्णाः सुराङ्गनाः।।६७।।
तासां स्मेराणि वक्त्राणि पद्मबुद्ध्यानुधावताम्। रेजे मधुलिहां माला धनुर्ज्येव मनोभुवः।।६८।।
हारोश्रितस्तनोपान्ता रेजुरप्सरसस्तदा। दधाना इव निर्मोकसमच्छायं स्तनांशुकम् ।।६९।।
सुरानकमहाध्वानः पूजावेलां परां दधत्। प्रचरद्देवकल्लोलो बभौ देवागमाम्बुधिः।।७०।।
ज्योतिर्मय इचैतस्मिन् जाते सृष्ट्यन्तरे भृशम्। ज्योतिर्गणा हियेवासन् विच्छायत्वादलक्षिताः।।७१।।
तदा दिव्याङ्गनारूपैर्हयहस्त्यादिवाहनैः। उच्चावचैर्नभोवर्त्म भेजे चित्रपटश्रियम् ।।७२।।
देवाङ्गद्युतिविद्युद्भिस्तदाभरणरोहितैः। सुरेभनीलजीमूतैर्व्योमाधात् प्रावृषः श्रियम् ।।७३।।
इत्यापतत्सु देवेषु समं यानविमानकैः। सजानिपु तदा स्वर्गश्चिरादुद्वासितो वत।।७४।।
समारुद्ध्य नभोऽशेषमित्यायातैः सुरासुरैः। जगत्प्रादुर्भवदिव्यस्वर्गान्तरमिवारुचत् ।।७५।।
सुरैर्दूरादथालोकि विभोरास्थानमण्डलम्। सुरशिल्पिभिरारब्धपरार्ध्यरचनाशतम् ।।७६।।

उन देवाङ्गनाओं के कुछ–कुछ हँसते हुए मुख कमलों के समान थे, नेत्र नीलकमल के समान सुशोभित थे और स्वयं लावण्यरूपी जल से भरी हुई थीं इसलिए वे ठीक सरोवरों के समान शोभायमान हो रही थीं।।६७।।

कमल समझकर उन देवांगनाओं के मुखों की ओर दौड़ती हुई भ्रमरों की माला कामदेव के धनुष की डोरी के समान सुशोभित हो रही थी।।६८।।

जिनके स्तनों के समीप भाग में हार पड़े हुए हैं ऐसी वे देवांगनाएँ उस समय ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो साँप की काँचली के समान कान्ति वाली चोली ही धारण कर रही हों।।६९।।

उस समय वह देवों का आगमन एक समुद्र के समान जान पड़ता था क्योंकि समुद्र जिस प्रकार अपनी गरजना से बेला अर्थात् ज्वार–भाटा को धारण करता है उसी प्रकार वह देवों का आगमन भी देवों के नगाड़ों के बड़े भारी शब्दों से पूजा वेला अर्थात् भगवान् की पूजा के समय को धारण कर रहा था और समुद्र में जिस प्रकार लहरें उठा करती हैं उसी प्रकार उस देवों के आगमन में इधर–उधर चलते हुए देवरूपी लहरें उठ रही थीं।।७०।।

जिस समय वह प्रकाशमान देवों की सेना नीचे की ओर आ रही थी उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो ज्योतिषी देवों की एक दूसरी ही सृष्टि उत्पन्न हुई हो और इसलिए ही ज्योतिषी देवों के समूह लज्जा से कान्तिरहित होकर अदृश्य हो गए हों।।७१।।

उस समय देवांगनाओं के रूपों और ऊँचे–नीचे हाथी, घोड़े आदि की सवारियों से वह आकाश एक चित्रपट की शोभा धारण कर रहा था।।७२।।

अथवा उस समय यह आकाश देवों के शरीर की कान्तिरूपी बिजली, देवों के आभूषणरूपी इन्द्रधनुष और देवों के हाथी रूपी काले बादलों से वर्षा ऋतु की शोभा धारण कर रहा था।।७३।।

इस प्रकार जब सब देव अपनी–अपनी देवियों सहित सवारियों और विमानों के साथ–साथ आ रहे थे तब खेद की बात थी कि स्वर्गलोक बहुत देर तक शून्य हो गया था।।७४।।

इस प्रकार उस समय समस्त आकाश को घेरकर आए हुए सुर और असुरों से यह जगत् ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो उत्पन्न होता हुआ कोई दूसरा दिव्य स्वर्ग ही हो।।७५।।

अथानन्तर जिसमें देवरूपी कारीगरों ने सैकड़ों प्रकार की उत्तम–उत्तम रचनाएँ की हैं ऐसा भगवान् वृषभदेव का समवसरण देवों ने दूर से ही देखा।।७६।।

द्विषड्योजनविस्तारमभू दास्थानमीशितुः। हरिनीलमहारत्नघटितं विलसत्तलम् ।।७७।।
सुरेन्द्रनीलनिर्माणं समवृत्तं तदा बभौ। त्रिजगच्छ्रीमुखालोकमङ्गलादर्शविभ्रमम् ।।७८।।
आस्थानमण्डलस्यास्य विन्यासं कोऽनुवर्णयेत। सुत्रामा सूत्रधारोऽभून्निर्माणे यस्य कर्मठः।।७९।।
तथाप्यनूद्यते किंचिदस्य शोभासमुच्चयः। श्रुतेन येन संप्रीतिं भजेद् भव्यात्मनां मनः।।८०।।
तस्य पर्यन्तभूभागमलंचक्रे स्फुरद्द्युतिः। धूलीसालपरिक्षेपो रत्नपांसुभिराचितः।।८१।।
धनुरैन्द्रमिवोद्भासिवलयाकृतिमुद्वहत् । सिषेवे तां महीं विष्वग्धूलीसालापदेशतः।।८२।।
कटीसूत्रश्रियं तन्वन् धूलीसालपरिच्छदः। परीयाय जिनस्थानभूमिं तां वलयाकृतिः।।८३।।
क्वचिदञ्जनपुञ्जाभः क्वचिच्चामीकरच्छविः। क्वचिद् विद्रुमसच्छायः सोऽद्युतद् रत्नपांसुभिः।।८४।।
क्वचिच्छुक च्छदच्छायैर्मणिपांसुभिरुच्छिखैः। स रेजे नलिनीबालपलाशैरिव सान्ततः।।८५।।
चन्द्रकान्तशिलाचूर्णैः क्वचिज्ज्योत्स्नाश्रियं दधत् । जनानामकरोच्चित्रमनुरक्ततरं मनः।।८६।।

जो बारह योजन विस्तार वाला है और जिसका तलभाग अतिशय देदीप्यमान हो रहा है ऐसा इन्द्रनील मणियों से बना हुआ वह भगवान् का समवसरण बहुत ही सुशोभित हो रहा था।।७७।।

इन्द्रनील मणियों से बना और चारों ओर से गोलाकार वह समवसरण ऐसा जान पड़ता था मानो तीन जगत् की लक्ष्मी के मुख देखने के लिए मंगलरूप एक दर्पण ही हो।।७८।।

जिस समवसरण के बनाने में सब कामों में समर्थ इन्द्र स्वयं सूत्रधार था ऐसे उस समवसरण की वास्तविक रचना का कौन वर्णन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं, फिर भी उसकी शोभा के समूह का कुछ थोड़ा सा वर्णन करता हूँ क्योंकि उसके सुनने से भव्य जीवों का मन प्रसन्नता को प्राप्त होता है।।७९–८०।।

उस समवसरण के बाहरी भाग में रत्नों की धूलि से बना हुआ एक धूलीसाल नामक घेरा था जिसकी कान्ति अतिशय देदीप्यमान थी और जो अपने समीप के भूभाग को अलंकृत कर रहा था।।८१।।

वह धूलीसाल ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो अतिशय देदीप्यमान और वलय (चूड़ी) का आकार धारण करता हुआ इन्द्रधनुष ही धूलीसाल के बहाने से उस समवसरण भूमि की सेवा कर रहा हो।।८२।।

कटिसूत्र शोभा को धारण करता हुआ और वलय के आकार का वह धूलीसाल का घेरा जिनेन्द्रदेव के उस समवसरण को चारों ओर से घेरे हुए था।।८३।।

अनेक प्रकार के रत्नों की धूलि से बना हुआ वह धूलीसाल कहीं तो अंजन के समूह के समान काला–काला सुशोभित हो रहा था, कहीं सुवर्ण के समान पीला–पीला लग रहा था और कहीं मूँगा की कान्ति के समान लाल–लाल भासमान हो रहा था।।८४।।

जिसकी किरणें ऊपर की ओर उठ रही हैं ऐसे, तोते के पंखों के समान हरित वर्ण की मणियों की धूलि से कहीं–कहीं व्याप्त हुआ वह धूलीसाल ऐसा अच्छा सुशोभित हो रहा था मानो कमलिनी के छोटे–छोटे नए पत्तों से ही व्याप्त हो रहा हो।।८५।।

वह कहीं–कहीं पर चन्द्रकान्तमणि के चूर्ण से बना हुआ था और चाँदनी की शोभा धारण कर रहा था फिर भी लोगों के चित्त को अनुरक्त अर्थात् लाल–लाल कर रहा था यह भारी आश्चर्य की बात थी (परिहार पक्ष में– अनुराग से युक्त कर रहा था)।।८६।।

स्फुरन्मरकताम्भोजरागालोकैः कलम्बितैः। क्वच्चिदिन्द्रधनुर्लेखां खाङ्गणे गणयन्निव।।८७।।
क्वचित्पयोजरागेन्द्रलीलालोकैः परिष्कृतः। परागसात्कृतैभर्त्रा कामक्रोधांशकैरिव।।८८।।
क्वचित्कव चित्तजन्मासौ लीनो जाल्मो विलोक्यताम्।
निर्दाह्योऽस्माभिरित्युच्चैर्ध्यानार्चिष्मानिवोत्थितः।।८९।।
विभाव्यते स्मयः प्रोच्चैर्ज्वलन् रौक्मै रजश्चयैः। यश्चोच्चावचरत्नांशुजालैर्जटिलयन्नभः।।९०।।
चतसृष्वपि दिक्ष्वस्य हेमस्तम्भाग्रलम्बिताः। तोरणा मकरास्योढरत्नमाला विरेजिरे।।९१।।
ततोऽन्तरन्तरं किंचिद् गत्वा हाटकनिर्मिताः। रेजुर्मध्येषु वीथीनां मानस्तम्भाः समुच्छ्रिताः।।९२।।
चतुर्गोपुरसंबद्धसालत्रितयवेष्टिताम् । जगतीं जगतीनाथस्नपनाम्बुपवित्रिताम् ।।९३।।
हैमषोडशसोपानां स्वमध्यार्पितपीठिकाम् । न्यस्तपुष्पोपहारार्चामर्च्यां नृसुरदानवैः।।९४।।
अधिष्ठिता विरेजुस्ते मानस्तम्भा नभोलिहः। ये दूराद्वीक्षिता मानं स्तम्भयन्त्याशु दुर्दृशाम् ।।९५।।
नभःस्पृशो महामाना घण्टाभिः परिवारिताः। सचामरध्वजा रेजुः स्तम्भास्ते दिग्गजायिताः।।९६।।

कहीं पर परस्पर में मिली हुई मरकतमणि और पद्मरागमणि की किरणों से वह ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशरूपी आँगन में इन्द्रधनुष की शोभा ही बढ़ा रहा हो।।८७।।

कहीं पर पद्मरागमणि और इन्द्रनीलमणि के प्रकाश से व्याप्त हुआ वह धूलीसाल ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के द्वारा चूर्ण किए गए काम और क्रोध के अंशों से ही बना हो।।८८।।

कहीं–कहीं पर सुवर्ण की धूलि के समूह से देदीप्यमान होता हुआ वह धूलीसाल ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो 'वह धूर्त कामदेव कहाँ छिपा है उसे देखो, वह हमारे द्वारा जलाए जाने के योग्य है' ऐसा विचार कर ऊँची उठी हुई अग्नि का समूह हो। इसके सिवाय वह छोटे–बड़े रत्नों की किरणावली से आकाश को भी व्याप्त कर रहा था।।८९–९०।।

इस धूलीसाल के बाहर चारों दिशाओं में सुवर्णमय खम्भों के अग्रभाग पर अवलम्बित चार तोरणद्वार सुशोभित हो रहे थे, उन तोरणों में मत्स्य के आकार बनाए गए थे और उन पर रत्नों की मालाएँ लटक रही थीं।।९१।।

उस धूलीसाल के भीतर कुछ दूर जाकर गलियों के बीचों–बीच में सुवर्ण के बने हुए और अतिशय ऊँचे मानस्तम्भ सुशोभित हो रहे थे। भावार्थ–चारों दिशाओं में एक–एक मानस्तम्भ था।।९२।।

जिस जगती पर मानस्तम्भ थे वह जगती चार–चार गोपुर द्वारों से युक्त तीन कोटों से घिरी हुई थी, उसके बीच में एक पीठिका थी। वह पीठिका तीनों लोकों के स्वामी जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के जल से पवित्र थी, उस पर चढ़ने के लिए सुवर्ण की सोलह सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, मनुष्य, देव–दानव आदि सभी उसकी पूजा करते थे और उस पर सदा पूजा के अर्थ पुष्पों का उपहार रखा रहता था, ऐसी उस पीठिका पर आकाश को स्पर्श करते हुए वे मानस्तम्भ सुशोभित हो रहे थे जो दूर से दिखाई देते ही मिथ्यादृष्टि जीवों का अभिमान बहुत शीघ्र नष्ट कर देते थे।।९३–९५।।

वे मानस्तम्भ आकाश का स्पर्श कर रहे थे, महाप्रमाण के धारक थे, घण्टाओं से घिरे हुए थे और चमर तथा ध्वजाओं से सहित थे इसलिए ठीक दिग्गजों के समान सुशोभित हो रहे थे क्योंकि दिग्गज भी आकाश का स्पर्श करने वाले, महाप्रमाण के धारक, घण्टाओं से युक्त तथा चमर और ध्वजाओं से सहित होते हैं।।९६।।

दिक्चतुष्टयमाश्रित्य रेजे स्तम्भचतुष्टयम् । तत्तद्वयाजादिवोद्भूतं जिनानन्तचतुष्टयम् ।।९७।।
हिरण्मयीर्जिनेन्द्राच्र्यास्तेषां बुध्नप्रतिष्ठिताः। देवेन्द्राः पूजयन्ति स्म क्षीरोदाम्भोऽभिषेचनैः।।९८।।
नित्यातोद्य महावाद्यैर्नित्यसंगीतमङ्गलैः। नृत्तैर्नित्यप्रवृत्तैश्च मानस्तम्भाःस्म भान्त्यमी।।९९।।
पीठिका जगतीमध्ये तन्मध्ये च त्रिमेखलम् । पीठं तन्मूर्ध्नि सद्बुध्ना मानस्तम्भा प्रतिष्ठिताः।।१००।।
हिरण्मयाङ्गाः प्रोत्तुङ्गा मूर्ध्निच्छत्रत्रयाङ्किताः।। सुरेन्द्रनिर्मितत्वाच्च प्राप्तेन्द्र ध्वजरूढिकाः।।१०१।।
मानस्तम्भान्महामान योगात्त्रैलोक्यमाननात् । अन्वर्थसञ्ज्ञया तज्ज्ञैर्मानस्तम्भाः प्रकीर्तिताः।।१०२।।
स्तम्भपर्यन्तभूभागमलंचक्रुः सहोत्पलाः। प्रसन्नसलिला वाप्यो भव्यानामिव शुद्धयः।।१०३।।
वाप्यस्ता रेजिरे फुल्लकमलोत्पलसंपदः। भक्त्या जैनीं श्रियं द्रष्टुं भुवेवोद्घाटितादृशः।।१०४।।
निलीनालिकुलै रेजुरुत्पलैस्ता विकस्वरैः। महोत्पलैश्च संछन्नाः साञ्जनैरिव लोचनैः।।१०५।।
दिशं प्रति चतस्रस्ता स्रस्ताः काञ्चीरिवाकुलाः। दधति स्म शकुन्तानां सन्ततीः स्वतटाश्रिताः।।१०६।।

चार मानस्तम्भ चार दिशाओं में सुशोभित हो रहे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो उन मानस्तम्भों के छल से भगवान् के अनन्तचतुष्टय ही प्रकट हुए हों।।९७।।

उन मानस्तम्भों के मूल भाग में जिनेन्द्र भगवान् की सुवर्णमय प्रतिमाएँ विराजमान थीं जिनकी इन्द्र लोग क्षीरसागर के जल से अभिषेक करते हुए पूजा करते थे।।९८।।

वे मानस्तम्भ निरन्तर बजते हुए बड़े–बड़े बाजों से निरन्तर होने वाले मङ्गलमय गानों और निरन्तर प्रवृत्त होने वाले नृत्यों से सदा सुशोभित रहते थे।।९९।।

ऊपर जगती के बीच में जिस पीठिका का वर्णन किया जा चुका है उसके मध्य भाग में तीन कटनीदार एक पीठ था। उस पीठ के अग्रभाग पर ही वे मानस्तम्भ प्रतिष्ठित थे, उनका मूल भाग बहुत ही सुन्दर था, वे सुवर्ण के बने हुए थे, बहुत ऊँचे थे, उनके मस्तक पर तीन छत्र फिर रहे थे, इन्द्र के द्वारा बनाए जाने के कारण उनका दूसरा नाम 'इन्द्रध्वज' भी रूढ़ हो गया था। उनके देखने से मिथ्यादृष्टि जीवों का सब मान नष्ट हो जाता था, उनका परिमाण बहुत ऊँचा था और तीन लोक के जीव उनका सम्मान करते थे इसलिए विद्वान् लोग उन्हें सार्थक नाम से मानस्तम्भ कहते थे।।१००–१०२।।

जो अनेक प्रकार के कमलों से सहित थीं, जिनमें स्वच्छ जल भरा हुआ था और जो भव्य जीवों की विशुद्धता के समान जान पड़ती थीं ऐसी बाबड़ियाँ उन मानस्तम्भों के समीपवर्ती भूभाग को अलंकृत कर रही थीं।।१०३।।

जो फूले हुए सफेद और नीले कमलरूपी सम्पदा से सहित थीं ऐसी वे बावड़ियाँ इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं मानो भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेव की लक्ष्मी को देखने के लिए पृथ्वी ने अपने नेत्र ही उघाड़े हों।।१०४।।

जिन पर भ्रमरों का समूह बैठा हुआ है ऐसे फूले हुए नीले और सफेद कमलों से ढँकी हुई वे बावड़ियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो अंजनसहित काले और सफेद नेत्रों से ही ढँक रही हों।।१०५।।

वे बावड़ियाँ एक–एक दिशा में चार–चार थीं और उनके किनारे पर पक्षियों की शब्द करती हुई पंक्तियाँ बैठी हुई थीं जिनसे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो उन्होंने शब्द करती हुई **ढीली** करधनी ही धारण की हो।।१०६।।

बभुस्ता मणिसोपानाः स्फटिकोच्चतटीभुवः। भुवः प्रसृतलावण्यरसाः कुल्या इव श्रुताः।।१०७।।
द्विरेफगुञ्जनैर्मञ्जु गायन्त्यो वार्हतो गुणान् । नृत्यन्त इव जैनेशजयतोषान्महोर्मिभिः।।१०८।।
कुर्वन्त्यो वा जिनस्तोत्रं चक्रवाकविकूजितैः। संतोषं दर्शयन्त्यो वा प्रसन्नोदकधारणात् ।।१०९।।
नन्दोत्तरादिनामानः सरस्यस्तास्तटश्रितैः। पादप्रक्षालनाकुण्डैः बभुः सप्रसवा इव।।११०।।
स्तोकान्तरं ततोऽतीत्य तां महीमम्बुजैश्चिता । परिवव्रेऽन्तरा वीथीं वीथीं च जलखातिका।।१११।।
स्वच्छाम्बुसंभृता रेजे सा खाता पावनी नृणाम् । सुरापगेव तद्रूपा विभुं सेवितुमाश्रिता।।११२।।
सक्रान्ताशेषतारर्क्षप्रतिबिम्बाम्बरश्रियम् । याधात्स्फटिकसन्द्रा वशुचिभिः सलिलैर्भृशा।।११३।।
सा स्म रत्नतटैर्धत्ते पक्षिमालां कलस्वनाम् । तरङ्गकरसंधाया रसनामिव सद्रुचिम् ।।११४।।
यादोदोर्घट्टनोद्भूतैस्तरङ्गैः पवनाहतैः। प्रनृत्यन्तीव सा रेजे तोषाज्जिनजयोत्सवे।।११५।।
वीच्यन्तवलितोद्वृत्तशफरीकुलसंकुला। सा प्रायोऽभ्यस्यमानेव नाकस्त्रीनेत्रविभ्रमान्।।११६।।

उन बावड़ियों में मणियों की सीढ़ियाँ लगी हुई थीं, उनके किनारे की ऊँची उठी हुई जमीन स्फटिकमणि की बनी हुई थीं और उनमें पृथ्वी से निकलता हुआ लावण्यरूपी जल भरा हुआ था, इस प्रकार वे प्रसिद्ध बावड़ियाँ कृत्रिम नदी के समान सुशोभित हो रही थीं।।१०७।।

वे बावड़ियाँ भ्रमरों की गुंजार से ऐसी जान पड़ती थीं मानो अच्छी तरह से अरहन्त भगवान् के गुण ही गा रही हों, उठती हुई बड़ी–बड़ी लहरों से ऐसी जान पड़ती थीं मानो जिनेन्द्र भगवान् की विजय से सन्तुष्ट होकर नृत्य ही कर रही हों, चकवा–चकवियों के शब्दों से ऐसी जान पड़ती थीं मानो जिनेन्द्र देव का स्तवन ही कर रही हों, स्वच्छ जल धारण करने से ऐसी जान पड़ती थीं मानो संतोष ही प्रकट कर रही हों, और किनारे पर बने हुए पाँव धोने के कुण्डों से ऐसी जान पड़ती थीं मानो अपने–अपने पुत्रों से सहित ही हों, इस प्रकार नन्दोत्तरा आदि नामों को धारण करने वाली वे बावड़ियाँ बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थीं।।१०८–११०।।

उन बावड़ियों से थोड़ी ही दूर आगे जाने पर प्रत्येक वीथी (गली) को छोड़कर जल से भरी हुई एक परिखा थी जो कि कमलों से व्याप्त थी और समवसरण की भूमि को चारों ओर से घेरे हुए थी।।१११।।

स्वच्छ जल से भरी हुई और मनुष्यों को पवित्र करने वाली वह परिखा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो परिखा का रूप धरकर आकाशगंगा ही भगवान् की सेवा करने के लिए आयी हो।।११२।।

वह परिखा स्फटिकमणि के **निष्यन्द** के समान स्वच्छ जल से भरी हुई थी और उसमें समस्त तारा तथा नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, इसलिए वह आकाश की शोभा धारण कर रही थी।।११३।।

वह परिखा अपने रत्नमयी किनारों पर मधुर शब्द करती हुई पक्षियों की माला धारण कर रही थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो लहरों रूपी हाथों से पकड़ने योग्य, उत्तम कान्तिवाली करधनी ही धारण कर रही हो।।११४।।

जलचर जीवों की भुजाओं के संघट्टन से उठी हुई और वायु द्वारा ताड़ित हुई लहरों से वह परिखा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जिनेन्द्र भगवान् के विजयोत्सव में सन्तोष से नृत्य कर रही हो।।११५।।

लहरों के भीतर घूमते–घूमते जब कभी ऊपर प्रकट होने वाली मछलियों के समूह से भरी हुई वह पारिखा ऐसी जान पड़ती थी मानो देवांगनाओं के नेत्रों के विलासों (कटाक्षों) का अभ्यास ही कर रही हो।।११६।।

नूनं सुराङ्गनानेत्रविलासैस्ताः पराजिताः। शफर्यो वीचिमालासु ह्रियेवान्तर्दधुर्मुहुः।।११७।।
तदभ्यन्तरभूभागं पर्यष्कृत लतावनम्। वल्लीगुल्मद्रुमोद्भूतसर्वर्तुकुसुमाचितम्।।११८।।
पुष्पवल्ल्यो व्यराजन्त यत्र पुष्पस्मितोज्ज्वलाः। स्मितलीलां द्युनारीणां नाट्यन्त्य इव स्फुटम् ।।११९।।
भ्रमरैर्मञ्जुगुञ्जद्भिरावृतान्ता विरेजिरे। यत्रानिलपटच्छन्नविग्रहा इव वीरुधः।।१२०।।
अशोकलतिका यत्र दधुरताम्रपल्लवान्। स्पर्धमाना इवाताम्रैरप्सरःकरपल्लवैः।।१२१।।
यत्र मन्दानिलोद्धूत किञ्जल्का स्तरमम्बरम्। धत्ते स्म पटवासाभां पिञ्जरीकृतदिङ्मुखाम्।।१२२।।
प्रतिप्रसवमासीनमञ्जुगुञ्जन्मधुव्रतम्। विडम्बयदिवाभाति यत्सहस्राक्षविभ्रमम्।।१२३।।
सुमनोमञ्जरीपुञ्जात् किञ्जल्कं सान्द्रमाहरन्। यत्र गन्धवहो मन्दं वाति स्मान्दोलयँल्लताः।।१२४।।
यत्र क्रीढादयो रम्याः सशय्याश्च लतालयाः। धृतये स्म सुरस्त्रीणां कल्पन्ते शिशिरानिलाः।।१२५।।
वल्लीः कुसुमिता यत्र स्पृशन्ति स्म मधुव्रताः। रजस्वला अपि प्रायः क्व शौचं मधु पायिनाम् ।।१२६।।

जो मछलियाँ उस परिखा की लहरों के बीच में बार-बार डूब रही थीं वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो देवांगनाओं के नेत्रों के विलासों से पराजित होकर ही लज्जावश लहरों में छिप रही थीं।।११७।।

उस परिखा के भीतरी भू-भाग को एक लतावन घेरे हुए था, वह लतावन लताओं; छोटी-छोटी झाड़ियों और वृक्षों में उत्पन्न हुए सब ऋतुओं के फूलों से सुशोभित हो रहा था।।११८।।

उस लतावन में पुष्परूपी हास्य से उज्ज्वल अनेक पुष्पलताएँ सुशोभित हो रही थीं जो कि स्पष्ट रूप से ऐसी जान पड़ती थीं मानो देवांगनाओं के मन्द हास्य का अनुकरण ही कर रही हों।।११९।।

मनोहर गुंजार करते हुए भ्रमरों से जिनका अन्त भाग ढका हुआ है ऐसी उस वन की लताएँ इस भाँति सुशोभित हो रही थीं मानो उन्होंने अपना शरीर नील वस्त्र से ही ढक लिया हो।।१२०।।

उस लतावन की अशोक लताएँ लाल-लाल नए पत्ते धारण कर रही थीं और उनसे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो अप्सराओं के लाल-लाल हाथरूपी पल्लवों के साथ स्पर्द्धा ही कर रही हों।।१२१।।

मन्द-मन्द वायु के द्वारा उड़ी हुई केशर से व्याप्त हुआ और जिसने समस्त दिशाएँ पीली-पीली कर दी है ऐसा वहाँ का आकाश सुगन्धित चूर्ण (अथवा चँदोवे) की शोभा धारण कर रहा था।।१२२।।

उस लतावन में प्रत्येक फूल पर मधुर शब्द करते हुए भ्रमर बैठे हुए थे जिनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो हजार नेत्रों को धारण करने वाले इन्द्र के विलास की विडम्बना ही कर रहा हो।।१२३।।

फूलों की मंजरियों के समूह से सघन पराग को ग्रहण करता हुआ और लताओं को हिलाता हुआ वायु उस लतावन में धीरे-धीरे बह रहा था।।१२४।।

उस लतावन में बने हुए मनोहर क्रीड़ा पर्वत, शय्याओं से सुशोभित लतागृह और ठण्डी-ठण्डी हवा देवांगनाओं को बहुत ही सन्तोष पहुँचाती थी।।१२५।।

उस वन में अनेक कुसुमित अर्थात् फूली हुई और रजस्वला अर्थात् पराग से भरी हुई लताओं का मधुव्रत अर्थात् भ्रमर स्पर्श कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि मधुपायी अर्थात् मद्य पीने वालों के पवित्रता कहाँ हो सकती है।

भावार्थ—जिस प्रकार **मधु** (मदिरा) पान करने वाले पुरुषों के पवित्र और अपवित्र का कुछ भी विचार नहीं रहता, वे रजोधर्म से युक्त ऋतुमती स्त्री का भी स्पर्श करने लगते हैं, इसी प्रकार मधु (पुष्परस) का पान

लताभवनमध्यस्था हिमानीस्पर्शशीतलाः। चन्द्रकान्तशिला यत्र विश्रमायामरेशिनाम् ।।१२७।।
ततोऽध्वानमतीत्यान्तः कियन्तमपि तां महीम् । प्रकारः प्रथमो वब्रे निषधाभो हिरण्मयः।।१२८।।
रुरुचेऽसौ महान् सालः क्षितिं तां परितः स्थितः। यथाऽसौ चक्रवा लाद्रिर्नृलोकाध्युषितां भुवम् ।।१२९।।
नूनं सालनिभेनैत्य सुरचापपरःशतम् । तामलंकुरुते स्म क्ष्मां पिञ्जरीकृतखाङ्गणम् ।।१३०।।
यस्योपरितले लग्ना सुव्यक्ता मौक्तिकावली। तारातातिरियं किंस्विदित्याशङ्कास्पदं नृणाम् ।।१३१।।
क्वचिद्विद्रुम संघातः पद्मरागांशुरञ्जितः। यस्मिन् सांध्यघनच्छायमाविष्कर्तुमलंतराम् ।।१३२।।
क्वचिन्नवध नच्छायः क्वचिच्छाड्वलसच्छविः। क्वचिच्च सुरगोपाभो विद्युदापिञ्जरः क्वचित् ।।१३३।।
क्वचिद्विचित्ररत्नांशुरचितेन्द्रशरासनः। घनकालस्य वैदग्धीं स सालोऽलं व्यडम्बयत् ।।१३४।।
क्वचिद् द्विपहरिव्याघ्ररूपैर्मिथुनवृत्तिभिः। निचितः क्वचिदुद्देशे शुकैर्हंसैश्च बर्हिणैः।।१३५।।
विचित्ररत्ननिर्माणैर्मनुष्यमिथुनैः क्वचित् । क्वचिच्च कल्पवल्लीभिर्बहिरन्तश्च चित्रितः।।१३६।।

करने वाले उन भ्रमरों के भी पवित्र अपवित्र का कुछ भी विचार नहीं था, क्योंकि वे ऊपर कही हुई कुसुमित और रजस्वला लतारूपी स्त्रियों का स्पर्श कर रहे थे। यथार्थ में कुसुमित और रजस्वला लताएँ अपवित्र नहीं होतीं। यहाँ कवि ने श्लेष और समासोक्ति अलंकार की प्रधानता से ही ऐसा वर्णन किया है।।१२६।।

उस वन के लतागृहों के बीच में पड़ी हुई बर्फ के समान शीतल स्पर्श वाली चन्द्रकान्तमणि की शिलाएँ इन्द्रों के विश्राम के लिए हुआ करती थीं।।१२७।।

उस लतावन के भीतर की ओर कुछ मार्ग उल्लंघन कर निषध पर्वत के आकार का सुवर्णमय पहला कोट था जो कि उस समवसरण भूमि को चारों ओर से घेरे हुए था।।१२८।।

उस समवसरण भूमि के चारों ओर स्थित रहने वाला वह कोट ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मनुष्य लोक की भूमि के चारों ओर स्थित हुआ मानुषोत्तर पर्वत ही हो।।१२९।।

उस कोट को देखकर ऐसा मालूम होता था मानो आकाशरूपी आँगन को चित्र–विचित्र करने वाला सैकड़ों इन्द्रधनुषों का समूह ही कोट के बहाने से आकर उस समवसरण भूमि को अलंकृत कर रहा हो।।१३०।।

उस कोट के ऊपरी भाग पर स्पष्ट दिखाई देते हुए जो मोतियों के समूह जड़े हुए थे वे क्या यह ताराओं का समूह है, इस प्रकार लोगों की शंका के स्थान हो रहे थे।।१३१।।

उस कोट में कहीं–कहीं जो मूँगाओं के समूह लगे हुए थे वे पद्मरागमणियों की किरणों से और भी अधिक लाल हो गए थे और सन्ध्याकाल के बादलों की शोभा प्रकट करने के लिए समर्थ हो रहे थे।।१३२।।

वह कोट कहीं तो नवीन मेघ के समान काला था, कहीं घास के समान हरा था, कहीं इन्द्रगोप के समान लाल–लाल था, कहीं बिजली के समान पीला–पीला था और कहीं अनेक प्रकार के रत्नों की किरणों से इन्द्रधनुष की शोभा उत्पन्न कर रहा था। इस प्रकार वह वर्षा काल की शोभा की विडम्बना कर रहा था।।१३३–१३४।।

वह कोट कहीं तो युगल रूप से बने हुए हाथी–घोड़े ओर व्याघ्रों के आकार से व्याप्त हो रहा था, कहीं तोते, हंस और मयूरों के जोड़ों से उद्भासित हो रहा था, कहीं अनेक प्रकार के रत्नों से बने हुए मनुष्य और स्त्रियों के जोड़ों से सुशोभित हो रहा था, कहीं भीतर और बाहर की ओर बनी हुई कल्पलताओं से चित्रित हो रहा था, कहीं

हसन्निवोन्मिशद्रत्नमयूखनिवहैः क्वचित् । क्वचित्सिंहरवान् कुर्वन्निवोत्सर्पत्प्रतिध्वनिः।।१३७।।
दीप्राकारः स्फुरद्रत्नरुचिरा रुद्धखाङ्गणः। निषधाद्रिप्रतिस्पर्धी स सालो व्यरुचत्तराम् ।।१३८।।
महान्ति गोपुराण्यस्य विबभुर्दिक्चतुष्टये। राजतानि खगेन्द्राद्रेः शृङ्गाणीव स्पृशन्ति खम् ।।१३९।।
ज्योत्सनं मन्यानि तान्युच्चैस्त्रिभूमानि चकासिरे। प्रहासमिव तन्वन्ति निर्जित्य त्रिजगच्छ्रियम् ।।१४०।।
पद्मरागमयैरुच्चैः शिखरैर्व्योमलङ्घिभिः। दिशः पल्लवयन्तीव प्रसरैः शोणरोचिषाम् ।।१४१।।
जगद्गुरोर्गुणानत्र गायन्ति सुरगायनाः। केचिच्छृणवन्ति नृत्यन्ति केचि दाविर्भवत्स्मिताः।।१४२।।
शतमष्टोत्तरं तेषु मङ्गलद्रव्यसंपदः। भृङ्गारकलशाब्दाद्याः प्रत्येकं गोपुरेष्वभान् ।।१४३।।
रत्नाभरणभाभारपरिपिञ्जरिताम्बराः। प्रत्येकं तोरणास्तेषु शतसङ्ख्या बभासिरे।।१४४।।
स्वभावभास्वरे भर्तुर्देहे स्वानवकाशताम्। मत्वेवाभरणान्यास्थुरुद्बद्धान्यनुतोरणम्।।१४५।।
निधयो नवशङ्खाद्यास्तद्द्वारोपान्तसेविनः। शशंसुः प्राभ वं जैनं भुवनत्रितयातिगम्।।१४६।।

पर चमकते हुए रत्नों की किरणों से हँसता हुआ सा जान पड़ता था और कहीं पर फैलती हुई प्रतिध्वनि से सिंहनाद करता हुआ–सा जान पड़ता था।।१३५–१३७।।

जिसका आकार बहुत ही देदीप्यमान है, जिसने अपने चमकीले रत्नों की किरणों से आकाशरूपी आँगन को घेर लिया है और जो निषध कुलाचल के साथ ईर्ष्या करने वाला है ऐसा वह कोट बहुत ही अधिक शोभायमान हो रहा था।।१३८।।

उस कोट के चारों दिशाओं में चाँदी के बने हुए चार बड़े–बड़े गोपुर द्वार सुशोभित हो रहे थे जो कि विजयार्ध पर्वत के शिखरों के समान आकाश का स्पर्श कर रहे थे।।१३९।।

चाँदनी के समूह के समान निर्मल, ऊँचे और तीन–तीन खण्ड वाले वे गोपुरद्वार ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो तीनों लोकों की शोभा को जीतकर हँस ही रही हों।।१४०।।

वे गोपुरद्वार पद्मरागमणि के बने हुए और आकाश को उल्लंघन करने वाले शिखरों से सहित थे तथा अपनी फैलती हुई लाल–लाल किरणों के समूह से ऐसे जान पड़ते थे मानो दिशाओं को नए–नए कोमल पत्तों से युक्त ही कर रहे हों।।१४१।।

इन गोपुर दरवाजों पर कितने ही गाने वाले देव जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव के गुण गा रहे थे, कितने ही उन्हें सुन रहे थे और कितने ही मन्द–मन्द मुस्काते हुए नृत्य कर रहे थे।।१४२।।

उन गोपुर–दरवाजों में से प्रत्येक दरवाजे पर भृंगार कलश और दर्पण आदि एक सौ आठ मङ्गलद्रव्यरूपी सम्पदाएँ सुशोभित हो रही थीं।।१४३।।

तथा प्रत्येक दरवाजे पर रत्नमय आभूषणों की कान्ति के भार से आकाश को अनेक वर्णका करने वाले सौ–सौ तोरण शोभायमान हो रहे थे।।१४४।।

उन प्रत्येक तोरणों में जो आभूषण बँधे हुए थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो स्वभाव से ही सुन्दर भगवान् के शरीर में अपने लिए अवकाश न देखकर उन तोरणों में ही आकर बँध गए हों।।१४५।।

उन गोपुरद्वारों के समीप प्रदेशों में जो शंख आदि नौ निधियाँ रखी हुई थीं वे जिनेन्द्र भगवान् के तीनों लोकों को उल्लंघन करने वाले भारी प्रभाव को सूचित कर रही थीं।।१४६।।

त्रिजगत्प्रभुणा नूनं विमोहेनावधीरिताः। वहिर्द्वारं स्थिता दूरान्निधयस्तं सिषेविरे।।१४७।।
तेषामन्तर्महावीथ्या उभयोर्भागयोरभूत्। नाट्यशालाद्वयं दिक्षु प्रत्येकं चतसृष्वपि।।१४८।।
तिसृभिर्भूमिभिर्नाट्यमण्डपौ तौ विरेजतुः। विमुक्तेस्त्र्यात्मकं मार्गं नृणां वस्तुमिवोद्यतौ।।१४९।।
हिरण्मयमहास्तम्भौ शुम्भस्फटिकभित्तिकौ। तौ रत्नशिखरारुद्धनभोभागौ विरेजतुः।।१५०।।
नाट्यमण्डपरङ्गेषु नृत्यन्ति स्मामरस्त्रियः। शत ह्रदा इवामग्नमूर्तयः स्वप्रभाह्रदे।।१५१।।
गायन्ति जिनराजस्य विजयं ताः स्म सस्मिताः। तमेवाभिनयन्त्योऽमूः चिक्षिपुः पौष्पमञ्जलिम्।।१५२।।
समं वीणानिनादेन मृदङ्गध्वनिरुच्चरन्। व्यतनोत् प्रावृडारम्भशङ्कां तत्र शिखण्डिनाम् ।।१५३।।
शरदभ्रनिभे तस्मिन् द्वितये नाट्यशालयोः। विद्युद्विलासमातेनुर्नृत्यन्त्यः सुरयोषितः।।१५४।।
किन्नराणां कलक्वाणैः सोद्गानैरुपवीणितैः। तत्रासक्तिं परां भेजुः प्रेक्षिणां चित्तवृत्तयः।।१५५।।
ततो धूपघटौ द्वौ द्वौ वीथीनामुभयोर्दिशोः। धूपधूमैर्न्यरुन्धातां प्रसरद्भिर्नभोङ्गणम् ।।१५६।।

अथवा दरवाजे के बाहर रखी हुई वे निधियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानो मोहरहित, तीनों लोकों के स्वामी भगवान् जिनेन्द्रदेव ने उनका तिरस्कार कर दिया था इसलिए दरवाजे के बाहर स्थित होकर दूर से ही उनकी सेवा कर रही हों।।१४७।।

उन गोपुर दरवाजों के भीतर जो बड़ा भारी रास्ता था उसके दोनों ओर दो नाट्यशालाएँ थीं, इस प्रकार चारों दिशाओं के प्रत्येक गोपुरद्वार में दो–दो नाट्यशालाएँ थीं।।१४८।।

वे दोनों ही नाट्यशालाएँ तीन–तीन खण्ड की थीं और उनसे ऐसी जान पड़ती थीं मानो लोगों के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के भेद से तीन भेद वाला मोक्ष का मार्ग ही बतलाने के लिए तैयार खड़ी हों।।१४९।।

जिनके बड़े–बड़े खम्भे सुवर्ण के बने हुए हैं, जिनकी दीवालें देदीप्यमान स्फटिकमणि की बनी हुई हैं और जिन्होंने अपने रत्नों के बने हुए शिखरों से आकाश के प्रदेश को व्याप्त कर लिया है ऐसी वे दोनों नाट्यशालाएँ बहुत ही अधिक सुशोभित हो रही थीं।।१५०।।

उन नाट्यशालाओं की रङ्गभूमि में ऐसी अनेक देवांङ्गनाएँ नृत्य कर रही थीं, जिनके शरीर अपनी कान्तिरूपी सरोवर में डूबे हुए थे और जिससे वे बिजली के समान सुशोभित हो रही थीं।।१५१।।

उन नाट्यशालाओं में इकट्ठी हुई वे देवांगनाएँ जिनेन्द्रदेव की विजय के गीत गा रही थीं और उसी विजय का अभिनय करती हुई पुष्पाञ्जलि छोड़ रही थीं।।१५२।।

उन नाट्यशालाओं में वीणा की आवाज के साथ–साथ जो मृदंग की आवाज उठ रही थी वह मयूरों को वर्षाऋतु के प्रारम्भ होने की शंका उत्पन्न कर रही थीं।।१५३।।

वे दोनों ही नाट्यशालाएँ शरद्ऋतु के बादलों के समान सफेद थीं इसलिए उनमें नृत्य करती हुई वे देवाङ्गनाएँ ठीक बिजली की शोभा फैला रही थीं।।१५४।।

उन नाट्यशालाओं में किन्नर जाति के देव उत्तम संगीत के साथ–साथ मधुर शब्दों वाली वीणा बजा रहे थे जिससे देखने वालों की चित्तवृत्तियाँ उनमें अतिशय आसक्ति को प्राप्त हो रही थीं।।१५५।।

उन नाट्यशालाओं से कुछ आगे चलकर गलियों के दोनों ओर दो–दो धूपघट रखे हुए थे जो कि फैलते हुए धूप के धुएँ से आकाश रूप आँगन को व्याप्त कर रहे थे।।१५६।।

तद्धूपधूमसंरुद्धं नभो वीक्ष्य नभोजुषः। प्रावृट्पयोधराशङ्कामकालेऽपि व्यतानिषुः।।१५७।।
दिशः सुरभयन्धूपो मन्दानिलवशोत्थितः। स रेजे पृथिवीदेव्या मुखामोद इवोच्छ्वसन् ।।१५८।।
तदामोदं समाघ्राय श्रेणयो मधुलेहिनाम्। दिशां मुखेषु वितता वितेनुरलकश्रियम् ।।१५९।।
इतो धूपघटामोदमितश्च सुरयोषिताम्। सुगन्धिमुखनिः श्वासमलिनो जघ्रुराकुलाः।।१६०।।
मन्द्रध्वानैर्मृदङ्गानां स्तनयित्नु विडम्बिभिः। पतन्त्या पुष्पवृष्ट्या च सदात्रासीद् घनागमः।।१६१।।
तत्र वीथ्यन्तरेष्वासंश्चतस्रो वनवीथयः। नन्दनाद्या वनश्रेण्यो विभुं द्रष्टुमिवागताः।।१६२।।
अशोकसप्तपर्णाह्वचम्पकाम्रमहीरुहाम्। वनानि तान्यधुस्तोषादिवोच्चैः कुसुमस्मितम् ।।१६३।।
वनानि तरुभिश्चित्रैः फलपुष्पोपशोभिभिः। जिनस्यार्घ्यमिवोत्क्षिप्य तस्थुस्तानि जगद्गुरोः।।१६४।।
वनेषु तरवस्तेषु रेजिरे पवनाहतैः। शाखाकरैर्मुहुर्नृत्यं तन्वाना इव संमदात् ।।१६५।।
सच्छायाः सफलास्तुङ्गा जननिर्वृतिहेतवः। सुराजान इवाभूवंस्ते द्रुमाः सुखशीतलाः।।१६६।।

उन धूपघटों के धुएँ से भरे हुए आकाश को देखकर आकाश में चलने वाले देव अथवा विद्याधर असमय में ही वर्षाऋतु के मेघों की आशंका करने लगे थे।।१५७।।

मन्द–मन्द वायु के वश से उड़ा हुआ और दिशाओं को सुगन्धित करता हुआ वह धूप ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो उच्छ्वास लेने से प्रकट हुई पृथ्वी देवी के मुख की सुगन्धि ही हो।।१५८।।

उस धूप की सुगन्धि को सूँघकर सब ओर फैली हुई भ्रमरों की पङ्क्तियाँ दिशा रूपी स्त्रियों के मुख पर फैले हुए केशों की शोभा बढ़ा रहे थे।१५९।।

एक ओर उन धूपघटों से सुगन्धि निकल रही थी और दूसरी ओर देवांगनाओं के मुख से सुगन्धित निश्वास निकल रहा था सो व्याकुल हुए भ्रमर दोनों को सूँघ रहे थे।।१६०।।

वहाँ पर मेघों की गर्जना को जीतने वाले मृदंगों के शब्दों से तथा पड़ती हुई पुष्पवृष्टि से सदा वर्षाकाल विद्यमान रहता था।।१६१।।

धूपघटों से कुछ आगे चलकर मुख्य गलियों के बगल में चार–चार वन की वीथियाँ थीं जो कि ऐसी जान पड़ती थीं मानो नन्दन आदि वनों की श्रेणियाँ ही भगवान् के दर्शन करने के लिए आयी हों।।१६२।।

वे चारों वन अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम के वृक्षों के थे, उन सब पर फूल खिले हुए थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सन्तोष से हँस ही रहे हों।।१६३।।

फल और फूलों से सुशोभित अनेक प्रकार के वृक्षों से वन ऐसे जान पड़ते थे मानो जगद्गुरु जिनेन्द्रदेव के लिए अर्घ लेकर ही खड़े हों।।१६४।।

उन वनों में जो वृक्ष थे वे पवन से हिलती हुई शाखाओं से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों हर्ष से हाथ हिला–हिलाकर बार–बार नृत्य ही कर रहे हों।।१६५।।

अथवा वे वृक्ष, उत्तम छाया से सहित थे, अनेक फलों से युक्त थे, तुंग अर्थात् ऊँचे थे, मनुष्यों के सन्तोष के कारण थे, सुख देने वाले और शीतल थे इसलिए किन्हीं उत्तम राजाओं के समान जान पड़ते थे क्योंकि उत्तम राजा भी उत्तम छाया अर्थात् आश्रय से सहित होते हैं, अनेक फलों से युक्त होते हैं, तुंग अर्थात् उदारहृदय होते हैं, मनुष्यों के सुख के कारण होते हैं और सुख देने वाले तथा शान्त होते हैं।।१६६।।

पुष्पामोदसमाहूतैः मिलितैरलिनां कुलैः। गायन्त इव गुञ्जद्भिर्जिनं रेजुर्वनद्रुमाः।।१६७।।
क्वचिद्विरलमुन्मुक्तकुसुमास्ते महीरुहाः। पुष्पोपहारमातेनुरिव भक्त्या जगद्गुरोः।।१६८।।
क्वचिद्विरुवतां ध्वानैरलिनां मदमञ्जुभिः। मदनं तर्जयन्तीव वनान्यासन् समन्ततः।।१६९।।
पुंस्कोकिलकलक्वाणैराह्वयन्तीव सेवितुम्। जिनेन्द्रममराधीशान् वनानि विबभुस्तराम् ।।१७०।।
पुष्परेणुभिराकीर्णा वनस्याधस्तले मही। सुवर्णरजसास्तीर्णतलेवासीन्मनोहरा।।१७१।।
इत्यमूनि वनान्यासन्नतिरम्याणि पादपैः। यत्र पुष्पमयी वृष्टिर्नुर्तुपर्यायमैक्षत।।१७२।।
न रात्रिर्न दिवा तत्र तरुभिर्भास्वरैर्भृशम्। तरुशैत्यादिवाबिभ्यत्संजहार करान् रविः।।१७३।।
अन्तर्वणं क्वचिद्वाप्यस्त्रिकोणचतुरस्त्रिकाः। स्नातोत्तीर्णामरस्त्रीणां स्तनकुङ्कुमपिञ्जराः।।१७४।।
पुष्करिण्यः क्वचिच्चासन् क्वचिच्च कृतकाद्रयः। क्वचिद्रम्याणि हर्म्याणि क्वचिदाक्रीडमण्डपाः।।१७५।।
क्वचित्प्रेक्षागृहाण्यासन् चित्रशालाः कवचित्क्वचित्। एकशाला द्विशालाद्या महाप्रासादपङ्क्तयः।।१७६।।

फूलों की सुगन्धि से बुलाए हुए और इसीलिए आकर इकट्ठे हुए तथा मधुर गुंजार करते हुए भ्रमरों के समूह से वे वृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनेन्द्रदेव का गुणगान ही कर रहे हों।।१६७।।

कहीं–कहीं विरल रूप से वे वृक्ष ऊपर से फूल छोड़ रहे थे जिनसे ऐसे मालूम होते थे मानो जगद्गुरु भगवान् के लिए भक्तिपूर्वक फूलों की भेंट ही कर रहे हों।।१६८।।

कहीं–कहीं पर मधुर शब्द करते हुए भ्रमरों के मद–मनोहर शब्दों से ये वन ऐसे जान पड़ते थे मानो चारों ओर से कामदेव की तर्जना ही कर रहे हों।।१६९।।

उन वनों में कोयलों के जो मधुर शब्द हो रहे थे उनसे वे वन ऐसे अच्छे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करने के लिए इन्द्रों को ही बुला रहे हों।।१७०।।

उन वनों में वृक्षों के नीचे की पृथ्वी फूलों के पराग से ढकी हुई थी जिससे वह ऐसी मनोहर जान पड़ती थी मानो उसका तलभाग सुवर्ण की धूलि से ही ढक रहा हो।।१७१।।

इस प्रकार वे वन वृक्षों से बहुत ही रमणीय जान पड़ते थे, वहाँ पर होने वाली फूलों की वर्षा ऋतुओं के परिवर्तन को कभी नहीं देखती थी अर्थात् वहाँ सदा ही सब ऋतुओं के फूल फूले रहते थे।।१७२।।

उन वनों के वृक्ष इतने अधिक प्रकाशमान थे कि उनसे वहाँ न तो रात का ही व्यवहार होता था और न दिन का ही। वहाँ सूर्य की किरणों का प्रवेश नहीं हो पाता था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँ के वृक्षों की शीतलता से डरकर ही सूर्य ने अपने कर अर्थात् किरणों (पक्ष में हाथों) का संकोच कर लिया हो।।१७३।।

उन वनों के भीतर कहीं पर तिखूँटी और कहीं पर चौखूँटी बावड़ियाँ थीं तथा वे बावड़ियाँ स्नान कर बाहर निकली हुई देवांगनाओं के स्तनों पर लगी हुई केसर के घुल जाने से पीली–पीली हो रही थीं।।१७४।।

उन वनों में कहीं कमलों से युक्त छोटे–छोटे तालाब थे, कहीं कृत्रिम पर्वत बने हुए थे और कहीं मनोहर महल बने हुए थे और कहीं पर क्रीड़ा–मण्डप बने हुए थे।।१७५।।

कहीं सुन्दर वस्तुओं के देखने के घर (अजायबघर) बने हुए थे, कहीं चित्रशालाएँ बनी हुई थीं और कहीं एक खण्ड की तथा कहीं दो, तीन आदि खण्डों की बड़े–बड़े महलों की पंक्तियाँ बनी हुई थीं।।१७६।।

क्वचिच्च शाद्वला भूमिरिन्द्रगोपैस्तता क्वचित्। सरांस्यतिमनोज्ञानि सरितश्च ससैकताः।।१७७।।
हारिमेदु रमुन्निद्रकुसुमं सश्रि कामदम्। सुकलत्रमिवासीत्तत् सेव्यं वनचतुष्टम्।।१७८।।
अपास्तातपसंबन्धं विकसत्पल्लवाञ्चितम्। पयोधरस्पृगाभासि तत्स्त्रीणामुत्तरीयवत् ।।१७९।।
बभासे वनमाशोकं शोकापनुदमङ्गिनाम्। रागं वमदिवात्मीयमारक्तैः पुष्पपल्लवैः।।१८०।।
पर्णानि सप्त बिभ्राणं वनं साप्तच्छदं बभौ। सप्तस्थानानि वाभर्तुर्दर्शयत्प्रति पर्व यत्।।१८१।।
चाम्पकं वनमत्रामात् सुमनोभरभूषणम्। वनं दीपाङ्गवृक्षाणां विभुं भक्तु मिवागताम् ।।१८२।।
कम्रमाम्रवनं रेजे कलकण्ठीकलस्वनैः। स्तुवानमिव भक्त्यैनमीशानं पुण्यशासनम् ।।१८३।।
अशोकवनमध्येऽभूदशोकानोकहो महान्। हैमं त्रिमेखलं पीठं समुत्तुङ्गमधिष्ठितः।।१८४।।
चतुर्गोपुरसंबद्धत्रिसालपरिवेष्टितः। छत्रचामरभृङ्गारकलशाद्यैरुपस्कृतः।।१८५।।

कहीं हरी–हरी घास से युक्त भूमि थी, कहीं इन्द्रगोप नाम के कीड़ों से व्याप्त पृथ्वी थी, कहीं अतिशय मनोज्ञ तालाब थे और कहीं उत्तम बालू के किनारों से सुशोभित नदियाँ बह रही थीं।।१७७।।

वे चारों ही वन उत्तम स्त्रियों के समान सेवन करने योग्य थे क्योंकि वे वन भी उत्तम स्त्रियों के समान ही मनोहर थे, मेदुर अर्थात् अतिशय चिकने थे, उन्निद्रकुसुम अर्थात् फूले हुए फूलों से सहित (पक्ष में ऋतु धर्म से सहित) थे, सश्री अर्थात् शोभा से सहित थे और कामद अर्थात् इच्छित पदार्थों के (पक्ष में काम के) देने वाले थे।।१७८।।

अथवा वे वन स्त्रियों के उत्तरीय (ओढ़ने की चूनरी) वस्त्र के समान सुशोभित हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार स्त्रियों का उत्तरीय वस्त्र आतप की बाधा को नष्ट कर देता है उसी प्रकार उन वनों ने भी आतप की बाधा को नष्ट कर दिया था, स्त्रियों का उत्तरीय वस्त्र जिस प्रकार पयोधर अर्थात् स्तनों का स्पर्श करता है उसी प्रकार वे वन भी ऊँचे होने के कारण पयोधर अर्थात् मेघों का स्पर्श कर रहे थे।।१७९।।

उन चारों वनों में से पहला अशोक वन जो कि प्राणियों के शोक को नष्ट करने वाला था, लाल रंग के फूल और नवीन पत्तों से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अपने अनुराग (प्रेम) का ही वमन कर रहा हो।।१८०।।

प्रत्येक गाँठ पर सात–सात पत्तों को धारण करने वाले सप्तच्छद वृक्षों का दूसरा वन भी सुशोभित हो रहा था जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो वृक्षों के प्रत्येक पर्व पर भगवान् के सज्जातित्व, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य आदि सात परम स्थानों को ही दिखा रहा हो।।१८१।।

फूलों के भार से सुशोभित तीसरा चम्पक वृक्षों का वन भी सुशोभित हो रहा था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान की सेवा करने के लिए दीपांग जाति के कल्पवृक्षों का वन ही आया हो।।१८२।।

तथा कोयलों के मधुर शब्दों से मनोहर चौथा आम के वृक्षों का वन भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पवित्र उपदेश देने वाले भगवान् की भक्ति से स्तुति ही कर रहा हो।।१८३।।

अशोक वन के मध्य भाग में एक बड़ा भारी अशोक का वृक्ष था जो कि सुवर्ण की बनी हुई तीन कटनीदार ऊँची पीठिका पर स्थित था।।१८४।।

वह वृक्ष, जिनमें चार–चार गोपुर द्वार बने हुए हैं ऐसे तीन कोटों से घिरा हुआ था तथा उसके समीप में ही छत्र, चमर, भृङ्गार और कलश आदि मंगलद्रव्य रखे हुए थे। १८५।।

जम्बूद्वीपस्थलीमध्ये भाति जम्बूद्रुमो यथा। तथा वनस्थलीमध्ये स बभौ चैत्यपादपः।।१८६।।
शाखाग्रव्याप्तविश्वाशः स रेजेऽशोकपादपः। अशोकमयमेवेदं जगत्कर्तुमिवोद्यतः।।१८७।।
सुरभीकृतविश्वाशैः कुसुमैः स्थगिताम्बरः। सिद्धाध्वानमिवारुन्धन् रेजेऽसौ चैत्यपादपः।।१८८।।
गारुडोपलनिर्माणैः पत्रैश्चित्रैश्चितोऽभितः। पद्मरागमयैः पुष्पस्तबकैः परितो वृतः।।१८९।।
हिरण्मयमहोदग्रशाखो वज्रेद्धबुध्नकः। कलालिकुलझङ्कारैस्तर्जयन्निव मन्मथम् ।।१९०।।
सुरासुरनरेन्द्रान्तरक्षेभालानविग्रहः। स्वप्रभापरिवेषेण द्योतिताखिलदिङ्मुखः।।१९१।।
रणदालम्बिघण्टाभिर्बधिरीकृत विश्वभूः। भूर्भुवः स्वर्जयं भर्तुः प्रतोषादिव घोषयन् ।।१९२।।
ध्वजांशुकपरा मृष्टनिर्मेघघनपद्धतिः। जगज्जनाङ्गसंलग्नमार्गः परिमृजन्निव।।१९३।।
मूर्ध्ना छत्रत्रयं बिभ्रन्मुक्तालम्बनभूषितम् । विभोस्त्रिभुवनैश्वर्यं बिना वाचेव दर्शयन् ।।१९४।।
भ्रेजिरे बुध्नभागेऽस्य प्रतिमा दिक्चतुष्टये। जिनेश्वराणामिन्द्राद्यैः समवाप्ताभिषेचनाः।।१९५।।

जिस प्रकार जम्बूद्वीप की मध्य भूमि में जम्बूवृक्ष सुशोभित होता है उसी प्रकार उस अशोक वन की मध्य भूमि में वह अशोक नामक चैत्यवृक्ष सुशोभित हो रहा था।।१८६।।

जिसने अपनी शाखाओं के अग्रभाग से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर रखा है ऐसा वह अशोक वृक्ष ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो समस्त संसार को अशोकमय अर्थात् शोकरहित करने के लिए ही उद्यत हुआ हो।।१८७।।

समस्त दिशाओं को सुगन्धित करने वाले फूलों से जिसने आकाश को व्याप्त कर लिया है ऐसा वह चैत्यवृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो सिद्ध–विद्याधरों के मार्ग को ही रोक रहा हो।।१८८।।

वह वृक्ष नीलमणियों के बने हुए अनेक प्रकार के पत्तों से व्याप्त हो रहा था और पद्मराग मणियों के बने हुए फूलों के गुच्छों से घिरा हुआ था।।१८९।।

सुवर्ण की बनी हुई उसकी बहुत ऊँची–ऊँची शाखाएँ थीं, उसका देदीप्यमान भाग वज्र का बना हुआ था तथा उस पर बैठे हुए भ्रमरों के समूह जो मनोहर झंकार कर रहे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव की तर्जना ही कर रहा हो।।१९०।।

वह चैत्यवृक्ष सुर, असुर और नरेन्द्र आदि के मनरूपी हाथियों के बाँधने के लिए खंभे के समान था तथा उसने अपने प्रभामण्डल से समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रखा था।।१९१।।

उस पर जो शब्द करते हुए घंटे लटक रहे थे उनसे उसने समस्त दिशाएँ बहिरी कर दी थीं और उनसे वह ऐसा जान पड़ता था कि भगवान् ने अधोलोक, मध्यलोक और स्वर्गलोक में जो विजय प्राप्त की है सन्तोष से मानो वह उसकी घोषणा ही कर रहा हो।।१९२।।

वह वृक्ष ऊपर लगी हुई ध्वजाओं के वस्त्रों से पोंछ–पोंछकर आकाश को मेघ रहित कर रहा था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो संसारी जीवों की देह में लगे हुए पापों को ही पोंछ रहा हो।।१९३।।

वह वृक्ष मोतियों की झालर से सुशोभित तीन छत्रों को अपने सिर पर धारण कर रहा था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के तीनों लोकों के ऐश्वर्य को बिना वचनों के ही दिखला रहा हो।।१९४।।

उस चैत्यवृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में जिनेन्द्रदेव की चार प्रतिमाएँ थीं जिनका इन्द्र स्वयं अभिषेक करते थे।।१९५।।

गन्धस्रग्धूपदीपार्घ्यैः फलैरपि सहाक्षतैः। तत्र नित्यार्चनं देवा जिनार्चानां वितेनिरे।।१९६।।
क्षीरोदोदकधौताङ्गीरमलास्ता हिरण्मयीः। प्रणिपत्यार्हतामर्चाः प्रानर्चुर्नृसुरासुराः।।१९७।।
स्तुवन्ति स्तुतिभिः केचिदर्थ्याभिः प्रणमन्ति च। स्मृत्वावधार्य गायन्ति केचित्तस्म सुरसत्तमाः।।१९८।।
यथाशोकस्तथान्येऽपि विज्ञेयाश्चैत्यभूरुहाः। वने स्वे स्वे सजातीया जिनबिम्बेद्धबुध्नकाः।।१९९।।
अशोकः सप्तपर्णश्च चम्पकश्चूत एव च। चत्वारोऽमी वनेष्वासन् प्रोत्तुङ्गाश्चैत्यपादपाः।।२००।।
चैत्याधिष्ठितबुध्नत्वादूढतन्नामरूढयः। शाखिनोऽमी विभान्ति स्म सुरेन्द्रैः प्राप्तपूजनाः।।२०१।।
फलैरलंकृता दीप्राः स्वपादाक्रान्तभूतलाः। पार्थिवाः सत्यमेवैते पार्थिवाः पत्रसंभृताः।।२०२।।
प्रव्यञ्जितानुरागाः स्वैः पल्लवैः कुसुमोत्करैः। प्रसादं दर्शयन्तोऽन्तर्विभुं भेजुरिमे द्रुमाः।।२०३।।
तरूणामेव तावच्चेदीदृशो विभवोदयः। किमस्ति वाच्यमीशस्य विभवेऽनीदृशात्मनः।।२०४।।

देव लोग वहाँ पर विराजमान उन जिनप्रतिमाओं की गन्ध, पुष्पों की माला,धूप, दीप, फल और अक्षत आदि से निरन्तर पूजा किया करते थे।।१९६।।

क्षीरसागर के जल से जिनके अंगों का प्रक्षालन हुआ है और जो अतिशय निर्मल हैं ऐसी सुवर्णमयी अरहंत की उन प्रतिमाओं को नमस्कार कर मनुष्य, सुर और असुर सभी उनकी पूजा करते थे।।१९७।।

कितने ही उत्तम देव अर्थ से भरी हुई स्तुतियों से उन प्रतिमाओं की स्तुति करते थे, कितने ही उन्हें नमस्कार करते थे और कितने ही उनके गुणों का स्मरण कर तथा चिन्तवन कर गान करते थे।।१९८।।

जिस प्रकार अशोक वन में अशोक नामका चैत्यवृक्ष है उसी प्रकार अन्य तीन वनों में भी अपनी–अपनी जाति का एक–एक चैत्यवृक्ष था और उन सभी के मूलभाग जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से देदीप्यमान थे।।१९९।।

इस प्रकार ऊपर कहे हुए चारों वनों में क्रम से अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के चार बहुत ही ऊँचे चैत्यवृक्ष थे।।२००।।

मूलभाग में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा विराजमान होने से जो 'चैत्यवृक्ष' इस सार्थक नाम को धारण कर रहे हैं और इन्द्र जिनकी पूजा किया करते हैं ऐसे वे चैत्यवृक्ष बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे।।२०१।।

पार्थिव अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न हुए वे वृक्ष सचमुच ही पार्थिव अर्थात् पृथ्वी के स्वामी—राजा के समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार राजा अनेक फलों से अलंकृत होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी अनेक फलों से अलंकृत थे, राजा जिस प्रकार तेजस्वी होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी तेजस्वी (देदीप्यमान) थे, राजा जिस प्रकार अपने पाद अर्थात् पैरों से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त किया करते हैं (समस्त पृथ्वी में अपना यातायात रखते हैं) उसी प्रकार वे वृक्ष भी अपने पाद अर्थात् जड़ भाग से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त कर रहे थे (समस्त पृथ्वी में उनकी जड़ें फैली हुई थीं) और राजा जिस प्रकार पत्र अर्थात् सवारियों से भरपूर रहते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी पत्र अर्थात् पत्तों से भरपूर थे।।२०२।।

वे वृक्ष अपने पल्लव अर्थात् लाल–लाल नयी कोंपलों से ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्तरंग का अनुराग (प्रेम) ही प्रकट कर रहे हों और फूलों के समूह से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो हृदय की प्रसन्नता ही दिखला रहे हों–इस प्रकार वे वृक्ष भगवान् की सेवा कर रह थे।।२०३।।

जबकि उन वृक्षों का ही ऐसा बड़ा भारी माहात्म्य था तब उपमारहित भगवान् वृषभदेव के केवलज्ञानरूपी विभव के विषय में कहना ही क्या है–वह तो सर्वथा अनुमप ही था।।२०४।।

ततो वनानां पर्यन्ते बभूव वनवेदिका। चतुर्भिर्गोपुरैस्तुङ्गैरारुद्धगगनाङ्गणा।।२०५।।
काञ्चीयष्टिर्वनस्येव सा बभौ वनवेदिका। चामीकरमयै रत्नैः खचिताङ्गी समन्ततः।।२०६।।
सा बभौ वेदिकोदग्रा सचर्या समया वनम्। भव्यधीरिव संश्रित्य सचर्या समयावनम्।।२०७।।
सुगुप्ताङ्गो सतीवासौ रुचिरा सूत्रपा वनम्। परीयाय श्रुतं जैनं सद्धीर्वा सूत्रपावनम्।।२०८।।
घण्टाजालानि लम्बानि मुक्तालम्बनकानि च। पुष्पस्रजश्च संरेजुरमुष्यां गोपुरं प्रति।।२०९।।
राजतानि वभुस्तस्या गोपुराण्यष्टमङ्गलैः। संगीतातोद्यनृत्तैश्च रत्नाभरणतोरणैः।।२१०।।
ततः परमलंचक्रुर्विविधा ध्वजपङ्क्तयः। महीं वीथ्यन्तरालस्थां हेमस्तम्भाग्रलम्बिताः।।२११।।
सुस्थास्ते मणिपीठेषु ध्वजस्तम्भाः स्फूरद्रुचः। विरेजुर्जगतां मान्याः सुराजान इवोन्नताः।।२१२।।

उन वनों के अन्त में चारों ओर एक–एक वनवेदी थी जो कि ऊँचे–ऊँचे चार गोपुरद्वारों से आकाशरूपी आँगन को रोक रही थी।।२०५।।

वह सुवर्णमयी वनवेदिका सब ओर से रत्नों से जड़ी हुई थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो उस वन की करधनी ही हो।।२०६।।

अथवा वह वनवेदिका भव्य जीवों की बुद्धि के समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार भव्य जीवों की बुद्धि उदग्र अर्थात् उत्कृष्ट होती है उसी प्रकार वह वनवेदिका भी उदग्र अर्थात् बहुत ऊँची थी, भव्य जीवों की बुद्धि जिस प्रकार सचर्या अर्थात् उत्तम चारित्र से सहित होती है उसी प्रकार वह वनवेदिका भी सचर्या अर्थात् रक्षा से सहित थी और भव्य जीवों की बुद्धि जिस प्रकार समयावनं (समय+अवनं संश्रित्य) अर्थात् आगमरक्षा का आश्रय कर प्रवृत्त रहती है उसी प्रकार वह वनवेदिका भी समया वनं (वनं समया संश्रित्य) अर्थात् वन के समीप भाग का आश्रय कर प्रवृत्त हो रही थी।।२०७।।

अथवा वह वनवेदिका सुगुप्तांगी अर्थात् सुरक्षित थी, सती अर्थात् समीचीन थी, रुचिरा अर्थात् देदीप्यमान थी, सूत्रपा अर्थात् सूत्र (डोरा) की रक्षा करने वाली थी–सूत के नाप में बनी हुई थी–कहीं ऊँची–नीची नहीं थी, और वन को चारों ओर से घेरे हुए थी इसलिए किसी सत्पुरुष की बुद्धि के समान जान पड़ती थी क्योंकि सत्पुरुष की बुद्धि भी सुगुप्तांगी अर्थात् सुरक्षित होती है–पापाचारों से अपने शरीर को सुरक्षित रखती है, सती अर्थात् शंका आदि दोषों से रहित होती है, रुचिरा अर्थात् श्रद्धागुण प्रदान करने वाली होती है, सूत्रपा अर्थात् आगम की रक्षा करने वाली होती है और सूत्रपावनं अर्थात् सूत्रों से पवित्र जैन शास्त्र को घेरे रहती है–उन्हीं के अनुकूल प्रवृत्ति करती है।।२०८।।

उस वेदिका के प्रत्येक गोपुरद्वार में घण्टाओं के समूह लटक रहे थे, मोतियों की झालर तथा फूलों की मालाएँ सुशोभित हो रही थीं।।२०९।।

उस वेदिका के चाँदी के बने हुए चारों गोपुरद्वार अष्टमंगलद्रव्य, संगीत, बाजों का बजना, नृत्य तथा रत्नमय आभरणों से युक्त तोरणों से बहुत ही सुशोभित हो रहे थे।।२१०।।

उन वेदिकाओं से आगे सुवर्णमय खम्भों के अग्रभाग पर लगी हुई अनेक प्रकार की ध्वजाओं की पंक्तियाँ महावीथी के मध्य की भूमि को अलंकृत कर रही थीं।।२११।।

वे ध्वजाओं के खम्भे मणिमयी पीठिकाओं पर स्थिर थे, देदीप्यमान कान्ति से युक्त थे, जगत्मान्य थे और अतिशय ऊँचे थे इसलिए किन्हीं उत्तम राजाओं के समान सुशोभित हो रहे थे क्योंकि उत्तम राजा भी मणिमय

अष्टाशीत्यङ्गुलान्येषां रुन्द्रत्वं परिकीर्तितम्। पञ्चविंशतिकोदण्डान्यमीषामन्तरं विदुः।।२१३।।
सिद्धार्थचैत्य वृक्षाश्च प्राकारवनवेदिकाः। स्तूपः सतोरणा मानस्तम्भाः स्तम्भाश्च कैतवाः।।२१४।।
प्रोक्तास्तीर्थकृदुत्सेधादुत्सेधेन द्विषड्गुणाः। दैर्घ्यानुरूपमेतेषां रौन्द्रयमाहुर्मनीषिणः।।२१५।।
वनानां स्वगृहाणां च पर्वतानां तथैव च। भवेदुन्नतिरेषैव वर्णितागमकोविदैः।।२१६।।
भवेयुर्गिरयो रुन्द्राः स्वोत्सेधादष्टसंगुणम्। स्तूपानां रौन्द्रयमुच्छ्रायात् सातिरेकं विदो विदुः।।२१७।।
उशन्ति वेदिकादीनां स्वोत्सेधस्यो चतुर्थकम्। पार्थवं परमज्ञानमहाकूपारपारगाः।।२१८।।
स्त्रग्वस्त्रसहसानाब्ज हंसवीन मृगेशिनाम्। वृषभेभेन्द्रचक्राणां ध्वजाः स्युर्दशभेदकाः।।२१९।।
अष्टोत्तरशतं ज्ञेयाः प्रत्येकं पालिकेतनाः। एकैकस्यां दिशि प्रोच्चास्तरङ्गास्तोयधेरिव।।२२०।।
पवनान्दोलितस्तेषां केतूनामंशुकोत्करः। व्याजुहूषुरिवाभासीद् जिनेज्यायै नरामरान्।।२२१।।
स्त्रग्ध्वजेषु स्त्रजो दिव्याः सौमनस्यो ललम्बिरे। भव्यानां सौमनस्याय कल्पितास्त्रिदिवाधिपैः।।२२२।।

आसनों पर स्थित होते हैं–बैठते हैं, देदीप्यमान कान्ति से युक्त होते हैं, जगत्मान्य होते हैं–संसार के लोग उनका सत्कार करते हैं और अतिशय उन्नत अर्थात् उदार हृदय होते हैं।।२१२।।

उन खम्भों की चौड़ाई अट्ठासी अंगुल कही गयी है और उनका अन्तर पचीस–पचीस धनुष प्रमाण जानना चाहिए।।२१३।।

सिद्धार्थवृक्ष, चैत्यवृक्ष, कोट, वनवेदिका, स्तूप, तोरण सहित मानस्तम्भ और ध्वजाओं के खम्भे ये सब तीर्थंकरों के शरीर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे होते हैं और विद्वानों ने इनकी चौड़ाई आदि इनकी लम्बाई के अनुरूप बतलायी है।।२१४–२१५।।

इसी प्रकार आगम के जानने वाले विद्वानों ने वन, वन के मकान और पर्वतों की भी यही ऊँचाई बतलायी है अर्थात् ये सब भी तीर्थंकर के शरीर से बारह गुने ऊँचे होते हैं।।२१६।।

पर्वत अपनी ऊँचाई से आठ गुने चौड़े होते हैं और स्तूपों का व्यास विद्वानों ने अपनी ऊँचाई से कुछ अधिक बतलाया है।।२१७।।

परमज्ञानरूपी समुद्र के पारगामी गणधर देवों ने वन वेदियों की चौड़ाई वन की ऊँचाई से चौथाई बतलायी है।।२१८।।

ध्वजाओं में माला, वस्त्र, मयूर, कमल, हंस, गरुड़, सिंह, बैल, हाथी और चक्र के चिह्न थे इसलिए उनके दस भेद हो गए थे।।२१९।।

एक–एक दिशा में एक–एक प्रकार की ध्वजाएँ एक सौ आठ, एक सौ आठ थीं, वे ध्वजाएँ बहुत ऊँची थीं और समुद्र की लहरों के समान जान पड़ती थीं।।२२०।।

वायु से हिलता हुआ उन ध्वजाओं के वस्त्रों का समुदाय ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने के लिए मनुष्य और देवों को बुलाना ही चाहता हो।।२२१।।

मालाओं के चिह्नवाली ध्वजाओं पर फूलों की बनी हुई दिव्यमालाएँ लटक रही थीं और वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो भव्य–जीवों का सौमनस्य अर्थात् सरल परिणाम दिखलाने के लिए ही इन्द्रों ने उन्हें बनाया हो।।२२२।।

श्लक्ष्णांशुकध्वजा रेजुः पवनान्दोलितोत्थिताः। व्योमाम्बुधेरिवोद्भूतास्तरङ्गास्तुङ्गमूर्तयः।।२२३।।
बर्हिध्वजेषु बर्हालिं लीलयोत्क्षिप्य बर्हिणः। रेजुर्ग्रस्तांशुकाः सर्पबुद्धयेव ग्रस्तकृत्तयः।।२२४।।
पद्मध्वजेषु पद्मानि सहस्रदलसंस्तरैः। नभःसरसि फुल्लानि सरोजानीव रेजिरे।।२२५।।
अधः प्रतिमया तानि संक्रान्तानि महीतले। भ्रमरान् मोहयन्ति स्म पद्मबुद्ध्यानुपातिनः।।२२६।।
तेषां तदातनीं शोभां दृष्ट्वा नान्यत्र भाविनीम्। कञ्जान्युत्सृज्य कात्स्न्र्येन लक्ष्मीस्तेषु पदं दधे।।२२७।।
हंसध्वजेष्व भुर्हंसाश्चञ्च्वा ग्रसितवाससः। निजां प्रस्तारयन्तो वा द्रव्यलेश्यां तदात्मना।।२२८।।
गरुत्मद्ध्वजदण्डाग्राण्यध्यासीना विनायकाः। रेजुः स्वैः पक्षविक्षेपैर्लिलङ्घयिषवो नु खम्।।२२९।।
बभुर्नीलमणिक्ष्मास्था गरुडाः प्रतिमागताः। समाक्रष्टुमिवाहीन्द्रान् प्रविशन्तो रसातलम् ।।२३०।।
मृगेन्द्र केतनाग्रेषु मृगेन्द्राः क्रमदित्सया। कृतयत्ना विरेजुस्ते जेतुं वा सुरसामजान् ।।२३१।।
स्थूलमुक्ताफलान्येषां मुखलम्बीनि रेजिरे। गजेन्द्रकुम्भसंभेदात् सञ्चितानि यशांसि वा।।२३२।।
उक्षाः शृङ्गाग्रसंसक्तलम्बमानध्वजांशुकाः। रेजुर्विपक्षजित्येव संलब्धजयकेतनाः।।२३३।।

वस्त्रों के चिह्नवाली ध्वजाएँ महीन और सफेद वस्त्रों की बनी हुई थीं तथा वे वायु से हिल–हिलकर उड़ रही थीं जिससे ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो आकाशरूपी समुद्र की उठती हुई बड़ी ऊँची लहरें ही हों।।२२३।।

मयूरों के चिह्नवाली ध्वजाओं में जो मयूर बने हुए थे वे लीलापूर्वक अपनी पूँछ फैलाए हुए थे और साँप की बुद्धि से वस्त्रों को निगल रहे थे जिससे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो साँप की काँचली ही निगल रहे हों।।२२४।।

कमलों के चिह्नवाली ध्वजाओं में जो कमल बने हुए थे वे अपने एक हजार दलों के विस्तार से ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो आकाशरूपी सरोवर में कमल ही फूल रहे हों।।२२५।।

रत्नमयी पृथ्वी पर उन ध्वजाओं में बने हुए कमलों के जो प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे वे कमल समझकर उन पर पड़ते हुए भ्रमरों को भ्रम उत्पन्न करते थे।।२२६।।

उन कमलों की दूसरी जगह नहीं पायी जाने वाली उस समय की शोभा देखकर लक्ष्मी ने अन्य समस्त कमलों को छोड़ दिया था और उन्हीं में अपने रहने का स्थान बनाया था। भावार्थ–वे कमल बहुत ही सुन्दर थे इसलिए ऐसे जान पड़ते थे मानो लक्ष्मी अन्य सब कमलों को छोड़कर उन्हीं में रहने लगी हो।।२२७।।

हंसों की चिह्नवाली ध्वजाओं में जो हंसो के चिह्न बने हुए थे वे अपने चोंच से वस्त्र को ग्रस रहे थे और ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो उसके बहाने अपनी द्रव्यलेश्या का ही प्रसार कर रहे हों।।२२८।।

जिन ध्वजाओं में गरुड़ों के चिह्न बने हुए थे उनके दण्डों के अग्रभाग पर बैठे हुए गरुड़ अपने पंखों के विक्षेप से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो आकाश को ही उल्लंघन करना चाहते हों।।२२९।।

नीलमणिमयी पृथ्वी में उन गरुड़ों के जो प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे उनसे वे ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो नागेन्द्रों को खींचने के लिए पाताल लोक में ही प्रवेश कर रहे हों।।२३०।।

सिंहों के चिह्नवाली ध्वजाओं के अग्रभाग पर जो सिंह बने हुए थे वे छलांग भरने की इच्छा से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो देवों के हाथियों को जीतने के लिए ही प्रयत्न कर रहे हैं।।२३१।।

उन सिंहों के मुखों पर जो बड़े–बड़े मोती लटक रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो बड़े–बड़े हाथियों के मस्तक विदारण करने से इकट्ठे हुए यश ही लटक रहे हों।।२३२।।

बैलों की चिह्नवाली ध्वजाओं में, जिनके सींगों के अग्रभाग में ध्वजाओं के वस्त्र लटक रहे हैं ऐसे बैल बने

उत्पुष्करैः करैरूढ ध्वजा रेजुर्गजाधिपाः। गिरीन्द्रा इव कूटाग्रनिपतत्पृथुनिर्झराः।।२३४।।
चक्रध्वजाः सहस्रारैश्चक्रैरुत्सर्पदंशुभिः। बभुर्भानुमता सार्द्धं स्पर्धां कर्तुमिवोद्यताः।।२३५।।
नभः परिमृजन्तो वा श्लिष्यन्तो वा दिगङ्गनाः। भुवमास्फालयन्तो वा स्फूर्जन्ति स्म महाध्वजाः।।२३६।।
इत्यमी केतवो मोहनिर्जयोपार्जिता बभुः। विभोस्त्रिभुवनेशित्वं शंसन्तोऽनन्यगोचरम् ।।२३७।।
दिश्येकस्यां ध्वजाः सर्वे सहस्रं स्यादशीतियुक्। चतसृष्वथ ते दिक्षु शून्य द्वित्रिकसागराः।।२३८।।
ततोऽनन्तरमेवान्तर्भागे सालो महानभूत्। श्रीमानर्जुननिर्माणो द्वितीयोऽप्यद्वितीयकः।।२३९।।
पूर्ववद्गोपुराण्यस्य राजतानि रराजिरे। हासलक्ष्मीर्भुवो नूनं पुञ्जीभूता तदात्मना।।२४०।।
तेष्वाभरणविन्यस्ततोरणेषु परा द्युतिः। तेने निधिभिरुद्भूतैः कुबेरैश्वर्यहासिनी।।२४१।।
शेषो विधिरशेषोऽपि सालेनाद्येन वर्णितः। पौनरुक्त्यभयान्नातस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः।।२४२।।
अत्रापि पूर्ववद्वेद्यं द्वितयं नाट्यशालयोः। तद्वद्धूपघटीद्वन्द्वं महावीथ्युभयान्तयोः।।२४३।।

हुए थे और वे ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो शत्रुओं को जीत लेने से उन्हें विजयपताका ही प्राप्त हुई हो।।२३३।।

हाथी की चिह्नवाली ध्वजाओं पर जो हाथी बने हुए थे वे अपनी ऊँची उठी हुई सूड़ों से पताकाएँ धारण कर रहे थे और उनसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनके शिखर के अग्रभाग से बड़े-बड़े निझरने पड़ रहे हैं ऐसे बड़े पर्वत ही हों।।२३४।।

और चक्रों के चिह्नवाली ध्वजाओं में जो चक्र बने हुए थे उनमें हजार-हजार आरियाँ थीं तथा उनकी किरणें ऊपर की ओर उठ रही थीं, उन चक्रों से वे ध्वजाएँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं, मानो सूर्य के साथ स्पर्द्धा करने के लिए ही तैयार हुई हों।।२३५।।

इस प्रकार वे महाध्वजाएँ ऐसी फहरा रही थीं मानो आकाश को साफ ही कर रही हों, अथवा दिशा रूपी स्त्रियों को आलिंगन ही कर रही हों अथवा पृथ्वी का आस्फालन ही कर रही हों।।२३६।।

इस प्रकार मोहनीय कर्म को जीत लेने से प्राप्त हुई वे ध्वजाएँ अन्य दूसरी जगह नहीं पाए जाने वाले भगवान् के तीनों लोकों के स्वामित्व को प्रकट करती हुई बहुत ही सुशोभित हो रही थीं।।२३७।।

एक-एक दिशा में वे सब ध्वजाएँ एक हजार अस्सी थीं और चारों दिशाओं में चार हजार तीन सौ बीस थीं।।२३८।।

उन ध्वजाओं के अनन्तर ही भीतर के भाग में चाँदी का बना हुआ एक बड़ा भारी कोट था, जो कि बहुत ही सुशोभित था और अद्वितीय अनुपम होने पर भी द्वितीय था अर्थात् दूसरा कोट था।।२३९।।

पहले कोट के समान इसके भी चाँदी के बने हुए चार गोपुर-द्वार थे और वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो वे गोपुर-द्वारों के बहाने से इकट्ठी हुई पृथ्वी रूपी देवी के हास्य की शोभा ही हों।।२४०।।

जिनमें अनेक आभरण सहित तोरण लगे हुए हैं ऐसे उन गोपुर-द्वारों में जो निधियाँ रखी हुई थीं वे कुबेर के ऐश्वर्य की भी हँसी उड़ाने वाली बड़ी भारी कान्ति को फैला रही थीं।।२४१।।

उस कोट की और सब विधि पहले कोट के वर्णन के साथ ही कही जा चुकी है, पुनरुक्ति दोष के कारण यहाँ फिर से उसका विस्तार के साथ वर्णन नहीं किया जा रहा है।।२४२।।

पहले के समान यहाँ भी प्रत्येक महावीथी के दोनों ओर दो नाट्यशालाएँ थीं और दो धूपघट रखे हुए थे।।२४३।।

ततो वीथ्यन्तरेष्वस्यां कक्ष्यायां कल्पभूरुहाम् । नानारत्नप्रभोत्सर्पैर्वनमासीत् प्रभास्वरम् ।।२४४।।
कल्पद्रुमाः समुत्तुङ्गाः सच्छायाः फलशालिनः। नानास्त्रग्वस्त्रभूषाढ्या राजायन्ते स्म संपदा।।२४५।।
देवोदक्कुरवो नूनमागताः सवितुं जिनम्। दशप्रभेदैः स्वैः कल्पतरुभिः श्रेणि सात्कृतैः।।२४६।।
फलान्याभरणान्येषामंशुकानि च पल्लवाः।। स्त्रजः शाखाग्रलम्बिन्यो महाप्रारोहयष्टयः।।२४७।।
तेषामधःस्थलच्छायामध्यासीनाः सुरोरगाः। स्वावासेषु धृतिं हित्वा चिरं तत्रैव रेमिरे।।२४८।।
ज्योतिष्का ज्योतिरङ्गेषु दीपाङ्गेषु च कल्पजाः। भावनेन्द्राः स्त्रगङ्गेषु यथायोग्यां धृतिं दधुः।।२४९।।
स्त्रग्वि साभरणं भास्वदंशुकं पल्लवाधरम्। ज्वलद्दीपं वनं कान्तं वधूवरमिवारुचत् ।।२५०।।

इस कक्षा में विशेषता इतनी है कि धूपघटों के बाद गलियों के बीच के अन्तराल में कल्पवृक्षों का वन था, जो कि अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति के फैलने से देदीप्यमान हो रहा था।।२४४।।

उस वन के वे कल्पवृक्ष बहुत ही ऊँचे थे, उत्तम छायावाले थे, फलों से सुशोभित थे और अनेक प्रकार की माला, वस्त्र तथा आभूषणों से सहित थे इसलिए अपनी शोभा से राजाओं के समान जान पड़ते थे क्योंकि राजा भी बहुत ऊँचे अर्थात् अतिशय श्रेष्ठ अथवा उदार होते हैं, उत्तम छाया अर्थात् कान्ति से युक्त होते हैं, अनेक प्रकार की वस्तुओं की प्राप्तिरूपी फलों से सुशोभित होते हैं और तरह-तरह की माला, वस्त्र तथा आभूषणों से युक्त होते हैं।।२४५।।

उन कल्पवृक्षों को देखकर ऐसा मालूम होता था मानो अपने दस प्रकार के कल्पवृक्षों की पंक्तियों से युक्त हुए देवकुरु और उत्तरकुरु ही भगवान् की सेवा करने के लिए आए हों।।२४६।।

उन कल्पवृक्षों के फल आभूषणों के समान जान पड़ते थे, नवीन कोमल पत्ते वस्त्रों के समान मालूम होते थे और शाखाओं के अग्रभाग पर लटकती हुई मालाएँ बड़ी-बड़ी जटाओं के समान सुशोभित हो रही थीं।।२४७।।

उन वृक्षों के नीचे छायातल में बैठे हुए देव और धरणेन्द्र अपने-अपने भवनों में प्रेम छोड़कर वहीं पर चिरकाल तक क्रीड़ा करते रहते थे।।२४८।।

ज्योतिष्कदेव ज्योतिरङ्ग जाति के कल्पवृक्ष में, कल्पवासी देव दीपांग जाति के कल्पवृक्षों में और भवनवासियों के इन्द्र मालांग जाति के कल्पवृक्षों में यथायोग्य प्रीति धारण करते थे।

भावार्थ—जिस देव को जो वृक्ष अच्छा लगता था वे उसी के नीचे क्रीड़ा करते थे।।२४९।।

वह कल्पवृक्षों का वन वधूवर के समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार वधूवर मालाओं से सहित होते हैं उसी प्रकार वह वन भी मालाओं से सहित था, वधूवर जिस प्रकार आभूषणों से युक्त होते हैं उसी प्रकार वह वन भी आभूषणों से युक्त था, जिस प्रकार वधूवर सुन्दर वस्त्र पहने रहते हैं उसी प्रकार उस वन में सुन्दर वस्त्र टँगे हुए थे, जिस प्रकार वर-वधू के अधर (ओठ) पल्लव के समान लाल होते हैं उसी प्रकार उस वन के पल्लव (नये पत्ते) लाल थे। वर-वधू के आसपास जिस प्रकार दीपक जला करते हैं उसी प्रकार उस वन में भी दीपक जल रहे थे और वर-वधू जिस प्रकार अतिशय सुन्दर होते हैं उसी प्रकार वह वन भी अतिशय सुन्दर था।

भावार्थ—उस वन में कहीं मालांग जाति के वृक्षों पर मालाएँ लटक रही थीं, कहीं भूषणांग जाति के वृक्षों पर भूषण लटक रहे थे, कहीं वस्त्रांग जाति के वृक्षों पर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र टँगे हुए थे, कहीं उन वृक्षों में नए-नए, लाल-लाल पत्ते लग रहे थे और कहीं दीपांग जाति के वृक्षों पर अनेक दीपक जल रहे थे।।२५०।।

अन्तर्वर्णमथाभूवन्निह सिद्धार्थपादपाः। सिद्धार्थाधिष्टिता धीद्धबुध्ना ब्रध्ना इवोद्रचः।।२५१।।
चैत्यद्रुमेषु पूर्वोक्ता वर्णनात्रापि योज्यताम्। किं तु कल्पद्रुमा ऐते संकल्पितफलप्रदाः।।२५२।।
क्वचिद् वाप्यः क्वचिन्नद्यः क्वचित् सैकतमण्डलम्। क्वचित्सभागृहादीनि बभुरत्र वनान्तरे।।२५३।।
वनवीथीमिमामन्तर्वव्रेऽसौ वनवेदिका। कलधौतमयी तुङ्गचतुर्गोपुरसंगता।।२५४।।
तत्र तोरणमाङ्गल्यसंपदः पूर्ववर्णिताः। गोपुराणि च पूर्वोक्तमानोन्मानान्यमुत्र च।।२५५।।
प्रतोलीं तामथोल्लङ्घ्य परतः परिवीथ्यभूत्। प्रासादपक्तिर्विविधा निर्मिता सुरशिल्पिभिः।।२५६।।
हिरण्मयमहास्तम्भा वज्राधिष्ठानबन्धनाः। चन्द्रकान्तशिलाकान्तभित्तयो रत्नचित्रिताः।।२५७।।
सहर्म्या द्वितलाः केचित् केचिच्च त्रिचतुस्तलाः। चन्द्रशालायुजः केचिद् बलभिच्छन्दशोभिनः।।२५८।।
प्रासादास्ते स्म राजन्ते स्वप्रभामग्नमूर्तयः। नभोलिहानाः कूटाग्रैर्ज्योत्स्नयेव विनिर्मिताः।।२५९।।
कूटागारसभागेहप्रेक्षाशालाः क्वचिद् विभुः। सशय्याः सासनास्तुङ्गसोपानाः श्वेतिताम्बराः।।२६०।।

उन कल्पवृक्षों के मध्यभाग में सिद्धार्थ वृक्ष थे, सिद्ध भगवान् की प्रतिमाओं से अधिष्ठित होने के कारण उन वृक्षों के मूल भाग बहुत ही देदीप्यमान हो रहे थे और उन सबसे वे वृक्ष सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे थे।।२५१।।

पहले चैत्यवृक्षों में जिस शोभा का वर्णन किया गया है वह सब इन सिद्धार्थ वृक्षों में भी लगा लेना चाहिए किन्तु विशेषता इतनी ही है कि ये कल्पवृक्ष अभिलषित फल के देने वाले थे।।२५२।।

उन कल्पवृक्षों के वनों में कहीं बावड़ियाँ, कहीं नदियाँ, कहीं बालू के ढेर और कहीं सभागृह आदि सुशोभित हो रहे थे।।२५३।।

उन कल्पवृक्षों की वनवीथी को भीतर की ओर चारों तरफ से वनवेदिका घेरे हुए थी, वह वनवेदिका सुवर्ण की बनी हुई थी और चार गोपुर–द्वारों से सहित थी।।२५४।।

उन गोपुर–द्वारों में तोरण और मंगलद्रव्यरूप सम्पदाओं का वर्णन पहले ही किया जा चुका है तथा उनकी लम्बाई, चौड़ाई आदि भी पहले के समान ही जानना चाहिए।।२५५।।

उन गोपुर–द्वारों के आगे भीतर की ओर बड़ा लम्बा–चौड़ा रास्ता था और उसके दोनों ओर देवरूप कारीगरों के द्वारा बनायी हुई अनेक प्रकार के मकानों की पंक्तियाँ थीं।।२५६।।

जिनके बड़े–बड़े खम्भे सुवर्ण के बने हुए हैं, जिनके अधिष्ठान–बन्धन अर्थात् नींव वज्रमयी हैं, जिनकी सुन्दर दीवालें चन्द्रकान्तमणियों की बनी हुई हैं और जो अनेक प्रकार के रत्नों से चित्र–विचित्र हो रहे हैं ऐसे वे सुन्दर मकान कितने ही दो खण्ड के थे, कितने ही तीन खण्ड के और कितने ही चार खण्ड के थे, कितने ही चन्द्रशालाओं (मकानों के ऊपरी भाग) से सहित थे तथा कितने ही अट्टालिका आदि से सुशोभित थे।।२५७–२५८।।

जो अपनी ही प्रभा में डूबे हुए हैं ऐसे वे मकान अपने शिखरों के अग्रभाग से आकाश का स्पर्श करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो चाँदनी से ही बने हों।।२५९।।

कहीं पर कूटागार (अनेक शिखरों वाले अथवा झुला देने वाले मकान), कहीं पर सभागृह और कहीं पर प्रेक्षागृह (नाट्यशाला अथवा अजायबघर) सुशोभित हो रहे थे, उन कूटागार आदि में शय्याएँ बिछी हुई थीं, आसन रखे हुए थे, ऊँची–ऊँची सीढ़ियाँ लगी हुई थीं और उन सबने अपनी कान्ति से आकाश को सफेद–सफेद कर दिया था।।२६०।।

तेषु देवाः सगन्धर्वाः सिद्धा विद्याधराः सदा। पन्नगाः किन्नरैः सार्द्धमरमन्त कृतादराः।।२६१।।
केचिद् गानेषु वादित्रवादने केचिदुद्यताः। संगीतनृत्यगोष्ठीभिर्विभुमाराधयन्नमी।।२६२।।
वीथीनां मध्यभागेऽत्र स्तूपा नव समुद्ययुः। पद्मरागमयोत्तुङ्गवपुषः खाग्रलङ्घिनः।।२६३।।
जनानुरागास्ताद्रूप्यमापन्ना इव ते बभुः। सिद्धार्हत्प्रतिबिम्बौघैरभितश्चित्रमूर्तयः।।२६४।।
स्वोन्नत्या गगनाभोगं रुन्धानाः स्म विभान्त्यमी। स्तूपा विद्याधराराध्याः प्राप्तेज्या मेरवो यथा।।२६५।।
स्तूपाः समुच्छ्रिता रेजुराराध्याः सिद्धचारणैः। ताद्रूप्यमिव बिभ्राणा नवकेवललब्धयः।।२६६।।
स्तूपानामन्तरेष्वेषां रत्नतोरणमालिकाः। बभुरिन्द्र धनुर्मय्य इव चित्रितखाङ्गणाः।।२६७।।
सच्छत्राः सपताकाश्च सर्वमङ्गलसंभृताः। राजान इव रेजुस्ते स्तूपाः कृतजनोत्सवाः।।२६८।।
तत्राभिषिच्य जैनेन्द्रीरर्चाः कीर्तितपूजिताः। ततः प्रदक्षिणीकृत्य भव्या मुदमयासिषुः।।२६९।।

उन मकानों में देव, गन्धर्व, सिद्ध (एक प्रकार के देव), विद्याधर, नागकुमार और किन्नर जाति के देव बड़े आदर के साथ सदा क्रीड़ा किया करते थे।।२६१।।

उन देवों में कितने ही देव तो गाने में उद्यत थे और कितने ही बाजा बजाने में तत्पर थे इस प्रकार वे देव संगीत और नृत्य आदि की गोष्ठियों द्वारा भगवान् की आराधना कर रहे थे।।२६२।।

महावीथियों के मध्य भाग में नौ–नौ स्तूप खड़े हुए थे, जो कि पद्मरागमणियों के बने हुए बहुत ऊँचे थे और अपने अग्रभाग से आकाश का उल्लंघन कर रहे थे।।२६३।।

सिद्ध और अर्हन्त भगवान् की प्रतिमाओं के समूह से वे स्तूप चारों ओर से चित्र–विचित्र हो रहे थे और ऐसे सुशोभित हों रहे थे मानो मनुष्यों का अनुराग ही स्तूपों के आकार को प्राप्त हो गया हो।।२६४।।

वे स्तूप ठीक मेरु पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे क्योंकि जिस प्रकार मेरु पर्वत अपनी ऊँचाई से आकाश को घेरे हुए है उसी प्रकार वे स्तूप भी अपनी ऊँचाई से आकाश को घेरे हुए थे, जिस प्रकार मेरु पर्वत विद्याधरों के द्वारा आराधना करने योग्य है उसी प्रकार वे स्तूप भी विद्याधरों के द्वारा आराधना करने योग्य थे और जिस प्रकार सुमेरु पर्वत पूजा को प्राप्त है उसी प्रकार वे स्तूप भी पूजा को प्राप्त थे।।२६५।।

सिद्ध तथा चारण मुनियों के द्वारा आराधना करने योग्य वे अतिशय ऊँचे स्तूप ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो स्तूपों का आकार धारण करती हुई भगवान् की नौ केवललब्धियाँ ही हों।।२६६।।

उन स्तूपों के बीच में आकाशरूपी आँगन को चित्र–विचित्र करने वाले रत्नों के अनेक बन्दनवार बँधे हुए थे जो कि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो इन्द्रधनुष के ही बँधे हुए हों।।२६७।।

उन स्तूपों पर छत्र लगे हुए थे, पताकाएँ फहरा रही थीं, मंगलद्रव्य रखे हुए थे और इन सब कारणों से वे लोगों को बहुत ही आनन्द उत्पन्न कर रहे थे इसलिए ठीक राजाओं के समान सुशोभित हो रहे थे क्योंकि राजा लोग भी छत्र पताका और सब प्रकार के मंगलों से सहित होते हैं तथा लोगों को आनन्द उत्पन्न करते रहते हैं।।२६८।।

उन स्तूपों पर जो जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाएँ विराजमान थीं भव्य लोग उनका अभिषेक कर उनकी स्तुति और पूजा करते थे तथा प्रदक्षिणा देकर बहुत ही हर्ष को प्राप्त होते थे।।२६९।।

स्तूपहर्म्यावलीरुद्धां भुवमुल्लङ्घ्य तां ततः।। नभःस्फटिकसालोऽभूज्जातं खमिव तन्मयम्।।२७०।।
विशुद्धपरिणामत्वाज्जिनवर्यन्तसेवनात् । भव्यात्मेव बभौ सालस्तुङ्गसद्वृत्तताञ्चितः।।२७१।।
खगेन्द्रैरुपसेव्यत्वात्तुङ्गत्वादचलत्वतः। रूप्याद्रिरिव ताद्रूप्यमापन्नः पर्यगाद् विभुम् ।।२७२।।
दिक्षु सालोत्तमस्यास्य गोपुराण्युदशिश्रियन् । पद्मरागमयान्युच्चैर्भव्यरागमयानि वा।।२७३।।
ज्ञेयाः पूर्ववदत्रापि मङ्गलद्रव्यसंपदः। द्वारोपान्ते च निधयो ज्वलद्गम्भीरमूर्तयः।।२७४।।
सतालमङ्गलच्छत्रचामरध्वजदर्पणाः। सुप्रतिष्ठकभृङ्गारकलशाः प्रतिगोपुरम् ।।२७५।।
गदादिपाणयस्तेषु गोपुरेष्वभवन् सुराः। क्रमात् सालत्रये द्वाःस्था भौम भावनकल्पजाः।।२७६।।
ततः खस्फाटिकात् सालादापीठान्तं समायताः। भित्तयः षोडशाभूवन् महावीथ्यन्तराश्रिताः।।२७७।।

उन स्तूपों और मकानों की पंक्तियों से घिरी हुई पृथ्वी को उल्लंघन कर उसके कुछ आगे आकाश के समान स्वच्छ स्फटिकमणि का बना हुआ कोट था जो कि ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो आकाश ही उस कोट रूप हो गया हो।।२७०।।

अथवा विशुद्ध परिणाम (परिणमन) होने से और जिनेन्द्र भगवान् के समीप ही सेवा करने से वह कोट भव्यजीव के समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि भव्यजीव भी विशुद्ध परिणामों (भावों) का धारक होता है और जिनेन्द्र भगवान् के समीप रहकर ही उनकी सेवा करता है। इसके सिवाय वह कोट भव्य जीव के समान ही तुङ्ग अर्थात् ऊँचा (पक्ष में श्रेष्ठ) और सद्वृत्त अर्थात् सुगोल (पक्ष में सदाचारी) था।।२७१।।

अथवा वह कोट बड़े-बड़े विद्याधरों के द्वारा सेवनीय था, ऊँचा था और अचल था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो विजयार्ध पर्वत ही कोट का रूप धारण कर भगवान् की प्रदक्षिणा दे रहा हो।।२७२।।

उस उत्तम कोट की चारों दिशाओं में चार ऊँचे गोपुर-द्वार थे जो पद्मरागमणि के बने हुए थे और ऐसे मालूम पड़ते थे मानो भव्य जीवों के अनुराग से ही बने हों।।२७३।।

जिस प्रकार पहले कोटों के गोपुर-द्वारों पर मंगलद्रव्य रूपी सम्पदाएँ रखी हुई थीं उसी प्रकार इन गोपुरद्वारों के समीप में भी देदीप्यमान तथा गम्भीर आकार वाली निधियाँ रखी हुई थीं।।२७४।।

प्रत्येक गोपुर-द्वार पर पंखा, छत्र, चामर, ध्वजा, दर्पण, सुप्रतिष्ठ (ठोना), भृङ्गार और कलश ये आठ-आठ मङ्गल द्रव्य रखे हुए थे।।२७५।।

तीनों कोटों के गोपुर-द्वारों पर क्रम से गदा आदि हाथ में लिए हुए व्यन्तर, भवनवासी और कल्पवासी देव द्वारपाल थे।

भावार्थ—पहले कोट के दरवाजों पर व्यन्तर देव पहरा देते थे, दूसरे कोट के दरवाजों पर भवनवासी पहरा देते थे और तीसरे कोट के दरवाजों पर कल्पवासी देव पहरा दे रहे थे। ये सभी देव अपने-अपने हाथों में गदा आदि हथियारों को लिए हुए थे।।२७६।।

तदनन्तर उस आकाश के समान स्वच्छ स्फटिकमणि के कोट से लेकर पीठ पर्यन्त लम्बी और महावीथियों (बड़े-बड़े रास्तों) के अन्तराल में आश्रित सोलह दीवालें थीं।

भावार्थ—चारों दिशाओं की चारों महावीथियों के अगल-बगल दोनों ओर आठ दीवालें थीं और दो-दो के हिसाब से चारों विदिशाओं में भी आठ दीवालें थीं इस प्रकार सब मिलाकर सोलह दीवालें थीं। ये दीवालें स्फटिक कोट से लेकर पीठ पर्यन्त लम्बी थीं और बारह सभाओं का विभाग कर रही थीं।।२७७।।

नभःस्फटिकनिर्माणः प्रसरन्निर्मलत्विषः। साद्यपीठतटालग्ना ज्योत्स्नायन्ते स्म भित्तयः।।२७८।।
शुचयो दर्शिताशेषवस्तुबिम्बा महोदयाः। भित्तयस्ता जगद्भर्तुरधिविद्या इवाबभुः।।२७९।।
तासामुपरि विस्तीर्णो रत्नस्तम्भैः समुद्धृतः। वियत्स्फटिकनिर्माणः सश्रीः श्रीमण्डपोऽभवत्।।२८०।।
सत्यं श्रीमण्डपः सोऽयं यत्रासौ परमेश्वरः। नृसुरासुरसान्निध्ये स्वीचक्रे त्रिजगच्छ्रियम्।।२८१।।
यो बभावम्बरस्यान्त बिम्बितान्याम्बरोपमः। त्रिजगज्जनतास्थानसंग्रहावाप्तवैभवः।।२८२।।
यस्योपरितले मुक्ता गुह्यकैः कुसुमोत्कराः। विदधुस्तारकाशंकामधोभाजां नृणां हृदि।।२८३।।
यत्र मत्तरु वद्भृंगसंसूच्याः कुसुमस्रजः। न म्लानिमीयुर्जैनांघ्रिच्छायाशैत्याश्रयादिव।।२८४।।
नीलोत्पलोपहारेषु निलीना भ्रमरावलिः। विरुतै रगमद् व्यक्तिं यत्र साम्यादलक्षिता।।२८५।।

जो आकाश स्फटिक से बनी हुई हैं; जिनकी निर्मल कान्ति चारों ओर फैल रही है और जो प्रथम पीठ के किनारे तक लगी हुई हैं ऐसी वे दीवालें चाँदनी के समान आचरण कर रहीं थीं।।२७८।।

वे दीवालें अतिशय पवित्र थीं, समस्त वस्तुओं के प्रतिबिम्ब दिखला रहीं थीं और बड़े भारी ऐश्वर्य से सहित थीं, इसलिए ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो जगत् के भर्ता भगवान् वृषभदेव की श्रेष्ठ विद्याएँ हों।।२७९।।

उन दीवालों के ऊपर रत्नमय खम्भों से खड़ा हुआ और आकाशस्फटिकमणि का बना हुआ बहुत बड़ा भारी शोभायुक्त श्रीमण्डप बना हुआ था।।२८०।।

वह श्रीमण्डप वास्तव में श्रीमण्डप था क्योंकि वहाँ पर परमेश्वर भगवान् वृषभदेव ने मनुष्य, देव और धरेणेन्द्रों के समीप तीनों लोकों की श्री (लक्ष्मी) स्वीकृत की थी।।२८१।।

तीनों लोकों के समस्त जीवों को स्थान दे सकने के कारण जिसे बड़ा भारी वैभव प्राप्त हुआ है ऐसा वह श्रीमण्डप आकाश के अन्तभाग में ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो प्रतिबिम्बित हुआ दूसरा आकाश ही हो।

भावार्थ—उस श्रीमण्डप का ऐसा अतिशय था कि उसमें एक साथ तीनों लोकों के समस्त जीवों को स्थान मिल सकता था और वह अतिशय ऊँचा तथा स्वच्छ था।।२८२।।

उस श्रीमण्डप के ऊपर यक्षदेवों के द्वारा छोड़े हुए फूलों के समूह नीचे बैठे हुए मनुष्यों के हृदय में ताराओं की शंका कर रहे थे।।२८३।।

उस श्रीमण्डप में मदोन्मत्त शब्द करते हुए भ्रमरों के द्वारा सूचित होने वाली फूलों की मालाएँ मानो जिनेन्द्रदेव के चरण–कमलों की छाया की शीतलता के आश्रय से ही कभी म्लानता को प्राप्त नहीं होती थीं—कभी नहीं मुरझाती थीं।

भावार्थ—उस श्रीमण्डप में स्फटिकमणि की दीवालों पर जो सफेद फूलों की मालाएँ लटक रही थीं वे रंग की समानता के कारण अलग से पहचान में नहीं आती थीं परन्तु उनपर शब्द करते हुए जो काले–काले मदोन्मत्त भ्रमर बैठे हुए थे उनसे ही उनकी पहचान होती थी। वे मालाएँ सदा हरी–भरी रहती थीं—कभी मुरझाती नहीं थीं जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के चरण–कमलों की शीतल छाया का आश्रय पाकर ही नहीं मुरझाती हों।।२८४।।

उस श्रीमण्डप में नीलकमलों के उपहारों पर बैठी हुई भ्रमरों की पंक्ति रंग की सदृशता के कारण अलग से दिखाई नहीं देती थी केवल गुंजार शब्दों से प्रकट हो रही थी।।२८५।।

योजनप्रमिते यस्मिन् सम्ममुर्नृसुरासुराः। स्थिताः सुखमसंबाधमहो माहात्म्यमीशितुः।।२८६।।
यस्मिन् शुचिमणिप्रान्तमुपेता हंससन्तांतेः। गुणसादृश्ययोगेऽपि व्यज्यते स्म विकूजितैः।।२८७।।
यद्भित्तयः स्वसंक्रान्तजगत्त्रितयबिम्बिकाः। चित्रिता इव संरेजुर्जगच्छ्रीदर्पणश्रियः।।२८८।।
यदुत्सर्पत्प्रभाजालजलस्नपितमूर्तयः। तीर्थावगाहनं चक्रुरिव देवाः सदानवाः।।२८९।।
तद्वृद्धक्षेत्र मध्यस्था प्रथमा पीठिका बभौ। वैडूर्यरत्ननिर्माणा कुलाद्रिशिखरायिता।।२९०।।
तत्र षोडशसोपानमार्गाः स्युः षोडशान्तराः। महादिक्षु सभाकोष्ठप्रवेशेषु च विस्तृताः।।२९१।।
तां पीठिकामलं चक्रुरष्टमङ्गलसंपदः। धर्मचक्राणि चोढानि प्रांशु भिर्यक्षमूर्धभिः।।२९२।।
सहस्राराणि तान्युद्यद्रत्नरश्मीनि रेजिरे। भानुबिम्बानिवोद्यन्ति पीठिकोदयपर्वतात् ।।२९३।।
द्वितीयमभवत् पीठं तस्योपरि हिरण्मयम् । दिवाकरकरस्पर्धिवपुरुद्योतिताम्बरम् ।।२९४।।
तस्योपरितले रेजुर्दिक्ष्वष्टासु महाध्वजाः। लोकपाला इवोत्तुङ्गाः सुरेशामभिसम्मताः।।२९५।।

अहा, जिनेन्द्र भगवान् का कैसा अद्भुत माहात्म्य था कि केवल एक योजन लम्बे–चौड़े उस श्रीमण्डप में समस्त मनुष्य, सुर और असुर एक–दूसरे को बाधा न देते हुए सुख से बैठ सकते थे।।२८६।।

उस श्रीमण्डप में स्वच्छ मणियों के समीप आया हुआ हंसों का समूह यद्यपि उन मणियों के समान रंगवाला ही था–उन्हीं के प्रकाश में छिप गया था तथापि वह अपने मधुर शब्दों से प्रकट हो रहा था।।२८७।।

जिनकी शोभा जगत की लक्ष्मी के दर्पण के समान है ऐसी श्रीमण्डप की उन दीवालों में तीनों लोकों के समस्त पदार्थों के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे और उन प्रतिबिम्बों से वे दीवालें ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो उनमें अनेक प्रकार के चित्र ही खींचे गए हों।।२८८।।

उस श्रीमण्डप की फैलती हुई कान्ति के समुदाय रूपी जल से जिनके शरीर नहलाए जा रहे हैं ऐसे देव और दानव ऐसे जान पड़ते थे मानो किसी तीर्थ में स्नान ही कर रहे हों।।२८९।।

उसी श्रीमण्डप से घिरे क्षेत्र के मध्यभाग में स्थित पहली पीठिका सुशोभित हो रही थी, वह पीठिका वैडूर्यमणि की बनी हुई थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो कुलाचल का शिखर ही हो।।२९०।।

उस पीठिका पर सोलह जगह अन्तर देकर सोलह जगह ही बड़ी–बड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। चार जगह तो चार महादिशाओं अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में चार महावीथियों के सामने थीं और बारह जगह सभा के कोठों के प्रत्येक प्रवेश द्वार पर थीं।।२९१।।

उस पीठिका को अष्टमंगलद्रव्यरूपी सम्पदाएँ और यक्षों के ऊँचे–ऊँचे मस्तकों पर रखे हुए धर्मचक्र अलंकृत कर रहे थे।।२९२।।

जिनमें लगे हुए रत्नों की किरणें ऊपर की ओर उठ रही हैं ऐसे हजार–हजार आराओं वाले वे धर्मचक्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पीठिकारूपी उदयाचल से उदय होते हुए सूर्य के बिम्ब ही हों।।२९३।।

उस प्रथम पीठिका पर सुवर्ण का बना हुआ दूसरा पीठ था, जो सूर्य की किरणों के साथ स्पर्धा कर रहा था और आकाश को प्रकाशमान बना रहा था।।२९४।।

उस दूसरे पीठ के ऊपर आठ दिशाओं में आठ बड़ी–बड़ी ध्वजाएँ सुशोभित हो रही थीं, जो बहुत ऊँची थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो इन्द्रों को स्वीकृत आठ लोकपाल ही हों।।२९५।।

चक्रेभवृषभाम्भोजवस्त्रसिंहगरुत्मताम्। माल्यस्य च ध्वजा रेजुः सिद्धाष्टगुणनिर्मलाः।।२९६।।
नूनं पापपरागस्य सम्मार्जनमिव ध्वजाः। कुर्वन्ति स्म मरुद्धूतस्फुरदंशुकजृम्भितैः।।२९७।।
तस्योपरि स्फुरद्रत्नचिर्ध्वस्ततमस्तति। तृतीयमभवत् पीठं सर्वरत्नमयं पृथु।।२९८।।
त्रिमेखलमदः पीठं पराद्र्ध्यमणिनिर्मितम्। बभौ मेरुरिवोपास्त्यै भर्तुस्ताद्रप्यमाश्रितः।।२९९।।
स चक्रश्चक्रवर्तीव सध्वजाः सुरदन्तिवत्। भर्ममूर्तिर्महामेरुरिव पीठाद्रिरुद् बभौ।।३००।।
पुष्पप्रकरमाघ्रातुं निलीना यत्र षट्पदाः। हेमच्छायासमाक्रान्ताः सौवर्णा इव रेजिरे।।३०१।।
अधरीकृतनिःशेषभवनं भासुरद्यति। जिनस्येव वपुर्भाति यत् स्म देवासुरार्चितम्।।३०२।।
ज्योतिर्गणपरीतत्वात् सर्वोत्तर तयापि तत्। न्यक्चकार श्रियं मेरोर्धारणाच्च जगद्गुरोः।।३०३।।
ईदृक्त्रिमेखलं पीठमस्योपरि जिनाधिपः। त्रिलोकशिखरे सिद्धपरमेष्ठीव निर्बभौ।।३०४।।

चक्र, हाथी, बैल, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ और माला के चिह्न से सहित तथा सिद्ध भगवान् के आठ गुणों के समान निर्मल वे ध्वजाएँ बहुत अधिक सुशोभित हो रही थीं।।२९६।।

वायु से हिलते हुए देदीप्यमान वस्त्रों की फटकार से वे ध्वजाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो पापरूपी धूलिका सम्मार्जन ही कर रही हों अर्थात् पापरूपी धूलि को झाड़ ही रही हों।।२९७।।

उस दूसरे पीठ पर तीसरा पीठ था जो कि सब प्रकार के रत्नों से बना हुआ था, बड़ा भारी था और चमकते हुए रत्नों की किरणों से अन्धकार के समूह को नष्ट कर रहा था।।२९८।।

वह पीठ तीन कटनियों से युक्त था तथा श्रेष्ठ रत्नों से बना हुआ था इसलिए ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो उस पीठ का रूप धरकर सुमेरु पर्वत ही भगवान् की उपासना करने के लिए आया हो।।२९९।।

वह पीठ रूपी पर्वत चक्र सहित था इसलिए चक्रवर्ती के समान जान पड़ता था, ध्वजा सहित था इसलिए ऐरावत हाथी के समान मालूम होता था और सुवर्ण का बना हुआ था इसलिए महामेरू के समान सुशोभित हो रहा था।।३००।।

पुष्पों के समूह को सूँघने के लिए जो भ्रमर उस पीठ पर बैठे हुए थे उन पर सुवर्ण की छाया पड़ रही थी जिससे वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुवर्ण के ही बने हों।।३०१।।

जिसने समस्त लोक को नीचा कर दिया है, जिसकी कान्ति अतिशय देदीप्यमान है और जो देव तथा धरणेन्द्रों के द्वारा पूजित है ऐसा वह पीठ जिनेन्द्र भगवान् के शरीर के समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिनेन्द्र भगवान् के शरीर ने भी समस्त लोकों को नीचा कर दिया था, उसकी कान्ति भी अतिशय देदीप्यमान थी और वह भी देव तथा धरणेन्द्रों के द्वारा पूजित था।।३०२।।

अथवा वह पीठ सुमेरु पर्वत की शोभा धारण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार सुमेरु पर्वत ज्योतिर्गण अर्थात् ज्योतिषी देवों के समूह से घिरा हुआ है उसी प्रकार वह पीठ भी ज्योतिर्गण अर्थात् किरणों के समूह से घिरा हुआ था, जिस प्रकार सुमेरु पर्वत सर्वोत्तर अर्थात् सब क्षेत्रों से उत्तर दिशा में हैं उसी प्रकार वह पीठ भी सर्वोत्तर अर्थात् सबसे उत्कृष्ट था और जिस प्रकार सुमेरु पर्वत (जन्माभिषेक के समय) जगद्गुरु जिनेन्द्र भगवान् को धारण करता है उसी प्रकार वह पीठ भी (समवसरण भूमि में) जिनेन्द्र भगवान् को धारण कर रहा था।।३०३।।

इस प्रकार तीन कटनीदार वह पीठ था, उसके ऊपर विराजमान हुए जिनेन्द्र भगवान् ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे कि तीन लोक के शिखर पर विराजमान हुए सिद्ध परमेष्ठी सुशोभित होते हैं।।३०४।।

नभः स्फटिकसालस्य मध्यं योजनसम्मितम् । वनत्रयस्य रुन्द्रत्वं ध्वजरुद्धावनेरपि।।३०५।।
प्रत्येकं योजनं ज्ञेयं धूलीसालाच्च खातिका। गत्वा योजनमेकं स्याज्जिनदेशितविस्तृतिः।।३०६।।
नभः स्फटिकसालात्तु स्यादाराद् वनवेदिका। योजनार्धं तृतीयाच्च सालात् पीठं तदर्धगम् ।।३०७।।
क्रोशार्धं पीठमूर्ध्नः स्याद् विष्कम्भो मेखलेऽपरे। प्रत्येकं धनुषां रुन्द्रे स्यातामर्धाष्टमं शतम्।।३०८।।
क्रोशं रुन्द्रा महावीथ्यो भित्तयः स्वोच्छ्रितेर्मिताः। रौन्द्र्येणाष्टमभागेन प्राङ्निर्णीता तदुच्छ्रितिः।।३०९।।
अष्टदण्डोच्छ्रिता ज्ञेया जगती पीठमादिमम् । द्वितीयं च तदर्धेन मितोच्छ्रायं विदुर्बुधाः।।३१०।।
तावदुच्छ्रितमन्त्यं च पीठं सिंहासनोन्नतिः। धनुरेकमिहाम्नातं धर्मचक्रस्य चोच्छ्रितिः।।३११।।
इत्युक्तेन विभागेन जिनस्यास्थायिका स्थिता। तन्मध्ये तदवस्थानमितः शृणुत मन्मुखात् ।।३१२।।

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्युच्चैर्गणनायके निगदति व्यक्तं जिनास्थायिकां
प्रव्यक्तैर्मधुरैर्वचोभिरुचितैस्तत्त्वार्थसंबोधिभिः।
बुद्धान्तःकरणो विकासि वदनं बभ्रे नृपः श्रेणिकः
प्रीतः प्रातरिवाब्जिनीवनचयः प्रोन्मीलितं पङ्कजम्।।३१३।।

आकाश के समान स्वच्छ स्फटिकमणियों से बने हुए तीसरे कोट के भीतर का विस्तार एक योजन प्रमाण था, इसी प्रकार तीनों वन (लतावन, अशोक आदि के वन और कल्पवृक्ष वन) तथा ध्वजाओं से रुकी हुई भूमि का विस्तार भी एक–एक योजन प्रमाण था और परिखा भी धूलीसाल से एक योजन चल रह थी, यह सब विस्तार जिनेन्द्रदेव का कहा हुआ है।।३०५–३०६।।

आकाशस्फटिकमणियों से बने हुए कोट से कल्पवृक्षों के वन की वेदिका आधा योजन दूर थी और उसी साल से प्रथम पीठ पाव योजन दूरी पर था।।३०७।।

पहले पीठ के मस्तक का विस्तार आधे कोश का था, इसी प्रकार दूसरे और तीसरे पीठ की मेखलाएँ भी प्रत्येक साढ़े सात सौ धनुष चौड़ी थीं।।३०८।।

महावीथियों अर्थात् गोपुर–द्वारों के सामने के बड़े–बड़े रास्ते एक–एक कोश चौड़े थे और सोलह दीवालें अपनी ऊँचाई से आठवें भाग चौड़ी थीं। उन दीवालों की ऊँचाई का वर्णन पहले कर चुके हैं–तीर्थंकरों के शरीर की ऊँचाई से बारहगुनी।।३०९।।

प्रथम पीठ रूप जगती आठ धनुष ऊँची जाननी चाहिए और विद्वान् लोग द्वितीय पीठ को उससे आधा अर्थात् चार धनुष ऊँचा जानते हैं।।३१०।।

इसी प्रकार तीसरा पीठ भी चार धनुष ऊँचा था तथा सिंहासन और धर्मचक्र की ऊँचाई एक धनुष मानी गयी है।।३११।।

इस प्रकार ऊपर कहे अनुसार जिनेन्द्र भगवान् की समवसरण सभा बनी हुई थी। अब उसके बीच में जो जिनेन्द्र भगवान् के विराजमान होने का स्थान अर्थात् गन्धकुटी बनी हुई थी उसका वर्णन भी मेरे मुख से सुनो।।३१२।।

इस प्रकार जब गणनायक गौतम स्वामी ने अतिशय स्पष्ट, मधुर, योग्य और तत्त्वार्थ के स्वरूप का बोध कराने वाले वचनों से जिनेन्द्र भगवान् की समवसरण–सभा का वर्णन किया तब जिस प्रकार प्रातःकाल के समय कमलिनियों का समूह प्रफुल्लित कमलों को धारण करता है उसी प्रकार जिसका अन्तःकरण प्रबोध को प्राप्त

सभ्याः सभ्यतमामसभ्य कुमतध्वान्तच्छिदं भारतीं
श्रुत्वा तामपवाङ्मलां गणभृतः श्रीगौतमस्वामिनः।
सार्द्धं योगिभिरागमन् जिनपतौ प्रीतिं स्फुरल्लोचनाः
प्रोत्फुल्लाः कमलाकरा इव रवेरासाद्य दीप्तिश्रियम्।।३१४।।

मलिनीच्छन्दः

स जयति जिननाथो यस्य कैवल्यपूजां विततनिपुरुदग्रामद्भुतश्रीर्महेन्द्रः।।
सममरनिकायैरेत्य दूरात् प्रणम्रः समवसरणभूमिं पिप्रिये प्रेक्षमाणः।।३१५।।
किमयममरसर्गः किं नु जैनानुभावः किमुत नियतिरेषा किं स्विदैन्द्रः प्रभावः।
इति विततवितकैः कौतुकाद् वीक्ष्यमाणा जयति सुरसमाजैर्भर्तुरास्थानभूमिः।।३१६।।

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
भगवत्समवसरणवर्णनं नाम द्वाविंशं पर्व।। २२।।

हुआ है ऐसे श्रेणिक राजा ने अपने प्रफुल्लित मुख को धारण किया था अर्थात् गौतम स्वामी के वचन सुनकर राजा श्रेणिक का मुखरूपी कमल हर्ष से प्रफुल्लित हो गया था।।३१३।।

मिथ्यादृष्टियों के मिथ्यामत रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली, अतिशय योग्य और वचन सम्बन्धी दोषों से रहित गणधर गौतम स्वामी की उस वाणी को सुनकर सभा में बैठे हुए सब लोग मुनियों के साथ–साथ जिनेन्द्र भगवान् में परम प्रीति को प्राप्त हुए थे, उस समय उन सभी सभासदों के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो रहे थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्य की किरणरूपी लक्ष्मी का आश्रय पाकर फूले हुए कमलों के समूह ही हों।।३१४।।

जिनके केवलज्ञान की उत्तम पूजा करने का अभिलाषी तथा अद्भुत विभूति को धारण करने वाला इन्द्र चारों निकायों के देवों के साथ आकर दूर से ही नम्रीभूत हुआ था और समवसरण भूमि को देखता हुआ अतिशय प्रसन्न हुआ था ऐसे श्री जिनेन्द्रदेव सदा जयवन्त रहें।।३१५।।

क्या यह देवलोक की नयी सृष्टि है ? अथवा यह जिनेन्द्र भगवान् का प्रभाव है अथवा ऐसा नियोग ही है अथवा यह इन्द्र का ही प्रभाव है। इस प्रकार अनेक तर्क–वितर्क करते हुए देवों के समूह जिसे बड़े कौतुक के साथ देखते थे ऐसी वह भगवान् की समवसरण भूमि सदा जयवन्त रहे।।३१६।।

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिषष्टिलक्षण
महापुराण के संग्रह में समवसरण का वर्णन करने वाला
बाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ।।२२।।

त्रयोविंशं पर्व*

अथ त्रिमेखलस्यास्य मूर्ध्नि पीठस्य विस्तृते। स्फूरन्मणिविभाजालरचितामरकार्मुके।।१।।
सुरेन्द्रकरविक्षिप्तपुष्पप्रकरशोभिनि। हसतीव घनापायस्फुटत्तारकमम्बरम्।।२।।
चलच्चामरसंघातप्रतिबिम्बनिभागतैः। हंसैरिव सरोबुद्धया सेव्यमानतटे पृथौ।।३।।
मार्तण्डमण्डलच्छायाप्रस्पर्धिनि महर्द्धिके। स्वर्धुनीफेननीकाशैः स्फटिकैर्घटिते क्वचित्।।४।।
पद्मरागसमुत्सर्पन्मयूखैः क्वचिदासृते। जिनपादतलच्छायाशोणिम्ने वानुरञ्जिते।।५।।
शुचौ स्निग्धे मृदुस्पर्शे जिनाङ्घ्रिस्पर्शपावने। पर्यन्तरचितानेकमङ्गलद्रव्यसंपदि।।६।।
तत्र गन्धकुटीं पृथ्वीं तुङ्गशालोपशोभिनीम्। रैराड् निवेशयामास स्वर्विमानातिशायिनीम्।।७।।
त्रिमेखलाङ्किते पीठे सैषा गन्धकुटी बभौ। नन्दनादि वनश्रेणीत्रयाद् वोपरिचूलिका।।८।।
यथा सर्वार्थसिद्धिर्वा स्थिता त्रिदिवमूर्धनि। तथा गन्धकुटी दीप्रा पीठस्याधितलं बभौ।।९।।
नानारत्नप्रभोत्सर्पैर्यत्कूटैस्ततमम्बरम्। सचित्रमिव भाति स्म सेन्द्रचापमिवाथवा।।१०।।

अथानन्तर जो देदीप्यमान मणियों की कान्ति के समूह से अनेक इन्द्रधनुषों की रचना कर रहा है, जो स्वयं इन्द्र के हाथों से फैलाए हुए पुष्पों के समूह से सुशोभित हो रहा था और उससे जो ऐसा जान पड़ता है मानो मेघों के नष्ट हो जाने से जिसमें तारागण चमक रहे हैं ऐसे शरद्ऋतु के आकाश की ओर हँस ही रहा हो; जिस पर ढुरते हुए चमरों के समूह से प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे और उनसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो उसे सरोवर समझकर हंस ही उसके बड़े भारी तलभाग की सेवा कर रहे हों; जो अपनी कान्ति से सूर्यमण्डल के साथ स्पर्द्धा कर रहा था; बड़ी-बड़ी ऋद्धियों से युक्त था, और कहीं-कहीं पर आकाश-गंगा के फेन के समान स्फटिकमणियों से जड़ा हुआ था, जो कहीं-कहीं पर पद्मराग की फैलती हुई किरणों से व्याप्त हो रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र भगवान् के चरणतल की लाल-लाल कान्ति से ही अनुरक्त हो रहा हो; जो अतिशय पवित्र था, चिकना था, कोमल स्पर्श से सहित था, जिनेन्द्र भगवान् के चरणों के स्पर्श से पवित्र था और जिसके समीप में अनेक मंगलद्रव्यरूपी सम्पदाएँ रखी हुई थीं ऐसे उस तीन कटनीदार तीसरे पीठ के विस्तृत मस्तक अर्थात् अग्रभाग पर कुबेर ने गन्धकुटी बनायी। वह गन्धकुटी बहुत ही विस्तृत थी, ऊँचे कोट से शोभायमान थी और अपनी शोभा से स्वर्ग के विमानों का भी उल्लंघन कर रही थी।।१-७।।

तीन कटनियों से चिह्नित पीठ पर वह गन्धकुटी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो नन्दन वन, सौमनस वन और पाण्डुक वन इन तीन वनों के ऊपर सुमेरु पर्वत की चूलिका ही सुशोभित हो रही हो।।८।।

अथवा जिस प्रकार स्वर्गलोक के ऊपर स्थित हुई सर्वार्थसिद्धि सुशोभित होती है उसी प्रकार उस पीठ के ऊपर स्थित हुई वह अतिशय देदीप्यमान गन्धकुटी सुशोभित हो रही थी।।९।।

अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति को फैलाने वाले उस गन्धकुटी के शिखरों से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो अनेक चित्रों से सहित ही हो रहा हो अथवा इन्द्रधनुषों से युक्त ही हो रहा हो।।१०।।

---

* आदिपुराण भाग-१, पृ. ५४० से ५७२ तक।

योत्तुङ्गैः शिखरैर्बद्धजयकेतनकोटिभिः। भुजशाखाः प्रसार्येव नभोगानाजुहूषत।।११।।
त्रिभिस्तलैरुपेताया भुवनत्रितयश्रियः। प्रतिमेव बभौ व्योमसरोमध्येऽम्बुबिम्बता।।१२।।
स्थूलैर्मुक्तामयैर्जालैर्लम्बमानैः समन्ततः। महाब्धिभिरिवानीतैर्योपायनशतैरभात् ।।१३।।
हैमेर्जालैः क्वचित् स्थूलैरायतैर्या विदिद्युते। कल्पाङ्घ्रिपोद्भवैर्दीप्रैः प्रारोहैरिव लम्बितैः।।१४।।
रत्नाभरणमालाभिर्लम्बिता भिरितोऽमुतः। या बभौ स्वर्गलक्ष्म्येव प्रहितोपायनर्द्धिभिः।।१५।।
स्रग्भिराकृष्टगन्धान्धमाद्यन्मधुपकोटिभिः। जिनेन्द्रमिव तुष्टूषुरभाद्या मुखरीकृता।।१६।।
स्तुवत्सुरेन्द्रसंदृब्धगद्यपद्यस्तवस्वनैः। सरस्वतीव भाति स्म या विभुं स्तोतुमुद्यता।।१७।।
रत्नालोकैर्विसर्पद्भिर्या वृत्ताङ्गी व्यराजत। जिनेन्द्राङ्गप्रभालक्ष्म्या घटितेव महाद्युतिः।।१८।।
या प्रोत्सर्पद्भिराहूतमदालिकुलसंकुलैः। धूपैर्दिशामिवायामं प्रमित्सुस्ततधूमकैः।।१९।।
गन्धैर्गन्धमयीवासीत् सृष्टिः पुष्पमयीव च। पुष्पैर्धूपमयीवाभाद् धूपैर्या दिग्विसर्पिभिः।।२०।।

जिनपर करोड़ों विजयपताकाएँ बँधी हुई हैं ऐसे ऊँचे शिखरों से वह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती थी मानो अपने हाथों को फैलाकर देव और विद्याधरों को ही बुला रही हो।।११।।

तीनों पीठों सहित वह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाशरूपी सरोवर के मध्यभाग में जल में प्रतिबिम्बित हुई तीनों लोकों की लक्ष्मी की प्रतिमा ही हो।।१२।।

चारों ओर लटकते हुए बड़े–बड़े मोतियों की झालर से वह गन्धकुटी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो बड़े–बड़े समुद्रों ने उसे मोतियों के सैकड़ों उपहार ही समर्पित किए हों।।१३।।

कहीं–कहीं पर वह गन्धकुटी सुवर्ण की बनी हुई मोटी और लम्बी जाली से ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो कल्पवृक्षों से उत्पन्न होने वाले लटकते हुए देदीप्यमान अंकुरों से ही सुशोभित हो रही हो।।१४।।

जो स्वर्ग की लक्ष्मी के द्वारा भेजे हुए उपहारों के समान जान पड़ती थी ऐसी चारों ओर लटकती हुई रत्नमय आभरणों की माला से वह गन्धकुटी बहुत ही अधिक शोभायमान हो रही थी।।१५।।

वह गन्धकुटी पुष्पमालाओं से खिंचकर आए हुए गन्ध से अन्धे करोड़ों मदोन्मत्त भ्रमरों से शब्दायमान हो रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति ही करना चाहती हो।।१६।।

स्तुति करते हुए इन्द्र के द्वारा रचे हुए गद्य–पद्य रूप स्तोत्रों के शब्दों से शब्दायमान हुई वह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती थी मानो भगवान् का स्तवन करने के लिए उद्यत हुई सरस्वती हो।।१७।।

चारों ओर फैलते हुए रत्नों के प्रकाश से जिसके समस्त अंग ढके हुए हैं ऐसी वह देदीप्यमान गन्धकुटी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जिनेन्द्र भगवान् के शरीर की लक्ष्मी से ही बनी हो।।१८।।

जो अपनी सुगन्धि से बुलाए हुए मदोन्मत्त भ्रमरों के समूह से व्याप्त हो रहा है और जिसका धुआँ चारों ओर फैल रहा है ऐसी सुगन्धित धूप से वह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती थी मानो दिशाओं की लम्बाई ही नापना चाहती हो।।१९।।

सब दिशाओं में फैलती हुई सुगन्धि से वह गन्धकुटी ऐसी जान पड़ती थी मानो सुगन्धि से ही बनी हो, सब दिशाओं में फैले हुए फूलों से ऐसी मालूम होती थी मानो फूलों से ही बनी हो और सब दिशाओं में फैलते हुए धूप से ऐसी प्रतिभासित हो रही थी मानो धूप से ही बनी हो।।२०।।

सुगन्धिधूपनिःश्वासा सुमनोमालभारिणी। नानाभरणदीप्ताङ्गी या वधूरिव दिद्युते।।२१।।
धूपगन्धैर्जिनेन्द्राङ्गसौगन्ध्यबहलीकृतैः। सुरभीकृतविश्वार्थ्यां याधाद् गन्धकुटीश्रुतिम्।।२२।।
गन्धानामिव या सूतिर्भासां येवाधिदेवता। शोभानां प्रसवक्ष्मेव या लक्ष्मीमधिकां दधे।।२३।।
धनुषां षद्शतीमेषा विस्तीर्णा यावदायता। विष्कम्भात् साधिकोच्छ्राया मानोन्मानप्रमान्विता।।२४।।

विद्युन्मालावृत्तम्

तस्या मध्ये सैहं पीठं नानारत्नव्राताकीर्णम् । मेरोः शृङ्गं न्यक्कुर्वाणं चक्रे शक्रादेशाद् वित्तेट्।।२५।।
भानुह्रेपिं श्रीमद्धैमं तुङ्गं भक्त्या जिष्णुं भक्तुम् । मेरुः शुङ्गं स्वं वा निन्ये पीठव्याजाद् दीप्रं भासा।।२६।।

समानिकावृत्तम्

यत्प्रसर्पदंशुदष्टदिङ्मुखं महर्द्धिभासि। चारुरत्नसारमूर्ति भासते स्म नेत्रहारि।।२७।।
पृथुप्रदीप्तदेहकं स्फुरत्प्रभाप्रतानकम् । परार्ध्यरत्नभासुरं सुराद्रिहासि यद् बभौ।।२८।।

अथवा वह गन्धकुटी स्त्री के समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्री का निःश्वास सुगन्धित होता है उसी प्रकार उस गन्धकुटी में जो धूप से सुगन्धित वायु बह रहा था वही उसके सुगन्धित निःश्वास के समान था। स्त्री जिस प्रकार फूलों की माला धारण करती है उसी प्रकार वह गन्धकुटी भी जगह–जगह मालाएँ धारण कर रही थी और स्त्री के अंग जिस प्रकार नाना आभरणों से देदीप्यमान होते हैं उसी प्रकार उस गन्धकुटी के अंग (प्रदेश) भी नाना आभरणों से देदीप्यमान हो रहे थे।।२१।।

भगवान् के शरीर की सुगन्धि से बढ़ी हुई धूप की सुगन्धि से उसने समस्त दिशाएँ सुगन्धित कर दी थीं इसलिए ही वह गन्धकुटी इस सार्थक नाम को धारण कर रही थी।।२२।।

अथवा वह गन्धकुटी ऐसी शोभा धारण कर रही थी मानो सुगन्धि को उत्पन्न करने वाली ही हो, कान्ति की अधिदेवता अर्थात् स्वामिनी ही हो और शोभाओं को उत्पन्न करने वाली भूमि ही हो।।२३।।

वह गन्धकुटी छह सौ धनुष चौड़ी थी, उतनी ही लम्बी थी और चौड़ाई में कुछ अधिक ऊँची थी इस प्रकार वह मान और उन्मान के प्रमाण से सहित थी।।२४।।

उस गन्धकुटी के मध्य में धनपति ने एक सिंहासन बनाया था जो कि अनेक प्रकार के रत्नों के समूह से जड़ा हुआ था और मेरु पर्वत के शिखर को तिरस्कृत कर रहा था।।२५।।

वह सिंहासन सुवर्ण का बना हुआ था, ऊँचा था, अतिशय शोभायुक्त था और अपनी कान्ति से सूर्य को भी लज्जित कर रहा था तथा ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करने के लिए सिंहासन के बहाने से सुमेरु पर्वत ही अपने कान्ति से देदीप्यमान शिखर को ले आया हो।।२६।।

जिससे निकलती हुई किरणों से समस्त दिशाएँ व्याप्त हो रही थीं, जो बड़े भारी ऐश्वर्य से प्रकाशमान हो रहा था, जिसका आकार लगे हुए सुन्दर रत्नों से अतिशय श्रेष्ठ था और जो नेत्रों को हरण करने वाला था ऐसा वह सिंहासन बहुत ही शोभायमान हो रहा था।।२७।।

जिसका आकार बहुत बड़ा और देदीप्यमान था, जिससे कान्ति का समूह निकल रहा था, जो श्रेष्ठ रत्नों से प्रकाशमान था और जो अपनी शोभा से मेरु पर्वत की भी हँसी करता था ऐसा वह सिंहासन बहुत अधिक सुशोभित हो रहा था।।२८।।

अनुष्टुप्

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानादितीर्थकृत्। चतुर्भिरङ्गुलैः स्वेन महिम्ना स्पृष्टतत्तलः।।२९।।
तत्रासीनं तमिन्द्राद्याः परिचेरुर्महेज्यया। पुष्पवृष्टिं प्रवर्षन्तो नभोमार्गाद् घना इव।।३०।।
अपप्तत्कौसुमी वृष्टिः प्रोर्णुवाना नभोऽङ्गणम्। दृष्टिमालेव मत्तालिमालावाचालिता नृणाम्।।३१।।
द्विषड्योजनभूभागमामुक्ता सुरवारिदैः। पुष्पवृष्टिः पतन्ती सा व्यधाच्चित्रं रजस्ततम्।।३२।।

चित्रपदावृत्तम्

वृष्टिरसौ कुसुमानां तुष्टिकरी प्रमदानाम्। दृष्टिततीरनुकृत्य स्रष्टुरपप्तदुपान्ते।।३३।।
षट्पदवृन्दविकीर्णैः पुष्परजोभिरुपेता। वृष्टिरमर्त्यविसृष्टा सौमनसी रुरुचेऽसौ।।३४।।
शीतलैर्वारिभिर्गाङ्गैरार्द्रिता कौसुमी वृष्टिः। षड्भेदैराकुलापप्तत् पत्युरग्रेततामोदा।।३५।।

भुजगशशिभृतावृत्तम्

मरकतहरितैः पत्रैर्मणिमयकुसुमैश्चित्रैः। मरुदुपविधुताः शाखाश्चिरमधृत महाशोकः।।३६।।

प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव उस सिंहासन को अलंकृत कर रहे थे। वे भगवान् अपने माहात्म्य से उस सिंहासन के तल से चार अंगुल ऊँचे अधर विराजमान थे उन्होंने उस सिंहासन के तलभाग को छुआ ही नहीं था।।२९।।

उसी सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान् की इन्द्र आदि देव बड़ी–बड़ी पूजाओं द्वारा परिचर्या कर रहे थे और मेघों की तरह आकाश से पुष्पों की वर्षा कर रहे थे।।३०।।

मदोन्मत्त भ्रमरों के समूह से शब्दायमान तथा आकाशरूपी आँगन को व्याप्त करती हुई पुष्पों की वर्षा ऐसी पड़ रही थी मानो मनुष्यों के नेत्रों की माला ही हो।।३१।।

देवरूपी बादलों द्वारा छोड़ी जाकर पड़ती हुई पुष्पों की वर्षा ने बारह योजन तक के भूभाग को पराग (धूलि) से व्याप्त कर दिया था, यह एक भारी आश्चर्य की बात थी।

भावार्थ–यहाँ पहले विरोध मालूम होता है क्योंकि वर्षा से तो धूलि शान्त होती है न कि बढ़ती है परन्तु जब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि वह पुष्पों की वर्षा थी और उसने भूभाग को पराग अर्थात् पुष्पों के भीतर रहने वाले केशर के छोटे–छोटे कणों से व्याप्त कर दिया था तब वह विरोध दूर हो जाता है यह विरोधाभास अलंकार कहलता है।३२।।

स्त्रियों को सन्तुष्ट करने वाली वह फूलों की वर्षा भगवान् के समीप में पड़ रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो स्त्रियों के नेत्रों की सन्तति ही भगवान् के समीप पड़ रही हो।।३३।।

भ्रमरों के समूहों के द्वारा फैलाए हुए फूलों के पराग से सहित तथा देवों के द्वारा बरसायी वह पुष्पों की वर्षा बहुत ही अधिक शोभायमान हो रही थी।।३४।।

जो गंगा नदी के शीतल जल से भीगी हुई है, जो अनेक भ्रमरों से व्याप्त है और जिसकी सुगन्धि चारों ओर फैली हुई है ऐसी वह पुष्पों की वर्षा भगवान् के आगे पड़ रही थी।।३५।।

भगवान् के समीप ही एक अशोकवृक्ष था जो कि मरकतमणि के बने हुए हरे–हरे पत्तों और रत्नमय चित्र–विचित्र फूलों से सहित था तथा मन्द–मन्द वायु से हिलती हुई शाखाओं को धारण कर रहा था।।३६।।

मदकलविरुतैर्भृङ्गैरपि परपुष्टविहङ्गैः। स्तुतिमिव भर्तुरशोको मुखरितदिक्कुरुते स्म।।३७।।

रुक्मवतीवृत्तम्

व्यायतशाखादोश्चलनैः स्वैर्नृत्तमथासौ कर्तुमिवाग्रे। पुष्पसमूहैरञ्जलिमिद्धं भर्तुरकार्षीद्व्यक्तमशोकः।।३८।।

पणववृत्तम्

रेजेऽशोकतरुरसौ रुन्धन्मार्गं व्योमचर महेशानाम्।
तन्वन्योजनविस्तृताः शाखा धुन्वन् शोकमयमदो ध्वान्तम्।।३९।।

उपस्थितावृत्तम्

सर्वा हरितो विटपैस्ततैः संमार्ष्टुमिवोद्यतधीरसौ। व्यायद्विकचैः कुसुमोत्करैः पुष्पोपहृतिं विदधद्द्रुमः।।४०।।

मयूरसारिणीवृत्तम्

वज्रमूलबद्धरत्न बुध्नं सज्जपाभरत्नचित्रसूनम्। मत्तकोकिलालिसेव्यमेनं चक्रुरग्र्यमङ्घ्रिपं सुरेशाः।।४१।।

छन्द (?)

छत्रं धवलं रुचिमत्कान्त्या चान्द्रीमजयद्रुचिरां लक्ष्मीम्।
त्रेधा रुरुचे शशभृन्नूनं सेवां विदधज्जगतां पत्युः।।४२।।

वह अशोकवृक्ष मद से मधुर शब्द करते हुए भ्रमरों और कोयलों से समस्त दिशाओं को शब्दायमान कर रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् की स्तुति ही कर रहा हो।।३७।।

वह अशोकवृक्ष अपनी लम्बी–लम्बी शाखारूपी भुजाओं के चलाने से ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के आगे नृत्य ही कर रहा हो और पुष्पों के समूहों से ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के आगे देदीप्यमान पुष्पाञ्जलि ही प्रकट कर रहा हो।।३८।।

आकाश में चलने वाले देव और विद्याधरों के स्वामियों का मार्ग रोकता हुआ अपनी एक योजन विस्तार वाली शाखाओं को फैलाता हुआ और शोकरूपी अन्धकार को नष्ट करता हुआ वह अशोकवृक्ष बहुत ही अधिक शोभायमान हो रहा था।।३९।।

फूले हुए पुष्पों के समूह से भगवान् के लिए पुष्पों का उपहार समर्पण करता हुआ वह वृक्ष अपनी फैली हुई शाखाओं से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो उन फैली हुई शाखाओं से दिशाओं को साफ करने के लिए ही तैयार हुआ हो।।४०।।

जिसकी जड़ वज्र की बनी हुई थी, जिसका मूल भाग रत्नों से देदीप्यमान था, जिसके अनेक प्रकार के पुष्प जपापुष्प की कान्ति के समान पद्मरागमणियों के बने हुए थे और जो मदोन्मत्त कोयल तथा भ्रमरों से सेवित था ऐसे उस वृक्ष को इन्द्र ने सब वृक्षों में मुख्य बनाया था।।४१।।

भगवान् के ऊपर जो देदीप्यमान सफेद छत्र लगा हुआ था उसने चन्द्रमा की लक्ष्मी को जीत लिया था और वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो तीनों लोकों के स्वामी भगवान् वृषभदेव की सेवा करने के लिए तीन रूप धारण कर चन्द्रमा ही आया हो।।४२।।

छत्राकारं दधदिव चान्द्रं बिम्बं शुभ्रं छत्रत्रितयमदो बाभासत्।
मुक्ताजालैः किरणसमूहैर्वा स्वैश्चक्रे सुत्रामवचनतो रैराट्।।४३।।

इन्द्रवज्रावृत्तम्

रत्नैरनेकैः खचितं परार्घ्यैरुद्यद्दिनेशश्रियमाहसद्भिः।
छत्रत्रयं तद्रुरुचेऽतिवीध्रं चन्द्रार्कसंपर्कविनिर्मितं वा।।४४।।
सन्मौक्तिकं वार्द्धिजलायमानं सश्रीकमिन्दुद्युतिहारि हारि।
छत्रत्रयं तल्लसदिन्द्रवज्रं दध्रे परां कान्तिमुपेत्य नाथम्।।४५।।

वंशस्थवृत्तम

किमेष हासस्तनुते जगच्छ्रियाः किमु प्रभोरुल्लसितो यशोगणः।
उत स्मयो धर्मनृपस्य निर्मलो जगत्त्रयानन्दकरो नु चन्द्रमाः।।४६।।
इति प्रतर्कं जनतामनस्वदो वितन्वदिद्धा तपवारणत्रयम्।
बभौ विभोर्मोहविनिर्जयर्जितं यशोमयं बिम्बमिव त्रिधास्थितम्।।४७।।

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

पयः पयोधेरिव वीचिमाला प्रकीर्णकानां समितिः समन्तात्।
जिनेन्द्रपर्यन्तनिषेविपक्षकरोत्करैराविरभूद्विधूता।।४८।।

वे तीनों सफेद छत्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो छत्र का आकार धारण करने वाले चन्द्रमा के बिम्ब ही हों, उनमें जो मोतियों के समूह लगे हुए थे वे किरणों के समान जान पड़ते थे इस प्रकार उस छत्रत्रितय को कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से बनाया था।।४३।।

वह छत्रत्रय उदय होते हुए सूर्य की शोभा की हँसी उड़ाने वाले अनेक उत्तम–उत्तम रत्नों से जड़ा हुआ था तथा अतिशय निर्मल था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रमा और सूर्य के सम्पर्क (मेल) से ही बना हो।।४४।।

जिसमें अनेक उत्तम मोती लगे हुए थे, जो समुद्र के जल के समान जान पड़ता था, बहुत ही सुशोभित था, चन्द्रमा की कान्ति को हरण करने वाला था, मनोहर था और जिसमें इन्द्रनीलमणि भी देदीप्यमान हो रहे थे ऐसा वह छत्रत्रय भगवान् के समीप आकर उत्कृष्ट कान्ति को धारण कर रहा था।।४५।।

क्या यह जगत्रूपी लक्ष्मी का हास फैल रहा है ? अथवा भगवान् का शोभायमान यशरूपी गुण है ? अथवा धर्म रूपी राजा का मन्द हास्य है ? अथवा तीनों लोकों में आनन्द करने वाला कलंकरहित चन्द्रमा है, इस प्रकार लोगों के मन में तर्क–वितर्क उत्पन्न करता हुआ वह देदीप्यमान छत्रत्रय ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मोहरूपी शत्रु को जीत लेने से इकट्ठा हुआ तथा तीन रूप धारण कर ठहरा हुआ भगवान् के यश का मण्डल ही हो।।४६–४७।।

जिनेन्द्र भगवान् के समीप में सेवा करने वाले यक्षों के हाथों के समूहों से जो चारों ओर चमरों के समूह ढुराए जा रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो क्षीरसागर के जल के समूह ही हों।।४८।।

उपजातिवृत्तम्

पीयूषशल्कैरिव निर्मिताङ्गी चान्द्रैरिवांशैर्घटिताऽमलश्रीः।
जिनाङ्घ्रिपर्यन्तमुपेत्य भेजे प्रकीर्णकाली गिरिनिर्झराभाम्।।४९।।
जिनेन्द्रमासेवितुमागतेयं दिवापगा स्यादिति तर्क्यमाणा।
पङ्क्तिर्विरेजे शुचिचामराणां यक्षैः सलीलं परिवीजितानाम्।।५०।।
जैनी किमङ्गद्युतिरुद्धवन्ती किमिन्दुभासां ततिरापतन्ती।
इति स्म शङ्कां तनुते पतन्ती सा चामराली शरदिन्दुशुभ्रा।।५१।।
सुधामलाङ्गी रुचिरा विरेजे सा चामराणां ततिरुल्लसन्ती।
क्षीरोदफेनावलीरुच्चलन्ती मरुद्विधूतेव समिद्धकान्तिः।।५२।।
लक्ष्मीं परामाप परा पतन्ती शशाङ्कपीयूषसमानकान्तिः।
सिषेविषुस्तं जिनमाव्रजन्ती पयोधिवेलेव सुचामराली।।५३।।

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

पतन्ति हंसाः किमु मेघमार्गात् किमुत्पतन्तीश्वरतो यशांसि।
विशङ्क्यमानानि सुरैरितीशः पेतुः समन्तात् सितचामराणि।।५४।।

अत्यन्त निर्मल लक्ष्मी को धारण करने वाला वह चमरों का समूह ऐसा जान पड़ता था मानो अमृत के टुकड़ों से ही बना हो अथवा चन्द्रमा के अंशों से ही रचा गया हो तथा वही चमरों के समूह भगवान् के चरण- कमलों के समीप पहुँचकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किसी पर्वत से झरते हुए निर्झर ही हों।।४९।।

यक्षों के द्वारा लीलापूर्वक चारों ओर ढुराए जाने वाले निर्मल चमरों की वह पङ्क्ति बड़ी ही सुशोभित हो रही थी और लोग उसे देखकर ऐसा तर्क किया करते थे मानो वह आकाशगङ्गा ही भगवान् की सेवा के लिए आयी हो।।५०।।

शरद्ऋतु के चन्द्रमा के समान सफेद पड़ती हुई वह चमरों की पंक्ति ऐसी आशंका उत्पन्न कर रही थी कि क्या यह भगवान् के शरीर की कान्ति ही ऊपर को जा रही है अथवा चन्द्रमा की किरणों का समूह ही नीचे की ओर पड़ रहा है।।५१।।

अमृत के समान निर्मल शरीर को धारण करने वाली और अतिशय देदीप्यमान वह ढुरती हुई चमरों की पंक्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो वायु से कम्पित तथा देदीप्यमान कान्ति को धारण करने वाली हिलती हुई और समुद्र के फेन की पंक्ति ही हो।।५२।।

चन्द्रमा और अमृत के समान कान्ति वाली ऊपर से पड़ती हुई वह उत्तम चमरों की पंक्ति बड़ी उत्कृष्ट शोभा को प्राप्त हो रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करने की इच्छा से आती हुई क्षीरसमुद्र की वेला ही हो।।५३।।

क्या ये आकाश से हंस उतर रहे हैं अथवा भगवान् का यश ही ऊपर को जा रहा है इस प्रकार देवों के द्वारा शंका किए जाने वाले वे सफेद चमर भगवान् के चारों ओर ढुराए जा रहे थे।।५४।।

उपजातिः

यक्षैरुदक्षिप्यत चामराली दक्षैः सलीलं कमलायताक्षैः।
न्यक्षेपि भर्तुर्विततावलक्षा तरङ्गमालेव मरुद्भिरब्धेः।।५५।।
जिनेन्द्रभक्त्या सुरनिम्नगेव तद्व्याजमेत्याम्बरतः पतन्ती।
सा निर्बभौ चामरपङ्क्तिरुच्चैर्ज्योत्स्नेव भव्योरुकुमुद्वतीनाम् ।।५६।।
इत्याप्ततोषैः स्फुरदक्षयक्षैः प्रवीज्यमानानि शशाङ्कभांसि।
रेजुर्जगन्नाथगुणोत्करैर्वा स्पर्धा वितन्वन्त्यधिचामराणि।।५७।।
लसत्सुधाराशिविनिर्मलानि तान्यप्रमेयद्युतिकान्तिभाञ्जि।
विभोर्जगत्प्राभवमद्वितीयं शशंसुरुच्चैश्चमरीरुहाणि।।५८।।
लक्ष्मीसमालिङ्गितवक्षसोऽस्य श्रीवृक्षचिह्नं दधतो जिनेशः।
प्रकीर्णकानाममितद्युतीनां धीन्द्राश्चतुः षष्टिमुदाहरन्ति।।५९।।
जिनेश्वराणाभिति चामराणि प्रकीर्तितानीह सनातनानाम्।
अर्धार्धमानानि भवन्ति तानि चक्रेश्वराद्यावदसौ सुराजा।।६०।।

तोटकवृत्तम्

सुरदुन्दुभयो मधुध्वनयो निनदन्ति सदा स्म नभोविवरे।
जलदागमशङ्किभिरुन्मदिभिः शिखिभिः परिवीक्षितपद्धतयः।।६१।।

जिस प्रकार वायु समुद्र के आगे अनेक लहरों के समूह उठाता रहता है उसी प्रकार कमल के समान दीर्घ नेत्रों को धारण करने वाले चतुर यक्ष भगवान् के आगे लीलापूर्वक विस्तृत और सफेद चमरों के समूह उठा रहे थे अर्थात् ऊपर की ओर ढोर रहे थे।।५५।।

अथवा वह ऊँची चमरों की पंक्ति ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो उन चमरों का बहाना प्राप्त कर जिनेन्द्र भगवान् की भक्तिवश आकाशगंगा ही आकाश से उतर रही हो अथवा भव्य जीवरूपी कुमुदिनियों को विकसित करने के लिए चाँदनी ही नीचे की ओर आ रही हो।।५६।।

इस प्रकार जिन्हें अतिशय संतोष प्राप्त हो रहा है और जिनके नेत्र प्रकाशमान हो रहे हैं ऐसे यक्षों के द्वारा ढुराए जाने वाले वे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्ति के धारक चमर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भगवान् के गुणसमूहों के साथ स्पर्धा ही कर रहे हों।।५७।।

शोभायमान अमृत की राशि के समान निर्मल और अपरिमित तेज तथा कान्ति को धारण करने वाले वे चमर भगवान् वृषभदेव के अद्वितीय जगत् के प्रभुत्व को सूचित कर रहे थे।।५८।।

जिनका वक्षःस्थल लक्ष्मी से आलिंगित है और जो श्रीवृक्ष का चिह्न धारण करते हैं ऐसे श्री जिनेन्द्रदेव के अपरिमित तेज को धारण करने वाले उन चमरों की संख्या विद्वान् लोग चौंसठ बतलाते हैं।।५९।।

इस प्रकार सनातन भगवान् जिनेन्द्रदेव के चौंसठ चमर कहे गए हैं और वे ही चमर चक्रवर्ती से लेकर राजा पर्यन्त आधे–आधे होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती के बत्तीस, अर्धचक्री के सोलह, मण्डलेश्वर के आठ, अर्धमण्डलेश्वर के चार, महाराज के दो और राजा के एक चमर होता है।।६०।।

इसी प्रकार उस समय वर्षाऋतु की शंका करते हुए मदोन्मत्त मयूर जिनका मार्ग बड़े प्रेम से देख रहे थे ऐसे देवों के दुन्दुभी मधुर शब्द करते हुए आकाश में बज रहे थे।।६१।।

पणवस्तुणवैः कलमन्द्ररुतैः सहकाहलशङ्खमहापटहैः।
ध्वनिरुत्ससृजे कुकुमां विवरं मुखरं विदधत् पिदधच्च नभः।।६२।।
घनकोणहताः सुरपाणविकैः कुपिता इव ते द्युसदां पटहाः।
ध्वनिमुत्ससृजुः किमहो वठराः परिताडयथेति विसृष्टगिरः।।६३।।
ध्वनिरम्बुमुचां किमयं स्फुरति क्षुभितोऽब्धिरुतस्फुरदूर्भिरवः।
कृततर्कमिति प्रसरन् जयतात् सुरतूर्यरवो जिनभर्तु रसौ।।६४।।
प्रभया परितो जिनदेहभुवा जगती सकला समवादिसृतेः।
रुरुचे ससुरासुरमर्त्यजनाः किमिवाद्भुतमीदृशि धाम्नि विभोः।।६५।।
तरुणार्करुचिं नु तिरोदधति सुरकोटिमहांसि नु निर्धुनती।
जगदेकमहोदयमासृजति प्रथते स्म तदा जिनदेहरुचिः।।६६।।
जिनदेहरुचावमृताब्धिशुचौ सुरदानवमर्त्यजना ददृशुः।
स्वभवान्तरसप्तकमात्तमुदो जगतो बहु मङ्गलदर्पणके।।६७।।
विधुमाशु विलोक्य नु विश्वसृजो गतमातपवारणतां त्रितयीम्।
रविरिद्धवपुः स पुराणकविं समशिश्रियदङ्गविभानिभतः।।६८।।

जिनका शब्द अत्यन्त मधुर और गम्भीर था ऐसे पणव, तुणव, काहल, शंख और नगाड़े आदि बाजे समस्त दिशाओं के मध्यभाग को शब्दायमान करते हुए तथा आकाश को आच्छादित करते हुए शब्द कर रहे थे।।६२।।

देवरूप शिल्पियों के द्वारा मजबूत दण्डों से ताड़ित हुए वे देवों के नगाड़े जो शब्द कर रहे थे उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कुपित होकर स्पष्ट शब्दों में यही कह रहे हों कि अरे दुष्टों, तुम लोग जोर–जोर से क्यों मार रहे हो।।६३।।

क्या यह मेघों की गर्जना है ? अथवा जिसमें उठती हुई लहरें शब्द कर रही हैं ऐसा समुद्र ही क्षोभ को प्राप्त हुआ है ? इस प्रकार तर्क–वितर्क कर चारों ओर फैलता हुआ भगवान् के देवदुन्दुभियों का शब्द सदा जयवन्त रहे।।६४।।

सुर, असुर और मनुष्यों से भरी हुई वह समवसरण की समस्त भूमि जिनेन्द्र भगवान् के शरीर से उत्पन्न हुई तथा चारों ओर फैली हुई प्रभा अर्थात् भामण्डल से बहुत ही सुशोभित हो रही थी सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् के ऐसे तेज में आश्चर्य ही क्या है।।६५।।

उस समय वह जिनेन्द्र भगवान् के शरीर की प्रभा मध्याह्न के सूर्य की प्रभा को तिरोहित करती हुई अपने प्रकाश में उसका प्रकाश छिपाती हुई, करोड़ों देवों के तेज को दूर हटाती हुई और लोक में भगवान् का बड़ा भारी ऐश्वर्य प्रकट करती हुई चारों ओर फैल रही थी।।६६।।

अमृत के समुद्र के समान निर्मल और जगत् को अनेक मंगल करने वाले दर्पण के समान, भगवान् के शरीर की उस प्रभा (प्रभामंडल) में सुर, असुर और मनुष्य लोग प्रसन्न होकर अपने सात–सात भव देखते थे।।६७।।

'चन्द्रमा शीघ्र ही भगवान् के छत्रत्रय की अवस्था को प्राप्त हो गया है' यह देखकर ही मानो अतिशय देदीप्यमान सूर्य भगवान् के शरीर की प्रभा के छल से पुराण कवि भगवान् वृषभदेव की सेवा करने लगा था।

भावार्थ— भगवान का छत्रत्रय चन्द्रमा के समान था और प्रभामण्डल सूर्य के समान था।।६८।।

–दोधकवृत्तम् –

दिव्यमहाध्वनिरस्य मुखाब्जान्मेघरवानुकृतिर्निरगच्छत्।
भव्यमनोगतमोहतमोघ्नन्नद्युतदेष यथैव तमोऽरिः।।६९।।
एकतयोऽपि च सर्वनृभाषाः सोऽन्तरनेष्ट बहूश्च कुभाषाः।
अप्रतिपत्तिमपास्य च तत्त्वं बोधयति स्म जिनस्य महिम्ना।।७०।।
एकतयोऽपि तथैव जलौघश्चित्ररसौ भवति द्रुमभेदात्।
पात्रविशेषवशाच्च तथायं सर्वविदो ध्वनिराप बहुत्वम्।।७१।।
एकतयोऽपि यथा स्फटिकाश्मा यद्यदुपाहितमस्य विभासम्।
स्वच्छतया स्वयमप्यनुधत्ते विश्वबुधोऽपि तथा ध्वनिरुच्चैः।।७२।।
देवकृतो ध्वनिरित्यसदेतद्देवगुणस्य तथा विहतिः स्यात्।
साक्षर एव च वर्णसमूहान्नैव विनार्थगतिर्जगति स्यात्।।७३।।

शालिनीवृत्तम्

इत्थंभूतां देवराड्विश्वभर्तुर्भक्त्या देवैः कारयामास भूतिम्।
दिव्यास्थानीं देवराजोपसेव्यामध्यास्तैनां श्रीपतिर्विश्वदृश्वा।।७४।।

भगवान् के मुखरूपी कमल से बादलों की गर्जना का अनुकरण करने वाली अतिशय युक्त महादिव्यध्वनि निकल रही थी और वह भव्य जीवों के मन में स्थित मोहरूपी अंधकार को नष्ट करती हुई सूर्य के समान सुशोभित हो रही थी।।६९।।

यद्यपि वह दिव्यध्वनि एक प्रकार की थी तथापि भगवान् के माहात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं को अपने अन्तर्भूत कर रही थी अर्थात् सर्वभाषा रूप परिणमन कर रही थी और लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें तत्त्वों का बोध करा रही थी।।७०।।

जिस प्रकार एक ही प्रकार का जल का प्रवाह वृक्षों के भेद से अनेक रसवाला हो जाता है उसी प्रकार सर्वज्ञदेव की वह दिव्यध्वनि भी पात्रों के भेद से अनेक प्रकार की हो जाती थी।।७१।।

अथवा जिस प्रकार स्फटिकमणि एक ही प्रकार का होता है तथापि उसके पास जो–जो रंगदार पदार्थ रख दिए जाते हैं वह अपनी स्वच्छता से अपने आप उन–उन पदार्थों के रंगों को धारण कर लेता है उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान् की उत्कृष्ट दिव्यध्वनि भी यद्यपि एक प्रकार की होती है तथापि श्रोताओं के भेद से वह अनेक रूप धारण कर लेती है।।७२।।

कोई कोई लोग ऐसा कहते हैं कि वह दिव्यध्वनि देवों के द्वारा की जाती है परन्तु उनका वह कहना मिथ्या है, क्योंकि वैसा मानने पर भगवान् के गुण का घात हो जाएगा अर्थात् वह भगवान् का गुण नहीं कहलाएगा, देवकृत होने से देवों का कहलाएगा। इसके सिवाय वह दिव्यध्वनि अक्षर रूप ही है क्योंकि अक्षरों के समूह के बिना लोक में अर्थ का परिज्ञान नहीं होता।।७३।।

इस प्रकार तीनों लोकों के स्वामी भगवान् वृषभदेव की ऐसी विभूति इन्द्र नेभक्तिपूर्वक देवों से करायी थी और अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी के अधिपति सर्वज्ञदेव इन्द्रों के द्वारा सेवनीय उस समवरण भूमि में विराजमान हुए थे।।७४।।

वातोर्विवृत्तम्

देवः साक्षात्सकलं वस्तुतत्त्वं विद्वान् विद्वज्जनतावन्दिताङ्घ्रिः।
हैमं पीठं हरिभिर्व्यात्तवक्त्रैरूढं भेजे जगतां बोधनाय।।७५।।

भ्रमरविलसितम्

दृष्ट्वा देवाः समवसृतिमहीं चक्रुर्भक्त्या परिगतिमुचिताम्।
त्रिःसंभ्रान्ताः प्रमुदितमनसो देवं द्रष्टुं विविशुरथ सभाम्।।७६।।

रथोद्धतावृत्तम्

व्योममार्गपरिरोधिकेतनैः संमिमार्जिषुमिवाखिलं नभः।
धूलिसालवलयेन वेष्टितां सन्ततामरधनुर्वृतामिव।।७७।।
स्तम्भशब्दपरमानवाग्मितान् या स्म धारयति खाग्रलङ्घिनः।
स्वर्गलोकमिव सेवितुं विभुं व्याजुहूषुरमलाग्रकेतुभिः।।७८।।

स्वागतावृत्तम्

स्वच्छवारिशिशिराः सरसीश्च याबिभर्विकसितोत्पलनेत्राः।
द्रष्टुमीशमसुरान्तकमुच्चैर्नेत्रपङ्क्तिमिव संघटयन्ती।।७९।।
खातिकां जलविहङ्गविरावैरुन्नतैश्च विततोर्भिकरौघैः।
या दधे जिनमुपासितुमिन्द्रान् आजुहूषुरिव निर्मलतोयाम्।।८०।।

जो समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं और अनेक विद्वान् लोग जिनके चरणों की वन्दना करते हैं ऐसे वे भगवान् वृषभदेव जगत् के जीवों को उपदेश देने के लिए मुँह फाड़े सिंहों के द्वारा धारण किए हुए सुवर्णमय सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए थे।।७५।।

इस प्रकार समवसरण भूमि को देखकर देव लोग बहुत ही प्रसन्नचित्त हुए, उन्होंने भक्तिपूर्वक तीन बार चारों ओर फिरकर उचित रीति से प्रदक्षिणाएँ दीं और फिर भगवान् के दर्शन के लिए उस सभा के भीतर प्रवेश किया।।७६।।

जो कि आकाशमार्ग को उल्लंघन करने वाली पताकाओं से ऐसी जान पड़ती थी मानो समस्त आकाश को झाड़कर साफ ही करना चाहती हो और धूलीसाल के घेरे से घिरी होने के कारण ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो निरन्तर इन्द्रधनुष से ही घिरी रहती हो।।७७।।

वह सभा आकाश के अग्रभाग को भी उल्लंघन करने वाले चार मानस्तम्भों को धारण कर रही थी तथा उन मानस्तम्भों पर लगी हुई निर्मल पताकाओं से ऐसी जान पड़ती थी मानो भगवान् की सेवा करने के लिए स्वर्गलोक को ही बुलाना चाहती हो।।७८।।

वह सभा स्वच्छ तथा शीतल जल से भरी हुई तथा नेत्रों के समान प्रफुल्लित कमलों से युक्त अनेक सरोवरियों को धारण किए हुए थी और उनसे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो जन्म, जरा मरणरूपी असुरों का अन्त करने वाले भगवान् वृषभदेव का दर्शन करने के लिए नेत्रों की पंक्तियाँ ही धारण कर रही हो।।७९।।

वह समवसरण भूमि निर्मल जल से भरी हुई, जलपक्षियों के शब्दों से शब्दायमान तथा ऊँची उठती हुई बड़ी–बड़ी लहरों के समूह से युक्त परिखा को धारण कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो लहरों के समूहरूपी हाथ ऊँचे उठाकर जलपक्षियों के शब्दों के बहाने भगवान् की सेवा करने के लिए इन्द्रों को ही बुलाना चाहती हो।।८०।।

वृत्तावृत्तम्

बहुविधवनलतिकाकान्तं मदमधुकरविरुतातोद्यम्।
वनमुपवहति च वल्लीनां स्मितमिव कुसुमचितं या स्म।।८१।।

सैनिकावृत्तम्

सालमाद्यमुच्चगोपुरोद्गमं संबिभर्ति भासुरं स्म हैमनम्।
हैमनार्कसौम्यदीप्तिमुन्नतिं भर्तुरक्षरैर्विनैव या प्रदर्शिका।।८२।।

छन्दः (?)

शरद्घनसमश्रियौ नर्तकी तडिद्विलसिते नृतेः शालिके।
दधाति रुचिरे स्म योपासितुं जिनेन्द्रमिव भक्तिसंभाविता।।८३।।

वंशस्थवृत्तम्

घटीद्वन्द्वमुपात्तधूपकं बभार या द्विस्तनयुग्मसन्निभम्।
जिनस्य भृत्यै श्रुतदेवता स्वयं तथा स्थितेव त्रिजगच्छ्रिया समम्।।८४।।

इन्द्रवंशावृत्तम्

रम्यं वनं भृङ्गसमूहसेवितं बभ्रे चतुः संख्यमुपात्तकान्तिकम्।
वासो विनीलं परिधाय तन्निभाद्वरेण्यमाराधयितुं स्थितेव या।।८५।।

वह भूमि अनेक प्रकार की नवीन लताओं से सुशोभित, मदोन्मत्त भ्रमरों के मधुर शब्दरूपी बाजों से सहित तथा फूलों से व्याप्त लताओं के वन धारण कर रही थी और उनसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मन्द-मन्द हँस ही रही हो।।८१।।

वह भूमि ऊँचे-ऊँचे गोपुरद्वारों से सहित देदीप्यमान सुवर्णमय पहले कोट को धारण कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो भगवान् वृषभदेव को हेमन्तऋतु के सूर्य के समान अतिशय सौम्य दीप्ति और उन्नति को अक्षरों के बिना ही दिखला रही हो।।८२।।

यह समवसरण भूमि प्रत्येक महावीथी के दोनों ओर शरद्ऋतु के बादलों के समान स्वच्छ और नृत्य करने वाली देवांगनाओं रूपी बिजलियों से सुशोभित दो-दो मनोहर नृत्यशालाएँ धारण कर रही थी और उनसे ऐसी जान पड़ती थी मानो भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान् की उपासना करने के लिए ही उन्हें धारण कर रही हो।।८३।।

वह भूमि नाट्यशालाओं के आगे दो-दो धूपघट धारण कर रही थी और उनसे ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान् की सेवा के लिए तीनों लोकों की लक्ष्मी के साथ-साथ सरस्वती देवी ही वहाँ बैठी हों और वे घट उन्हीं के स्तनयुगल हों।।८४।।

वह भूमि भ्रमरों के समूह से सेवित और उत्तम कान्ति को धारण करने वाले चार सुन्दर वन भी धारण कर रही थीं और उनसे ऐसी जान पड़ती थी मानो उन वनों के बहाने से नील वस्त्र पहनकर भगवान् की आराधना करने के लिए ही खड़ी हो।।८५।।

पुटवृत्तम्

उपवनसरसीनां बालपद्मैर्द्युयुवतिमुखशोभामाहसन्ती।
अधृत च वनवेदीं रत्नदीप्रां युवतिरिव कटीस्थां मेखलां या।।८६।।

जलोद्धतगतवृत्तम्

ध्वजाम्बरतताम्बरैः परिगता यका ध्वजनिवेशनैर्दशतयैः।
जिनस्य महिमानमारचयितुं नभोङ्गणमिवामृजत्यतिबभौ।।८७।।
खमिव सतारं कुसुमाढ्यं या वनमतिरम्यं सुरभूजानाम्।
सह वनवेद्या परतः सालाद्व्यरुचदिवोद्वा सुकृताराम्।।८८।।
अधृत च यस्मात्परतो दीप्रं स्फुरदुरुरत्नं भवनाभोगम्।
मणिमयदेहान्नव च स्तूपान् भुवनविजित्यायिव बद्धेच्छा।।८९।।
स्फटिकमयं या रुचिरं सालं प्रवितनमूर्तिः खमणिसुभित्तीः।
उपरितलं च त्रिजगद्ग्राहि व्यधृत परार्घ्यं सदनं लक्ष्म्याः।।९०।।

भुजङ्गप्रयातवृत्तम्

समं देववर्यैः पराध्यैरुशोभां प्रपश्यंस्तथैनां महीं विस्मिताक्षः।
प्रविष्टो महेन्द्रः प्रणष्टप्रमोहं जिनं द्रष्टुकामो महत्या विभूत्या।।९१।।

जिस प्रकार कोई तरुण स्त्री अपने कटिभाग पर करधनी धारण करती है उसी प्रकार उपवन की सरोवरियों में फूले हुए छोटे–छोटे कमलों से स्वर्गरूपी स्त्री के मुख की शोभा की ओर हँसती हुई वह समवसरण भूमि रत्नों से देदीप्यमान वनवेदिका को धारण कर रही थी।।८६।।

ध्वजाओं के वस्त्रों से आकाश को व्याप्त करने वाली दस प्रकार की ध्वजाओं से सहित वह भूमि ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो जिनेन्द्र भगवान् की महिमा रचने के लिए आकाशरूपी आँगन को साफ ही कर रही हो।।८७।।

ध्वजाओं की भूमि के बाद द्वितीय कोट के चारों ओर वनवेदिका सहित कल्पवृक्षों का अत्यन्त मनोहर वन था, वह फूलों से सहित था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओं से सहित आकाश ही हो। इस प्रकार पुण्य के बगीचे के समान उस वन को धारण कर वह समवसरणभूमि बहुत ही सुशोभित हो रही थी।।८८।।

उस वन के आगे वह भूमि, जिसमें अनेक प्रकार के चमकते हुए बड़े–बड़े रत्न लगे हुए हैं ऐसे देदीप्यमान मकानों को तथा मणियों से बने हुए नौ–नौ स्तूपों को धारण कर रही थी और उससे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो जगत् को जीतने के लिए ही उसने इच्छा की हो।।८९।।

उसके आगे वह भूमि स्फटिकमणि के बने हुए सुन्दर कोट को अतिशय विस्तार वाली आकाश स्फटिकमणि की बनी हुई दीवालों को और उन दीवालों के ऊपर बने हुए तथा तीनों लोकों के लिए अवकाश देने वाले अतिशय श्रेष्ठ श्रीमण्डप को धारण कर रही थी। ऐसी समवसरण सभा के भीतर इन्द्र ने प्रवेश किया था।।९०।।

इस प्रकार अतिशय उत्कृष्ट शोभा को धारण करने वाली उस समवसरण भूमि को देखकर जिसके नेत्र विस्मय को प्राप्त हुए हैं ऐसा वह सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र मोहनीय कर्म को नष्ट करने वाले जिनेन्द्र भगवान् के दर्शनों की इच्छा से बड़ी भारी विभूतिपूर्वक उत्तम–उत्तम देवों के साथ–साथ भीतर प्रविष्ट हुआ।।९१।।

अथापश्यदुच्चैर्ज्वलत्पीठमूर्ध्नि स्थितं देवदेवं चतुर्वक्त्रशोभम्।
सुरेन्द्रैर्नरेन्द्रैर्मुनीन्द्रैश्च वन्द्यं जगत्सृष्टिसंहारयोर्हेतुमाद्यम्।।९२।।
शरच्चन्द्रबिम्बप्रतिस्पर्धि वक्त्रं शरज्जोत्स्नयेव स्वकान्त्यातिकान्तम्।
नवोत्फुल्लनीलाब्जसंशोभि नेत्रं सरः साब्जनीलोत्पलं व्याहसन्तम्।।९३।।
ज्वलद्भासुराङ्गं स्फुरद्भानुबिम्बप्रतिद्वन्द्वि देहप्रभाब्धौ निमग्नम्।
समुत्तुङ्गकायं सुराराधनीयं महामेरुकल्पं सुचामीकराभम्।।९४।।
विशालोरुवक्षः स्थलस्थात्मलक्ष्म्या जगद्धर्तुभूयं विनोक्त्या ब्रुवाणम्।
निराहार्यवेषं निरस्तोरुभूषं निरक्षावबोधं निरुद्धात्मरोधम्।।९५।।
सहस्रांशुदीप्रप्रभा मध्यभाजं चलच्चामरौघैः सुरैर्वीज्यमानम्।
ध्वनद्दुन्दुभिध्वाननिर्घोषरम्यं चलद्वीचिवेलं पयोब्धिं यथैव।।९६।।
सुरोन्मुक्तपुष्पैस्ततप्रान्तदेशं महाशोकवृक्षाश्रितोत्तुङ्गमूर्तिम्।
स्वकल्पद्रुमोद्यानमुक्तप्रसूनस्ततान्तं सुराद्रिं रुचा ह्रेपयन्तम्।।९७।।

अथानन्तर जो ऊँची और देदीप्यमान पीठिका के ऊपर विराजमान थे, देवों के भी देव थे, चारों ओर दीखने वाले चार मुखों की शोभा से सहित थे, सुरेन्द्र, नरेन्द्र और मुनीन्द्रों के द्वारा वन्दनीय थे, जगत् की सृष्टि और संहार के मुख्य कारण थे[१]। जिनका मुख शरद्ऋतु के चन्द्रमा के साथ स्पर्धा कर रहा था, जो शरद्ऋतु की चाँदनी के समान अपनी कान्ति से अतिशय शोभायमान थे, जिनके नेत्र नवीन फूले हुए नील कमलों के समान सुशोभित थे और उनके कारण जो सफेद तथा नीलकमलों से सहित सरोवर की हँसी करते हुए से जान पड़ते थे। जिनका शरीर अतिशय प्रकाशमान और देदीप्यमान था, जो चमकते हुए सूर्यमण्डल के साथ स्पर्धा करने वाली अपने शरीर की प्रभारूपी समुद्र में निमग्न हो रहे थे, जिनका शरीर अतिशय ऊँचा था, जो देवों के द्वारा आराधना करने योग्य थे, सुवर्ण जैसी उज्ज्वल कान्ति के धारण करने वाले थे और इसीलिए जो महामेरु के समान जान पड़ते थे। जो अपने विशाल वक्षःस्थल पर स्थित रहने वाली अनन्तचतुष्टय रूपी आत्मलक्ष्मी से शब्दों के बिना ही तीनों लोकों के स्वामित्व को प्रकट कर रहे थे, जो कवलाहार से रहित थे, जिन्होंने सब आभूषण दूर कर दिए थे, जो इन्द्रिय ज्ञान से रहित थे, जिन्होंने ज्ञानावरण आदि कर्मों को नष्ट कर दिया था। जो सूर्य के समान देदीप्यमान रहने वाली प्रभा के मध्य में विराजमान थे, देवलोग जिनपर अनेक चमरों के समूह ढुरा रहे थे, बजते हुए दुन्दुभिबाजों के शब्दों से जो अतिशय मनोहर थे और इसीलिए जो शब्द करती हुई अनेक लहरों से युक्त समुद्र की वेला (तट) के समान जान पड़ते थे। जिनके समीप का प्रदेश देवों के द्वारा वर्षाए हुए फूलों से व्याप्त हो रहा था, जिनका ऊँचा शरीर बड़े भारी अशोकवृक्ष के आश्रित था–उसके नीचे स्थित था और इसीलिए जिसका समीप प्रदेश अपने कल्पवृक्षों के उपवनों द्वारा छोड़े हुए फूलों से व्याप्त हो रहा है ऐसे सुमेरु पर्वत को अपनी कान्ति के द्वारा लज्जित कर रहे थे। और जो चमकते हुए मोतियों से सुशोभित आकाश में स्थित अपने विस्तृत तथा धवल छत्रत्रय से ऐसे जान पड़ते थे मानो अपना माहात्म्य ऐश्वर्य और फैलते हुए उत्कृष्ट यश को ही प्रकट कर रहे हों

---

१. मोक्षमार्गरूपी सृष्टि को उत्पन्न करने वाले और पापरूपी सृष्टि को संहार करने वाले थे।

प्रविस्तारिशुभ्रातपत्रत्रयेण स्फुरन्मौक्तिकेनाधृतद्युस्थितेन।
स्वमाहात्म्यमैश्वर्यमुद्यद्यशश्च्च स्फुटीकर्तुमीशं तमीशानमाद्यम्।।९८।।
प्रदृश्याथ दूरान्नतस्वोत्तमाङ्गाः सुरेन्द्राः प्रणेमुर्महीस्पृष्टजानु।
किरीटाग्रभाजां स्त्रजां मालिकाभिर्जिनेन्द्राङ्घ्रियुग्मं स्फुटं प्रार्चयन्तः।।९९।।
तदार्हत्प्रणामे समुत्फुल्लनेत्राः सुरेन्द्राः विरेजुः शुचिस्मेरवक्त्राः।
समं वा सरोभिः सपद्मोत्पलैः स्वैः कुलक्ष्माधरेन्द्राः सुराद्रिं भजन्तः।।१००।।
शची चाप्सरोऽशेषदेवीसमेता जिनाङ्घ्र्योः प्रणामं चकारार्चयन्ती।
स्ववक्त्रोरुपद्मैः स्वनेत्रोत्पलैश्च प्रसन्नैश्च भावप्रसूनैरनूनैः।।१०१।।
जिनस्याङ्घ्रिपद्मौ नखांशुप्रतानैः सुरानास्पृशन्तौ समेत्याधिमूर्धम्।
स्त्रजाम्लानमूर्त्या स्वशेषां पवित्रां शिरस्यार्पिपेतामिवानुगृहीतुम्।।१०२।।
जिनेन्द्राङ्घ्रिभासा पवित्रीकृतं ते स्वमूहुः सुरेन्द्राः प्रणम्यातिभक्त्या।
नखांशुप्रतानाम्बुलब्धाभिषेकं समुत्तुङ्गमत्युत्तमं चोत्तमाङ्गम्।।१०३।।

ऐसे प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव के उस सौधर्मेन्द्र ने दर्शन किए।।९२–९८।।

दर्शन कर दूर से ही जिन्होंने अपने मस्तक नम्रीभूत कर लिए हैं ऐसे इन्द्रों ने जमीन पर घुटने टेककर उन्हें प्रणाम किया, प्रणाम करते समय वे इन्द्र ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने मुकुटों के अग्रभाग में लगी हुई मालाओं के समूह से जिनेन्द्र भगवान् के दोनों चरणों की पूजा ही कर रहे हों।।९९।।

उन अरहन्त भगवान् को प्रणाम करते समय जिनके नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गए और मुख सफेद मंद हास्य से युक्त हो रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो जिनमें सफेद और नील कमल खिले हुए हैं ऐसे अपने सरोवरों के साथ–साथ कुलाचल पर्वत सुमेरु पर्वत की ही सेवा कर रहे हों।।१००।।

उसी समय अप्सराओं तथा समस्त देवियों से सहित इन्द्राणी ने भी भगवान् के चरणों को प्रणाम किया था, प्रणाम करते समय वह इन्द्राणी ऐसी जान पड़ती थी मानो अपने प्रफुल्लित हुए मुखरूपी कमलों से, नेत्ररूपी नीलकमलों से और विशुद्ध भावरूपी बहुत भारी पुष्पों से भगवान् की पूजा ही कर रही हो।।१०१।।

जिनेन्द्र भगवान् के दोनों ही चरणकमल अपने नखों की किरणों के समूह से देवों के मस्तक पर आकर उन्हें स्पर्श कर रहे थे और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कभी म्लान न होने वाली माला के बहाने से अनुग्रह करने के लिए उन देवों के मस्तकों पर शेषाक्षत ही अर्पण कर रहे हों।।१०२।।

वे इन्द्र लोग, अतिशय भक्तिपूर्वक प्रणाम करते समय जो जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की प्रभा से पवित्र किए गए हैं तथा उन्हीं के नखों की किरण समूहरूपी जल से जिन्हें अभिषेक प्राप्त हुआ है ऐसे अपने उन्नत और अत्यन्त उत्तम मस्तकों को धारण कर रहे थे।

भावार्थ—प्रणाम करते समय इन्द्रों के मस्तक पर जो भगवान् के चरणों की प्रभा पड़ रही थी उससे वे उन्हें अतिशय पवित्र मानते थे और जो नखों की कान्ति पड़ रही थी उससे उन्हें ऐसा समझते थे मानो उनका जल से अभिषेक ही किया गया हो इस प्रकार वे अपने उत्तमांग अर्थात् मस्तक को वास्तव में उत्तमांग अर्थात् उत्तम अंग मानकर ही धारण कर रहे थे।।१०३।।

नखांशूत्करव्याजमव्याजशोभं पुलोमात्मजा साप्सरा भक्तिनम्रा।
स्तनोपान्तलग्नं समूहेंऽशुके तत्प्रहासायमानं लसन्मुक्तिलक्ष्म्याः।।१०४।।
प्रणामक्षणे ते सुरेन्द्रा विरेजुः स्वदेवीसमेता ज्वलद्भूषणाङ्गाः।।
महाकल्पवृक्षाः समं कल्पवल्ली समित्येव भक्त्या जिनं सेवमानाः।।१०५।।
अथोत्थाय तुष्ट्या सुरेन्द्राः स्वहस्तैर्जिनस्याङ्घ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः।
सगन्धैः समाल्यैः सधूपैः सदीपैः सदिव्याक्षतैः प्राज्यपीयूषपिण्डैः।।१०६।।
पुरोरङ्गवल्ल्या तते भूमिभागे सुरेन्द्रोपनीता बभौ सा सपर्या।
शुचिद्रव्यसंपत्समस्तेव भर्तुः पदोपास्तिमिच्छुः श्रिता तच्छलेन।।१०७।।
शची रत्नचूर्णैर्बलिं भर्तुरग्रे तता नोन्मयूख प्ररोहैर्विचित्राम् ।
मृदुस्निग्धचित्रै रनेकप्रकारैः सुरेन्द्रायुधानामिव श्लक्ष्णचूर्णैः।।१०८।।
ततो नीरधारां शुचिं स्वानुकारां लसद्रत्नभृङ्गारनालस्रुतां ताम् ।
निजां स्वान्तवृत्तिप्रसन्नामिवाच्छां जिनोपाङ्घ्रि संपातयामास भक्त्या।।१०९।।
स्वरुद्भूतगन्धैः सुगन्धीकृताशैर्भ्रमद्भृङ्गमालाकृतारावहृद्यैः।
जिनाङ्घ्री स्मरन्ती विभोः पादपीठं समानर्च भक्त्या तदा शक्रपत्नी।।११०।।

इन्द्राणी भी जिस समय अप्सराओं के साथ भक्तिपूर्वक नमस्कार कर रही थी उस समय देदीप्यमान मुक्तिरूपी लक्ष्मी के उत्तम हास्य के समान आचरण करने वाला और स्वभाव से ही सुन्दर भगवान् के नखों की किरणों का समूह उसके स्तनों के समीप भाग में पड़ रहा था और उससे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो सुन्दर वस्त्र ही धारण कर रही हो।।१०४।।

अपनी–अपनी देवियों से सहित तथा देदीप्यमान आभूषणों से सुशोभित वे इन्द्र प्रणाम करते ऐसे जान पड़ते थे मानो कल्पलताओं के साथ बड़े–बड़े कल्पवृक्ष ही भगवान् की सेवा कर रहे हों।।१०५।।

अथानन्तर इन्द्रों ने बड़े सन्तोष के साथ खड़े होकर श्रद्धायुक्त हो अपने ही हाथों से गन्ध, पुष्पमाला, धूप, दीप, सुन्दर अक्षत और उत्कृष्ट अमृत के पिण्डों द्वारा भगवान् के चरणकमलों की पूजा की।।१०६।।

रंगावली से व्याप्त हुई भगवान् के आगे की भूमि पर इन्द्रों के द्वारा लायी वह पूजा की सामग्री ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो उसके छल से संसार की समस्त द्रव्यरूपी सम्पदाएँ भगवान् के चरणों की उपासना की इच्छा से ही वहाँ आयी हों।।१०७।।

इन्द्राणी ने भगवान् के आगे कोमल चिकने और सूक्ष्म अनेक प्रकार के रत्नों के चूर्ण से मण्डल बनाया था, वह मण्डल ऊपर की ओर उठती हुई किरणों के अंकुरों से चित्र–विचित्र हो रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रधनुष के कोमल चूर्ण से ही बना हो।।१०८।।

तदनन्तर इन्द्राणी ने भक्तिपूर्वक भगवान् के चरणों के समीप में देदीप्यमान रत्नों के भृंगार की नाल से निकलती हुई पवित्र जलधारा छोड़ी। वह जलधारा इन्द्राणी के समान ही पवित्र थी और उसी की मनोवृत्ति के समान प्रसन्न तथा स्वच्छ थी।।१०९।।

उसी समय इन्द्राणी ने जिनेन्द्र भगवान् के चरणों का स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक समस्त दिशाएँ सुगन्धित कर दी थीं तथा जो फिरते हुए भ्रमरों की पंक्तियों द्वारा किए हुए शब्दों से बहुत ही मनोहर जान पड़ती थी ऐसी

व्यधान्मौक्तिकौघैर्विभोस्तण्डुलेज्यां स्वचित्तप्रसादैरिव स्वच्छभाभिः।
तथाम्लानमन्दारमालाशतैश्च प्रभोः पादपूजामकार्षीत् प्रहर्षात्।।१११।।
ततो रत्नदीपैर्जिनाङ्गद्युतीनां प्रसर्पेण मन्दीकृतात्मप्रकाशैः।
जिनार्कं शचीं प्रार्चिचद्भक्तिनिघ्ना न भक्ता हि युक्तं विदन्त्यप्ययुक्तम्।।११२।।
ददौ धूपमिद्धं च पीयूषपिण्डं महास्थालसंस्थं ज्वलद्दीपदीपम्।
सतारं शशाङ्कं समाश्लिष्टराहुं जिनाङ्घ्र्यब्जयोर्वा समीपं प्रपन्नम्।।११३।।
फलैरप्यनल्पैस्ततामोदहृद्यैर्ध्वनद्भृङ्गयूथैरुपासेव्यमानः।
जिनं गातुकामैरिवातिप्रमोदात् फलायार्चयामास सुत्रामजाया।।११४।।
इतीत्थं स्वभक्त्या सुरैरर्चितेऽर्हन् किमेभिस्तु कृत्यं कृतार्थस्य भर्तुः।
विरागो न तुष्यत्यपि द्वेष्टि वासौ फलैश्च स्वभक्तानहो योयुजीति।।११५।।
अथोच्चैः सुरेशा गिरामीशितारं जिनं स्तोतुकामाः प्रहृष्टान्तरङ्गाः।
वचस्सूनमालमिमां चित्रवर्णां समुच्चिक्षिपुर्भक्तिहस्तैरिति स्वैः।।११६।।

स्वर्गलोक में उत्पन्न हुई सुगन्ध से भगवान् के पादपीठ (सिंहासन) की पूजा की थी।।११०।।

इसी प्रकार अपने चित्त की प्रसन्नता के समान स्वच्छ कान्ति को धारण करने वाले मोतियों के समूहों से भगवान् की अक्षतों से होने वाली पूजा की तथा कभी नहीं मुरझाने वाली कल्पवृक्ष के फूलों की सैकड़ों मालाओं से बड़े हर्ष के साथ भगवान् के चरणों की पूजा की।।१११।।

तदनन्तर भक्ति के वशीभूत हुई इन्द्राणी जिनेन्द्र भगवान् के शरीर की कान्ति के प्रसार से जिनका निजी प्रकाश मन्द पड़ गया है ऐसे रत्नमय दीपकों से जिनेन्द्ररूपी सूर्य की पूजा की थी सो ठीक ही है क्योंकि भक्तपुरुष योग्य अथवा अयोग्य कुछ भी नहीं समझते।

भावार्थ—यह कार्य करना योग्य है अथवा अयोग्य, इस बात का विचार भक्ति के सामने नहीं रहता। यही कारण था कि इन्द्राणी ने जिनेन्द्ररूपी सूर्य की पूजा दीपकों द्वारा की थी।।११२।।

तदनन्तर इन्द्राणी ने धूप तथा जलते हुए दीपकों से देदीप्यमान और बड़े थाल में रखा हुआ, सुशोभित अमृत का पिण्ड भगवान् के लिए समर्पित किया, वह थाल में रखा हुआ धूप तथा दीपकों से सुशोभित अमृत का पिण्ड ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओं से सहित और राहु से अलिंगित चन्द्रमा ही जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों के समीप आया हो।।११३।।

तदनन्तर जो चारों ओर फैली हुई सुगन्धि से बहुत ही मनोहर थे और जो शब्द करते हुए भ्रमरों के समूहों से सेवनीय होने के कारण ऐसे जान पड़ते थे मानो भगवान् का यश ही गा रहे हों ऐसे अनेक फलों के द्वारा इन्द्राणी ने बड़े भारी हर्ष से भगवान् की पूजा की थी।।११४।।

इसी प्रकार देवों ने भी भक्तिपूर्वक अर्हन्त भगवान् की पूजा की थी परन्तु कृतकृत्य भगवान् को इन सबसे क्या प्रयोजन था ? वे यद्यपि वीतरागी थे न किसी से सन्तुष्ट होते थे और न किसी से द्वेष ही करते थे तथापि अपने भक्तों को इष्टफलों से युक्त कर ही देते थे यह एक आश्चर्य की बात थी।।११५।।

अथानन्तर जिन्हें समस्त विद्याओं के स्वामी जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करने की इच्छा हुई ऐसे वे बड़े-बड़े इन्द्र प्रसन्नचित्त होकर अपने भक्तिरूपी हाथों से चित्र-विचित्र वर्णोंवाली इस वचनरूपी पुष्पों की माला को अर्पित

प्रमिताक्षरावृत्तम

जिननाथसंस्तवकृतौ भवतो वयमुद्यताः स्म गुणरत्ननिधेः।
विधियोऽपि मन्दवचसोऽपि ननु त्वयि भक्तिरेव फलतीष्टफलम्।।११७।।
मतिशक्तिसारकृतवाग्विभवस्त्वयि भक्तिमेव वयमातनुमः।
अमृताम्बुधेर्जलमलं न पुमान्निखिलं प्रपातुमिति किं न पिबेत्।।११८।।
क्व वयं जडाः क्व च गुणाम्बुनिधिस्तव देव पाररहितः परमः।
इति जानतोऽपि जिन सम्प्रति नस्त्वयि भक्तिरेव मुखरीकुरुते।।११९।।
गणभृद्धिरप्यगणिताननणूं स्तव सद्गुणान्वयमभीष्टुमहे।
किल चित्रमेतदथवा प्रभुतां तब संश्रितः किमिव नेशिशिषुः।।१२०।।

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

तदियमीडिडिषन् विदधाति नस्त्वयि निरूढतरा जिननिश्चला।
प्रसृतभक्तिरपारगुणोदया स्तुतिपथेऽद्य ततो वयमुद्यतः।।१२१।।
त्वमसि विश्वदृगीश्वर विश्वसृट् त्वमसि विश्वगुणाम्बुधिरक्षयः।
त्वमसि देव जगद्धितशासनः स्तुतिमतोऽनुगृहाण जिनेश नः।।१२२।।

करने लगे—नीचे लिखे अनुसार भगवान् की स्तुति करने लगे।।११६।।

कि हे जिननाथ, वह निश्चय है कि आपके विषय में की हुई भक्ति ही इष्ट फल देती है इसीलिए हम लोग बुद्धिहीन तथा मन्दवचन होकर भी गुणरूपी रत्नों के खजाने स्वरूप आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत हो रहे हैं।।११७।।

हे भगवन्, जिन्हें बुद्धि की सामर्थ्य से कुछ वचनों का वैभव प्राप्त हुआ है ऐसे हम लोग केवल आपकी भक्ति ही कर रहे हैं सो ठीक ही है क्योंकि जो पुरुष अमृत के समुद्र का सम्पूर्ण जल पीने के लिए समर्थ नहीं है वह क्या अपनी सामर्थ्य के अनुसार थोड़ा भी नहीं पीये ? अर्थात् अवश्य पीये।।११८।।

हे देव, कहाँ तो जड़ बुद्धि हम लोग और कहाँ आपका पापरहित बड़ा भारी गुणरूपी समुद्र! हे जिनेन्द्र, यद्यपि इस बात को हम लोग भी जानते हैं तथापि इस समय आपकी भक्ति ही हम लोगों को वाचालित कर रही है।।११९।।

हे देव, यह आश्चर्य की बात है कि आपके जो बड़े-बड़े उत्तम गुण गणधरों के द्वारा भी नहीं गिने जा सके हैं उनकी हम स्तुति कर रहे हैं अथवा इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि जो मनुष्य आपकी प्रभुता को प्राप्त हुआ है वह क्या करने के लिए समर्थ नहीं है ? अर्थात् सब कुछ करने में समर्थ है।।१२०।।

इसलिए हे जिनेन्द्र, आपके विषय में उत्पन्न हुई अतिशय निगूढ़, निश्चल और अपरिमित गुणों का उदय करने वाली विशाल भक्ति ही हम लोगों को स्तुति करने के लिए इच्छुक कर रही है और इसीलिए हम लोग आज आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत हुए हैं।।१२१।।

हे ईश्वर, आप समस्त संसार के जानने वाले हैं, कर्मभूमिरूप संसार की रचना करने वाले हैं, समस्त गुणों के समुद्र हैं, अविनाशी हैं और हे देव, आपका उपदेश जगत् के समस्त जीवों का हित करने वाला है, इसीलिए हे जिनेन्द्र, आप हम सबकी स्तुति को स्वीकृत कीजिए।।१२२।।

तव जिनार्क विभान्ति गुणांशवः सकलकर्मकलङ्कविनिःसृताः।
घनवियोगविनिर्मलमूर्तयो दिनमणेरिव भासुरभानवः।।१२३।।
गुणमणींस्त्वमनन्ततयान्वितान् जिन समुद्वहसेऽतिविनिर्मलान्।
जलधिरात्मगभीरजलाश्रितानिव मणीनमलाननणुत्विषः।।१२४।।
त्वमिनसंसृतिवल्लरिकामिमामततितामुरुदुःखफलप्रदाम्।
जननमृत्युजराकुसुमाचितां शमकरैर्भगवन्नुदपीपटः।।१२५।।

तामरसवृत्तम्

जिनवरमोहमहापृतनेशान् प्रबलतरांश्चतुरस्तु कषायान्।
निशिततपोमयतीव्रमहांसि प्रहतिभिराशुतरामजयस्त्वम्।।१२६।।
मनसिजशत्रुमजय्यमलक्ष्यं विरतिमयी शितहेतिततिस्ते।
समरभरे विनिपातयति स्म त्वमसि ततो भुवनैकगरिष्ठः।।१२७।।
जितमदनस्य तवेश महत्त्वं वपुरिदमेव हि शास्ति मनोज्ञम्।
न विकृतिभाग्न कटाक्षनिरीक्षा परमविकारमनाभरणोद्धम्।।१२८।।
प्रविकुरुते हृदि यस्य मनोजः स विकुरुते स्फुटरागपरागः।
विकृतिरनङ्गजितस्तव नाभूद् विभवभवान्भुवनैकगुरुस्तत्।।१२९।।

हे जिनेन्द्ररूपी सूर्य, जिस प्रकार बादलों के हट जाने से अतिशय निर्मल सूर्य की देदीप्यमान किरणें सुशोभित होती हैं उसी प्रकार समस्त कर्मरूपी कलंक के हट जाने से प्रकट हुई आपकी गुणरूपी किरणें अतिशय सुशोभित हो रही हैं।।१२३।।

हे जिनेन्द्र, जिस प्रकार समुद्र अपने गहरे जल में रहने वाले निर्मल और विशाल कान्ति के धारक मणियों को धारण करता है उसी प्रकार आप अतिशय निर्मल अनन्तगुणरूपी मणियों को धारण कर रहे हैं।।१२४।।

हे स्वामिन्, जो अत्यन्त विस्तृत है, बड़े–बड़े दुःखरूपी फलों को देने वाली है, और जन्म–मृत्यु तथा बुढ़ापारूपी फूलों से व्याप्त है ऐसी इस संसाररूपी लता को हे भगवन्, आपने अपने शान्त परिणामरूपी हाथों से उखाड़कर फेंक दिया है।।१२५।।

हे जिनवर, आपने मोह की बड़ी भारी सेना के सेनापति तथा अतिशय शूर–वीर चार कषायों को तीव्र तपश्चरणरूपी पैनी और बड़ी तलवार के प्रहारों से बहुत शीघ्र जीत लिया है।।१२६।।

हे भगवन्, जो किसी के द्वारा जीता न जा सके और जो दिखाई भी न पड़े ऐसे कामदेवरूपी शत्रु को आपके चारित्ररूपी तीक्ष्ण हथियारों के समूह ने मार गिराया है इसलिए तीनों लोकों में आप ही सबसे श्रेष्ठ गुरु हैं।।१२७।।

हे ईश्वर, जो न कभी विकार भाव को प्राप्त होता है, न किसी को कटाक्षों से देखता है, जो विकार रहित है और आभरणों के बिना ही सुशोभित रहता है ऐसा यह आपका सुन्दर शरीर ही कामदेव को जीतने वाले आपके माहात्म्य को प्रकट कर रहा है।।१२८।।

हे संसार रहित जिनेन्द्र, कामदेव जिसके हृदय में प्रवेश करता है वह प्रकट हुए रागरूपी पराग से युक्त होकर अनेक प्रकार की विकारयुक्त चेष्टाएँ करने लगता है परन्तु कामदेव को जीतने वाले आपके कुछ भी विकार नहीं पाया जाता है इसलिए आप तीनों लोकों के मुख्य गुरु हैं।।१२९।।

स किल विनृत्यति गायति वल्गत्यपलापति प्रहसत्यपि मूढः।
मदनवशो जितमन्मथ ते तु प्रशमसुखं वपुरेव निराह।।१३०।।

नवमालिनीवृत्तम्

विरहितमानमत्सर तवेदं वपुरपरागमस्तकलिपङ्कम्।
तव भुवनेश्वरत्वमपरागं प्रकटयति स्फुटं निकृतिहीनम्।१३१।।
तव वपुरामिलत्सकलशोभासमुदयमस्तवस्त्रमपि रम्यम्।
अतिरुचिरस्य रत्नमणिराशेरपवरणं किमिष्टमुरुदीप्तेः।।१३२।।
स्विदिरहितं विहीनमलदोषं सुरभितरं सुलक्ष्मघटितं ते।
क्षतजवियुक्तमस्ततिमिरौघं व्यपगतधातु वज्रघनसंधि।।१३३।।
समचतुरस्त्रमप्रमितवीर्यं प्रियहितवाग्निमेषपरिहीनम्।
वपुरिदमच्छदिव्यमणिदीप्रं त्वमसि ततोऽधिदेवपदभागी।।१३४।।
इदमतिमानुषं तव शरीरं सकलविकारमोहमदहीनम्।
प्रकटयतीश ते भुवनलङ्घि प्रभुतमवैभवं कनककान्ति।।१३५।।

प्रमुदितवदनावृत्तम्

स्पृशति नहि भवन्तमागश्च यः किमु दिनपमभिद्रवेत्तामसम्।
वितिमिर सभवान् जगत्साधने ज्वलदुरुमहसा प्रदीपायते।।१३६।।

हे कामदेव को जीतने वाले जिनेन्द्र, जो मूर्ख पुरुष कामदेव के वश हुआ करता है वह नाचता है, गाता है, इधर–उधर घूमता है, सत्य बात को छिपाता है और जोर–जोर से हँसता है परन्तु आपका शरीर इन सब विकारों से रहित है इसलिये यह शरीर ही आपके शान्तिसुख को प्रकट कर रहा है।।१३०।।

हे मान और मात्सर्यभाव से रहित भगवन्, कर्मरूपी धूलि से रहित, कलहरूपी पंक को नष्ट करने वाला, राग रहित और छलरहित आपका वह शरीर 'आप तीनों लोकों के स्वामी हैं' इस बात को स्पष्टरूप से प्रकट कर रहा है।।१३१।।

हे नाथ, जिसमें समस्त शोभाओं का समुदाय मिल रहा है ऐसा यह आपका शरीर वस्त्ररहित होने पर भी अत्यन्त सुन्दर है सो ठीक ही है क्योंकि विशाल कान्ति को धारण करने वाले अतिशय देदीप्यमान रत्न मणियों की राशि को वस्त्र आदि से ढक देना क्या किसी को अच्छा लगता है ? अर्थात् नहीं लगता।।१३२।।

हे भगवन्, आपका यह शरीर पसीना से रहित है, मलरूपी दोषों से रहित है, अत्यन्त सुगन्धित है, उत्तम लक्षणों से सहित है, रक्त रहित है, अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाला है, धातुरहित है, वज्रमयी मजबूत सन्धियों से युक्त है, समचतुरस्रसंस्थान वाला है, अपरिमित शक्ति का धारक है, प्रिय और हितकारी वचनों से सहित है, निमेष रहित है, और स्वच्छ दिव्य मणियों के समान देदीप्यमान है इसलिये आप देवाधिदेव पद को प्राप्त हुए हैं।।१३३–१३४।।

हे स्वामिन् समस्त विकार, मोह और मद से रहित तथा सुवर्ण के समान कान्ति वाला आपका यह लोकोत्तर शरीर संसार को उल्लंघन करने वाली आपकी अद्वितीय प्रभुता के वैभव को प्रकट कर रहा है।।१३५।।

हे अन्धकार से रहित जिनेन्द्र, पापों का समूह कभी आपको छूता भी नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि क्या अन्धकार का समूह भी कभी सूर्य के सम्मुख जा सकता है ? अर्थात् नहीं जा सकता। हे नाथ, आप इस जगतरूपी घर में अपने देदीप्यमान विशाल तेज से प्रदीप के समान आचरण करते हैं।।१३६।।

जलधरमालावृत्तम्

रैधारा ते द्युसमवतारेऽपप्तन्नाकेशानां पदविमशेषां रुध्वा।
स्वर्गादारात् कनकमयीं वा सृष्टिं तन्वानासौ भुवनकुटीरस्यान्तः।।१३७।।
रैधारैरावतकरदीर्घा रेजे रे जेतारं भजत जना इत्येवम्।
मूर्तीभूता तव जिनलक्ष्मीर्लोके संबोधं वा सपदि समातन्वाना।।१३८।।
त्वत्संभूतौ सुरकरमुक्ता व्योम्नि पौष्पी वृष्टिः सुरभितरा संरेजे।
मत्तालीनां कलरुतमातन्वाना नाकस्त्रीणां नयनततिर्वा यान्ती।।१३९।।
मेरोः शृङ्गे समजनि दुग्धाम्भोधेः स्वच्छाम्भोभिः कनकघटैर्गम्भीरैः।
माहात्म्यं ते जगति वितन्वन्भावि स्वधौरेयैर्गुरुरभिषेकः पूतः।।१४०।।
त्वां निष्क्रान्तौ मणिमययानारूढं वोढुं सज्जा वयमिति नैतच्चित्रम्।
आनिर्वाणान्नियतममी गीर्वाणाः किंकुर्वाणा ननु जिन कल्याणे ते।।१४१।।
त्वं धातासि त्रिभुवनभर्ताद्यत्वे कैवल्यार्के स्फुटमुदितेऽस्मिन्दीप्रे।
तस्माद्देवं जननजरातङ्कारिं त्वां नन्नमो गुणनिधिमग्र्यं लोके।।१४२।।

हे भगवन्, आपके स्वर्ग से अवतार लेने के समय (गर्भकल्याणक के समय) रत्नों की धारा समस्त आकाश को रोकती हुई स्वर्गलोक से शीघ्र ही इस जगत्रूपी कुटी के भीतर पड़ रही थी और वह ऐसी जान पड़ती थी मानो समस्त सृष्टि को सुवर्णमय ही कर रही हो।।१३७।।

हे जिनेन्द्र, ऐरावत हाथी की सूँड़ के समान लम्बायमान वह रत्नों की धारा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो आपकी लक्ष्मी ही मूर्ति धारण कर लोक में शीघ्र ही ऐसा सम्बोध फैला रही हो कि अरे मनुष्यों, कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले इन जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करो।।१३८।।

हे भगवन्, आपके जन्म के समय आकाश से देवों के हाथों से छोड़ी गयी अत्यन्त सुगन्धित और मदोन्मत्त भ्रमरों की मधुर गुञ्जार को चारों ओर फैलाती हुई जो फूलों की वृष्टि हुई थी वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो देवांगनाओं के नेत्रों की पंक्ति ही आ रही हो।।१३९।।

हे स्वामिन्, इन्द्रों ने मेरुपर्वत के शिखर पर क्षीरसागर के स्वच्छ जल से भरे हुए सुवर्णमय गम्भीर (गहरे) घड़ों से जगत् में आपका माहात्म्य फैलाने वाला आपका बड़ा भारी पवित्र अभिषेक किया था।।१४०।।

हे जिन, तपकल्याणक के समय मणिमयी पालकी पर आरूढ़ हुए आपको ले जाने के लिए हम लोग तत्पर हुए थे इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि निर्वाण पर्यन्त आपके सभी कल्याणकों में ये देव लोग किंकरों के समान उपस्थित रहते हैं।।१४१।।

हे भगवन्, इस देदीप्यमान केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय होने पर यह स्पष्ट प्रकट हो गया है कि आप ही धाता अर्थात् मोक्षमार्ग की सृष्टि करने वाले हैं और आप ही तीनों लोक के स्वामी हैं। इसके सिवाय आप जन्मजरारूपी रोगों का अन्त करने वाले हैं, गुणों के खजाने हैं और लोक में सबसे श्रेष्ठ हैं इसलिए हे देव, आपको हम लोग बार–बार नमस्कार करते हैं।।१४२।।

प्रहर्षिणीवृत्तम्

त्वं मित्रं त्वमसि गुरुस्त्वमेव भर्ता त्वं स्रष्टा भुवनपितामहस्त्वमेव।
त्वां ध्यायन्नमृतिसुखं प्रयाति जन्तुस्त्रायस्य त्रिजगदिदं त्वमद्य पातात्।।१४३।।

रुचिरावृत्तम्

परं पदं परमसुखोदयास्पदं विवित्स वश्चिरमिह योगिनोऽक्षरम्।
त्वयोदितं जिन परमागमाक्षरं विचिन्वते भवविलयाय सद्धियः।।१४४।।
त्वयोदिते पथि जिन ये वितन्वतेः परां धृतिं प्रमदपरम्परायुजः।
त एव संसृतिलत्तिकां प्रतायिनीं दहन्त्यलं स्मृतिदहनार्चिषा भृशम्।।१४५।।

मत्तमयूरवृत्तम्

वातोद्धूताः क्षीरपयोधेरिव वीचीरुत्प्रेक्ष्यामूश्चामरपङ्क्तीर्भवदीयाः।
पीयूषांशोर्दीप्तिसमेतीरिव शुभ्रा मोमुच्यन्ते संसृतिभाजो भवबन्धात्।।१४६।।
सैहं पीठं स्वां द्युतिमिद्धामतिभानुं तन्वानं तद्धाति विभोस्ते पृथुतुङ्गम्।
मेरोः शृङ्गं वा मणिनद्धं सुरसेव्यं न्यक्कुर्वाणं लोकमशेषं स्वमहिम्ना।।१४७।।

मञ्जुभाषिणीवृत्तम्

महितोदयस्य शिवमार्गदेशिनः सुरशिल्पिनिर्मितमदोऽर्हतस्तव।
प्रथते सितातपनिवारणत्रयं शरदिन्दुबिम्बमिव कान्तिमत्तया।।१४८।।

हे नाथ, इस संसार में आप ही मित्र हैं, आप ही गुरु हैं, आप ही स्वामी हैं, आप ही स्रष्टा हैं और आप ही जगत् के पितामह हैं। आपका ध्यान करने वाला जीव अवश्य ही मृत्युरहित सुख अर्थात् मोक्षसुख को प्राप्त होता है इसलिए हे भगवन्, आज आप इन तीनों लोकों को नष्ट होने से बचाइए–इन्हें ऐसा मार्ग बतलाइए जिससे ये जन्म–मरण के दुःखों से बचकर मोक्ष का अनन्त सुख प्राप्त कर सकें।।१४३।।

हे जिनेन्द्र, परम सुख की प्राप्ति के स्थान तथा अविनाशी उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को जानने की इच्छा करने वाले उत्तम बुद्धिमान् योगी संसार का नाश करने के लिए आपके द्वारा कहे हुए परमागम के अक्षरों को चिन्तवन करते हैं।।१४४।।

हे जिनराज, जो मनुष्य आपके द्वारा बतलाये हुए मार्ग में परम सन्तोष धारण करते हैं अथवा आनन्द की परम्परा से युक्त होते हैं वे ही इस अतिशय विस्तृत संसाररूपी लता को आपके ध्यानरूपी अग्नि की ज्वाला से बिलकुल जला पाते हैं।।१४५।।

हे भगवन्, वायु से उठी हुई क्षीरसमुद्र की लहरों के समान अथवा चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान सुशोभित होने वाली आपकी इन सफेद चमरों की पंक्तियों को देखकर संसारी जीव अवश्य ही संसाररूपी बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।।१४६।।

हे विभो, सूर्य को भी तिरस्कृत करने वाली और अतिशय देदीप्यमान अपनी कान्ति को चारों ओर फैलाता हुआ, अत्यन्त ऊँचा, मणियों से जड़ा हुआ, देवों के द्वारा सेवनीय और अपनी महिमा से समस्त लोकों को नीचा करता हुआ यह आपका सिंहासन मेरु पर्वत के शिखर के समान शोभायमान हो रहा है।।१४७।।

जिनका ऐश्वर्य अतिशय उत्कृष्ट है और जो मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले हैं ऐसेआप अरहन्त देव का यह देवरूप कारीगरों के द्वारा बनाया गया छत्रत्रयं अपनी कान्ति से शरद्ऋतु के चन्द्रमण्डल के समान सुशोभित हो रहा है।।१४८।।

छन्दः (?)

वृक्षोऽशोको मरकतरुचिरस्कन्धो भाति श्रीमानयमतिरुचिराः शाखाः।
बाहूकृत्य स्फुटमिव नटितं तन्वन्वातोद्धूतः कलरुतमधुकृन्मालः।।१४९।।
पुष्पाकीर्णो नृसुरमुनिवरैः कान्तो मन्दं मन्दं मृदुतरपवना धूतः।
सच्छायोऽयं विहतनृशुगशोकोऽगो भाति श्रीमांस्त्वमिव हि जगतां श्रेयः।।१५०।।

असम्बाधावृत्तम्

व्याप्ताकाशां वृष्टिमलिकुलरुतोद्गीतां पौष्पीं देवास्त्वां प्रतिभुवनगृहस्याग्रात्।
मुञ्चन्त्येते दुन्दुभिमधुररवैः सार्द्धं प्रावृड्जीमूतान् स्तनितमुखरिताञ्झित्वा।।१५१।।

अपराजितावृत्तम्

त्वदमरपटहैर्विशङ्क्य घनागमं पटुजलदघटानिरुद्धनभोङ्गणम्।
विरचितरुचिमत्कलापसुमन्थरा मदकलमधुना रुवन्ति शिखाबलाः।।१५२।।

हे भगवन्, जिनका स्कन्ध मरकतमणियों से अतिशय देदीप्यमान हो रहा है और जिसपर मधुर शब्द करते हुए भ्रमरों के समूह बैठे हैं ऐसा यह शोभायमान तथा वायु से हिलता हुआ आपका अशोकवृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो अपनी अत्यन्त देदीप्यमान शाखाओं को भुजा बनाकर उनके द्वारा स्पष्ट नृत्य ही कर रहा हो।।१४९।।

अथवा अत्यन्त सुकोमल वायु से धीरे–धीरे हिलता हुआ यह अशोकवृक्ष आपके ही समान सुशोभित हो रहा है क्योंकि जिस प्रकार आप देवों के द्वारा बरसाये हुए पुष्पों से आकीर्ण अर्थात् व्याप्त हैं उसी प्रकार यह अशोकवृक्ष भी पुष्पों से आकीर्ण है, जिस प्रकार मनुष्य देव और बड़े–बड़े मुनिराज आपको चाहते हैं–आपकी प्रशंसा करते हैं उसी प्रकार मनुष्य देव और बड़े–बड़े मुनिराज इस अशोकवृक्ष को भी चाहते हैं, जिस प्रकार पवनकुमार देव मन्द–मन्द वायु चलाकर आपकी सेवा करते हैं उसी प्रकार इस वृक्ष की भी सेवा करते हैं–यह मन्द–मन्द वायु से हिल रहा है, जिस प्रकार आप सच्छाय अर्थात् उत्तम कान्ति के धारक हैं उसी प्रकार यह वृक्ष भी सच्छाय अर्थात् छांहरी का धारक है–इसकी छाया बहुत ही उत्तम है, जिस प्रकार आप मनुष्य तथा देवों का शोक नष्ट करते हैं उसी प्रकार यह वृक्ष भी मनुष्य तथा देवों का शोक नष्ट करता है और जिस प्रकार आप तीनों लोकों के श्रेय अर्थात् कल्याणरूप हैं उसी प्रकार यह वृक्ष भी तीनों लोकों में श्रेय अर्थात् मंगल रूप है।।१५०।।

हे भगवन्, ये देव लोग, वर्षाकाल के मेघों की गरजना के शब्दों को जीतने वाले दुन्दुभि बाजों के मधुर शब्दों के साथ–साथ जिसने समस्त आकाश को व्याप्त कर लिया है और जो भ्रमरों की मधुर गुंजार से गाती हुई–सी जान पड़ती हैं ऐसी फूलों की वर्षा आपके सामने लोकरूपी घर के अग्रभाग से छोड़ रहे हैं।।१५१।।

हे भगवन्, आपके देव–दुन्दुभियों के कारण बड़े–बड़े मेघों की घटाओं से आकाशरूपी, आँगन को रोकनेवाली वर्षाऋतु की शंका कर ये मयूर इस समय अपनी सुन्दर पूँछ फैलाकर मन्द–मन्द गमन करते हुए मद से मनोहर शब्द कर रहे हैं।।१५२।।

प्रहरणकलिकावृत्तम्

तव जिन ततदेहरुचिशरवण चमररुहततिः सितविह गरुचिम्।
इयमनुततनुते रुचिरतरतनुर्मणिमुकुटसमिद्धरुचिसुरधुता।।१५३।।

वसन्ततिलकावृत्तम्

त्वद्दिव्यवागियमशेषपदार्थगर्भा भाषान्तराणि सकलानि निदर्शयन्ती।
तत्त्वावबोधमचिरात् कुरुते बुधानां स्याद्वादनीति विहतान्धमतान्धकारा।।१५४।।
प्रक्षालयत्यखिलमेव मनोमलं नस्त्वद्धारतीमयमिदं शुचिपुण्यमम्बु।
तीर्थं तदेव हि विनेयजनाजवञ्ज वावारसन्तरणवर्त्म भवत्प्रणीतम्।।१५५।।
त्वं सर्वगः सकलवस्तुगतावबोधस्त्वं सर्ववित्प्रमितविश्वपदार्थसार्थः।
त्वं सर्वजिद्विदितमन्मथमोहशत्रुस्त्वं सर्वदृङ्निखिलभाविविशेषदर्शी।।१५६।।
त्वं तीर्थकृत्सकलपापमलापहारिसद्धर्मतीर्थविमलीकरणैकनिष्टः।
त्वं मन्त्रकृन्निखिलपापविषापहारिपुण्यश्रुतिप्रवरमन्त्रविधानचुञ्चुः।।१५७।।
त्वामामनन्ति मुनयः पुरुषं पुराणं त्वां प्राहुरच्युतमृषीश्वरमक्षयर्द्धिम्।
तस्माद्भवान्तक भवन्तमचिन्त्ययोगं योगीश्वरं जगदुपास्यमुपास्महे स्म।।१५८।।

हे जिनेन्द्र, मणिमय मुकुटों की देदीप्यमान कान्ति को धारण करने वाले देवों के द्वारा ढोरी हुई तथा अतिशय सुन्दर आकारवाली यह आपके चमरों की पंक्ति आपके शरीर की कान्तिरूपी सरोवर में सफेद पक्षियों (हंसों) की शोभा बढ़ा रही है।।१५३।।

हे भगवन्, जिसमें संसार के समस्त पदार्थ भरे हुए हैं, जो समस्त भाषाओं का निदर्शन करती है अर्थात् जो अतिशय विशेष के कारण समस्त भाषाओंरूप परिणमन करती है और जिसने स्याद्वादरूपी नीति से अन्यमतरूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया है ऐसी आपकी यह दिव्यध्वनि विद्वान् लोगों को शीघ्र ही तत्त्वों काज्ञान करा देती है।।१५४।।

हे भगवन्, आपकी वाणीरूपी यह पवित्र पुण्य जल हम लोगों के मन के समस्त मल को धो रहा है, वास्तव में यही तीर्थ है और यही आपके द्वारा कहा हुआ धर्मरूपी तीर्थ भव्यजनों को संसाररूपी समुद्र से पार होने का मार्ग है।।१५५।।

हे भगवन्, आपका ज्ञान संसार की समस्त वस्तुओं तक पहुँचा है–समस्त वस्तुओं को जानता है इसलिए आप सर्वग अर्थात् व्यापक हैं, आपने संसार के समस्त पदार्थों के समूह जान लिये हैं इसलिए आप सर्वज्ञ हैं, आपने काम और मोहरूपी शत्रु को जीत लिया है इसलिए आप सवजित् अर्थात् सबको जीतने वाले हैं और आप संसार के समस्त पदार्थों को विशेषरूप से देखते हैं इसलिए आप सर्वदृक् अर्थात् सबको देखने वाले हैं।।१५६।।

हे भगवन्, आप समस्त पापरूपी मल को नष्ट करने वाले समीचीन धर्मरूपी तीर्थ के द्वारा जीवों को निर्मल करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं इसलिए आप तीर्थङ्कर हैं और आप समस्त पापरूपी विष को अपहरण करने वाले पवित्र शास्त्ररूपी उत्तम मन्त्र के बनाने में चतुर हैं इसलिए आप मन्त्रकृत् हैं।।१५७।।

हे भगवन्, मुनि लोग आपको ही पुराण पुरुष अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष (पक्ष में ब्रह्मा) मानते हैं, आपको ही ऋषियों के ईश्वर और अक्षय ऋद्धि को धारण करने वाले अच्युत अर्थात् अविनाशी (पक्ष में विष्णु) कहते हैं

तुभ्यं नमः सकलघातिमलव्यपायसंभूतकेवलमयामललोचनाय।
तुभ्यं नमो दुरितबन्धनशङ्खलानां छेत्त्रे भवार्गलभिदे जिनकुञ्जराय।।१५९।।
तुभ्यं नमस्त्रिभुवनैकपितामहाय तुभ्यं नमः परमनिर्वृतिकारणाय।
तुभ्यं नमोऽधिगुरवे गुरवे गुणौघैस्तुभ्यं नमो विदितविश्वजगत्त्रयाय।।१६०।।
इत्युच्चकैः स्तुतिमुदारगुणानुरागादस्माभिरीश रचितां त्वयि चित्रवर्णाम्।
देव प्रसीद परमेश्वर भक्तिपूतां पाद्यार्पितां स्त्रजमिवानुगृहाण चार्वीम्।।१६१।।
त्वामीड्महे जिन भवन्तमनुस्मरामस्त्वां कुड्मलीकृतकरा वयमानमामः।
त्वत्संस्तुतावुपचितं यदिहाद्य पुण्यं तेनास्तु भक्तिरमला त्वयि नः प्रसन्ना।।१६२।।
इत्थं सुरासुरनरोरगयक्षसिद्धगन्धर्वचारणगणैस्समभिद्धबोधाः।
द्वात्रिंशदिन्द्रवृषभा वृषभाय तस्मै चक्रुर्नमः स्तुतिशतैर्ननतमौलयस्ते।।१६३।।
स्तुत्वेति तं जिनमजं जगदेकबन्धुं भक्त्या नतोरुमुकुटैरमरैः सहेन्द्राः।
धर्मप्रिया जिनपतिं परितो यथास्वमास्थानभूमिमभजन् जिनसम्मुखास्याः।।१६४।।

तथा आपको ही अचिन्त्य योग को धारण करने वाले, और समस्त जगत् के उपासना करने योग्य योगीश्वर अर्थात् मुनियों के अधिपति (पक्ष में महेश) कहते हैं इसलिए हे संसार का अन्त करने वाले जिनेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप आपकी हम लोग भी उपासना करते हैं।।१५८।। हे नाथ, समस्त घातियाकर्मरूपी मल के नष्ट हो जाने से जिनके केवलज्ञानरूपी निर्मल नेत्र उत्पन्न हुआ है ऐसे आपके लिए नमस्कार हो। जो पापबन्धरूपी सांकल को छेदने वाले हैं, संसाररूपी अर्गल को भेदने वाले हैं और कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिनों में हाथी के समान श्रेष्ठ हैं ऐसे आपके लिए नमस्कार हो।।१५९।। हे भगवन्, आप तीनों लोकों के एक पितामह हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप गुरुओं के भी गुरु हैं तथा गुणों के समूह से भी गुरु अर्थात् श्रेष्ठ हैं इसलिए भी आपको नमस्कार हो, इसके सिवाय आपने समस्त तीनों लोकों को जान लिया है इसलिए भी आपको नमस्कार हो।।१६०।। हे ईश, आपके उदार गुणों में अनुराग होने से हम लोगों ने आपकी यह अनेक वर्णों (अक्षरों अथवा रंगों) वाली उत्तम स्तुति की है इसलिए हे देव, हे परमेश्वर, हम सब पर प्रसन्न होइए और भक्ति से पवित्र तथा चरणों में अर्पित की हुई सुन्दर माला के समान इसे स्वीकार कीजिए।।१६१।।

हे जिनेन्द्र, आपकी स्तुति कर हम लोग आपका बार–बार स्मरण करते हैं और हाथ जोड़कर आपको नमस्कार करते हैं। हे भगवन्, आपकी स्तुति करने से आज यहाँ हम लोगों को जो कुछ पुण्य का संचय हुआ है उससे हम लोगों की आपमें निर्मल और प्रसन्नरूप भक्ति हो।।१६२।।

इस प्रकार जिनका ज्ञान अतिशय प्रकाशमान हो रहा है ऐसे मुख्य–मुख्य बत्तीस इन्द्रों ने (भवनवासी १०, व्यन्तर ८, ज्योतिषी २ और कल्पवासी १२) सुर, असुर, मनुष्य, नागेन्द्र, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व और चारणों के समूह के साथ–साथ सैकड़ों स्तुतियों द्वारा मस्तक झुकाते हुए उन भगवान् वृषभदेव के लिए नमस्कार किया।।१६३।।

इस प्रकार धर्म से प्रेम रखने वाले इन्द्र लोग, अपने बड़े–बड़े मुकुटों को नम्रीभूत करने वाले देवों के साथ–साथ फिर कभी उत्पन्न नहीं होने वाले और जगत् के एकमात्र बन्धु जिनेन्द्रदेव की स्तुति कर समवसरण भूमि में जिनेन्द्र भगवान् की ओर मुखकर उन्हीं के चारों ओर यथायोग्यरूप से बैठ गये।।१६४।।

देहे जिनस्य जयिनः कनकावदाते रेजुस्तदा भृशममी सुरदृष्टिपाताः।
कल्पाङ्घ्रिपाङ्ग इव मत्तमधुव्रतानामोघाः प्रसूनमधुपानपिपासितानाम्।।१६५।।

इन्दुवदनावृत्तम्

कुञ्जरकराभभुजमिन्दुसमवक्त्रं कुञ्चितमितस्थितशिरोरुहकलापम्।
मन्दरतटाभपृथुवक्षसमधीशं तं जिनमवेक्ष्य दिविजाः प्रमदमीयुः।।१६६।।

शशिकला, मणिगणकिरणो वा वृत्तम्

विकसितसरसिजदलनिभनयनं करिकरसुरुचिरभुजयुगममलम्।
जिनवपुरतिशयरुचियुतममरा निददृशुरतिधृति विमुकुलनयनाः।।१६७।।
विधुरुचिहरचमररुहपरिगतं मनसिजशरशतनिपतनविजयि।
जिनवरवपुरवधुतसकलमलं निपपुरमृतमिव शुचि सुरमधुपाः।।१६८।।
कमलदलविलसदनिभिषनयनं प्रहसितनिभमुखमतिशयसुरभि।
सुरनरपरिवृढनयनसुखकरं व्यरुचदधिकरुचि जिनवृषभवपुः।१६९।।
जिनमुखशतदलमनिमिषनयनभ्रमरमतिसुरभि विधुतविधुरुचि।
मनसिजहिमहतिविरहितमतिरुक् पपुरविदितधृति सुरयुवतिदृशः।।१७०।।

उस समय घातियाकर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिनेन्द्रभगवान् के सुवर्ण के समान उज्ज्वल शरीर पर जो देवों के नेत्रों के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे वे ऐसे अच्छे सुशोभित हो रहे थे मानो कल्पवृक्ष के अवयवों पर पुष्पों का रस पीने की इच्छा करने वाले मदोन्मत्त भ्रमरों के समूह ही हों।।१६५।।

जिनकी भुजाएँ हाथी की सूँड़ के समान हैं, जिनका मुख चन्द्रमा के समान है जिनके केशों का समूह टेढ़ा, परिमित (वृद्धि से रहित) और स्थित (नहीं फड़ने वाला) है और जिनका वक्षःस्थल मेरुपर्वत के तट के समान है ऐसे देवाधिदेव जिनेन्द्रभगवान् को देखकर वे देव बहुत ही हर्षित हुए थे।।१६६।।

जिसके नेत्र, फूले हुए कमल के दल के समान हैं, जिनकी दोनों भुजाएँ हाथी की सूँड़ के समान हैं, जो निर्मल है और जो अत्यन्त कान्ति से युक्त है ऐसे जिनेन्द्र भगवान् के शरीर को वे देव लोग भारी सन्तोष से नेत्रों को उघाड़-उघाड़कर देख रहे थे।।१६७।।

जो चन्द्रमा की कान्ति को हरण करने वाले चमरों से घिरा हुआ है, जो कामदेव के सैकड़ों बाणों के निपात को जीतने वाला है, जिसने समस्त मल नष्ट कर दिये हैं और जो अतिशय पवित्र है ऐसे जिनेन्द्रदेव के शरीर को देवरूपी भ्रमर अमृत के समान पान करते थे।।१६८।।

जिसके टिमकार रहित नेत्र कमलदल के समान सुशोभित हो रहे थे, जिसका मुख हँसते हुए के समान जान पड़ता था, जो अतिशय सुगन्धि से युक्त था, देव और मनुष्यों के स्वामियों के नेत्रों को सुख करने वाला था और अधिक कान्ति से सहित था ऐसा भगवान् वृषभदेव का वह शरीर बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहा था।।१६९।।

जिस पर टिमकाररहित नेत्र ही भ्रमर बैठे हुए हैं, जो अत्यन्त सुगन्धित है जिसने चन्द्रमा की कान्ति को तिरस्कृत कर दिया है, जो कामदेवरूपी हिम के आघात से रहित है और जो अतिशय कान्तिमान् है ऐसे भगवान् के मुखरूपी कमल को देवांगनाओं के नेत्र असन्तुष्ट रूप से पान कर रहे थे।

भावार्थ—भगवान् का मुखकमल इतना अधिक सुन्दर था कि देवांगनाएँ उसे देखते हुए सन्तुष्ट ही न हो

विजितकमलदलविलसदसदृशदृशं सुरयुवतिनयनमधुकरततवपुषम्।
वृषभमजरमजममरपतिसुमहितं नमत परममतममितरुचिमृषिपतिम्।।१७१।।

मालिनीवृत्तम्

सरसिजनिभवक्त्रं पद्मकिञ्जल्कगौरं कमलदलविशालव्यायतास्पन्दिनेत्रम्।
सरसिरुहसमानामोदमच्छायमच्छस्फटिकमणिविभासि श्रीजिनस्याङ्गमीडे।।१७२।।
नयनयुगमताम्रं वक्ति कोपव्यपायं भ्रुकृटिरहितमास्यं शान्ततां यस्य शास्ति।
मदनजयमपाङ्गालोकनापायसौम्यं प्रकटयति यदङ्गं तं जिनं नन्नमीमि।।१७३।।

ऋषभगजविलसितवृत्तम्

गात्रमनङ्गभङ्गकृदतिसुरभिरुचिरं नेत्रमताम्रमत्यमलतररुचिविसरम्।
वक्त्रमदष्टसद्दशनवसनमिव हसद्यस्य विभाति तं जिनभवनमत सुधियः।।१७४।।
सौम्यवक्त्रममलकमलदलनिभदृशं हेमपुञ्जसदृशवपुषभृषभमृषिपम्।
रक्तपद्मरुचिभृदमलमृदुपदयुगं सन्नतोऽस्मि परमपुरुषमपरुषगिरम्।।१७५।।

पाती थीं।।१७०।।

जिनके अनुपम नेत्र कमलदल को जीतते हुए सुशोभित हो रहे हैं, जिनका शरीर देवांगनाओं के नेत्ररूपी भ्रमर से व्याप्त हो रहा है, जो जरा रहित हैं, जन्म रहित हैं, इन्द्रों के द्वारा पूजित हैं, अतिशय इष्ट हैं अथवा जिनका मत अतिशय उत्कृष्ट है, जिनकी कान्ति अपार है और जो ऋषियों के स्वामी हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव को हे भव्य जीवों तुम सब नमस्कार करो।।१७१।।

मैं श्री जिनेन्द्रभगवान् के उस शरीर की स्तुति करता हूँ जिसका कि मुख कमल के समान है, जो कमल की केशर के समान पीतवर्ण है, जिसके टिमकार रहित नेत्र कमलदल के समान विशाल और लम्बे हैं, जिसकी सुगन्धि कमल के समान थी, जिसकी छाया नहीं पड़ती और जो स्वच्छ स्फटिकमणि के समान सुशोभित हो रहा था।।१७२।।

जिनके ललाईरहित दोनों नेत्र जिनके क्रोध का अभाव बतला रहे हैं, भौंहों की टेढ़ाई से रहित जिनका मुख जिनकी शान्तता को सूचित कर रहा है और कटाक्षावलोकन का अभाव होने से सौम्य अवस्था को प्राप्त हुआ जिनका शरीर जिनके कामदेव की विजय को प्रकट कर रहा है। ऐसे उन जिनेन्द्रभगवान् को मैं बार–बार नमस्कार करता हूँ।।१७३।।

हे बुद्धिमान् पुरुषों, जिनका शरीर कामदेव को नष्ट करने वाला अतिशय सुगन्धित और सुन्दर है, जिनके नेत्र ललाईरहित तथा अत्यन्त निर्मल कान्ति के समूह से सहित है और जिनका मुख ओंठों को डसता हुआ नहीं है तथा हँसता हुआ–सा सुशोभित हो रहा है ऐसे उन वृषभजिनेन्द्र को नमस्कार करो।।१७४।।

जिनका मुख सौम्य है, नेत्र निर्मल कमलदल के समान हैं, शरीर सुवर्ण के पुञ्ज के समान है, जो ऋषियों के स्वामी हैं, जिनके निर्मल और कोमल चरणों के युगल लाल कमल की कांति धारण करते हैं, जो परम पुरुष हैं और जिनकी वाणी अत्यन्त कोमल है ऐसे श्री वृषभ जिनेन्द्र को मैं अच्छी तरह नमस्कार करता हूँ।।१७५।।

वाणिनीवृत्तम्

स जयति यस्य पादयुगलं जयत्पङ्कजं विलसति पद्मगर्भं मधिशय्य सल्लक्षणम्।
मनसिजरागमर्दनसहं जगत्प्रीणनं सुरपतिमौलिशेखरगलद्रजःपिञ्जरम्।।१७६।।

हरिणीवृत्तम्

जयति वृषभो यस्योत्तुङ्गं विभाति महासनं हरिपरिधृतं रत्नानद्धं परिस्फुरदंशुकम्।
अधरितजगन्मेरोर्लीलां विडम्बयदुच्चकैर्नतसुरतिरीटाग्र ग्रावद्युतीरिव तर्जयत्।।१७७।।

शिखरिणीवृत्तम्

समग्रां वैदग्धीं सकलशशभृन्मण्डलगतां सितच्छत्रं भाति त्रिभुवनगुरोर्यस्य विहसत्।
जयत्येष श्रीमान् वृषभजिनराणिर्जितरिपुर्नमद्देवेन्द्रोद्यन्मुकुटमणिघृष्टाङ्घ्रिकमलः।।१७८।।

पृथ्वीवृत्तम्

जयत्यमरनायकैरसकृदर्चिताङ्घ्रिद्वयः सुरोत्करकराधुतैश्चमरजोत्करैर्वीजितः।
गिरीन्द्रशिखरे गिरीन्द्र इव योऽभिषिक्तः सुरैः पयोब्धिशुचिवारिभिः शशिकराङ्कुरस्पर्धिभिः।।१७९।।

वंशपत्रपतितवृत्तम्

यस्य समुज्ज्वला गुणगणा इव रुचिरतरा भान्त्यभितो मयूखनिवहा गुणसलिलनिधेः।
विश्वजनीनचारुचरितः सकलजगदिनः सोऽवतु भव्यपङ्कजरविर्वृषभजिनविभुः।।१८०।।

जिनके चरण–युगल कमलों को जीतनेवाले हैं, उत्तम–उत्तम लक्षणों से सहित हैं, कामसम्बन्धी राग को नष्ट करने में समर्थ हैं, जगत् को सन्तोष देने वाले हैं, इन्द्र के मुकुट के अग्रभाग से गिरती हुई माला के पराग से पीले–पीले हो रहे हैं और कमल के मध्य में विराजमान कर सुशोभित हो रहे हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त हों।।१७६।।

जो बहुत ऊँचा है, सिंहों के द्वारा धारण किया हुआ है, रत्नों से जड़ा हुआ है, चारों ओर चमकती हुई किरणों से सहित है, संसार को नीचा दिखला रहा है, मेरुपर्वत की शोभा की खूब विडम्बना कर रहा है और जो नमस्कार करते हुए देवों के मुकुट के अग्रभाग में लगे हुए रत्नों की कान्ति की तर्जना करता–सा जान पड़ता है ऐसा जिनका बड़ा भारी सिंहासन सुशोभित हो रहा है वे भगवान् वृषभदेव सदा जयवन्त रहें।।१७७।।

तीनों लोकों के गुरु ऐसे जिन भगवान् का सफेद छत्र पूर्ण चन्द्रमण्डलसम्बन्धी समस्त शोभा को हँसता हुआ सुशोभित हो रहा है जिन्होंने घातियाकर्मरूपी शत्रुओं को जीत लिया है जिनके चरणकमल नमस्कार करते हुए इन्द्रों के देदीप्यमान मुकुटों में लगे हुए मणियों से घर्षित हो रहे हैं और जो अन्तरङ्ग तथा बहिरंग लक्ष्मी से सहित हैं ऐसे श्रीऋषभ जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहें।।१७८।।

इन्द्रों ने जिनके चरण–युगल की पूजा अनेक बार की थी, जिनपर देवों के समूह ने अपने हाथ से हिलाये हुए अनेक चमरों के समूह ढुराये थे और देवों ने मेरु पर्वत पर दूसरे मेरु पर्वत के समान स्थित हुए जिनका, चन्द्रमा की किरणों के अंकुरों के साथ स्पर्धा करने वाले क्षीरसागर के पवित्र जल से अभिषेक किया था वे श्री ऋषभ जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहें।।१७९।।

गुणों के समुद्रस्वरूप जिन भगवान् के उज्ज्वल और अतिशय देदीप्यमान किरणों के समूह गुणों के समूह के समान चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं, जिनका सुन्दर चरित्र समस्त जीवों का हित करने वाला है, जो सकल

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

यस्याशोकश्चलकिसलयश्चित्रपत्रप्रसूनो भाति श्रीमान् मरकतमयस्कन्धबन्धोज्ज्वलाङ्गः।
सान्द्रच्छायः सकलजनताशोकविच्छेदनेच्छः सोऽयं श्रीशो जयति वृषभो भव्यपद्माकरार्कः।।१८१।।

कुसुमितलतावेल्लितावृत्तम्

जीयाज्जैनेन्द्रः सुरुचिरतनुः श्रीरशोकाङ्घ्रिपो यो वातोद्धूतैः स्वैः प्रचलविट पैर्निंत्यपुष्पोपहारम्।
तन्वन्ध्याप्ताशः परभृतरुतातोद्यसंगीतहृद्यो नृत्यच्छाखाग्रैर्जिनमिव भजन्भाति भक्त्येव भव्यः।।१८२।।

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

यस्यां पुष्पप्रततिममराः पातयन्ति द्युमूर्ध्नः प्रीता नेत्रप्रततिमिव तां लोकमत्तालिजुष्टाम्।
वातोद्धुतैर्ध्वजवितततिभिर्व्योमसम्मार्जती वा भाति श्रेयः समवसृतिभूः साचिरं नस्तनोतु।।१८३।।

शार्दूलविक्रीडितम्

यस्मिन्नग्नरुचिर्विभाति नितरां रत्नप्रभाभास्वरे
भास्वान्सालवरो जयत्यमलिनो धूलीमयोऽसौ विभोः।
स्तम्भाः कल्पतरुप्रभाभरुचयो मानाधिकाश्चोद्ध्वजा
जीयासुर्जिनभर्तुरस्य गगनप्रोल्लङ्घिनो भास्वराः ।।१८४।।

जगत् के स्वामी हैं और जो भव्य जीवरूपी कमलों को विकसित करने के लिये सूर्य के समान हैं ऐसे श्री वृषभ जिनेन्द्र देव हम सबकी रक्षा करें ।।१८०।।

जिसके पल्लव हिल रहे हैं, जिसके पत्ते और फूल अनेक वर्ण के हैं, जो उत्तम शोभा से सहित है, जिसका स्कन्ध मरकतमणियों से बना हुआ है, जिसका शरीर अत्यन्त उज्ज्वल है, जिसकी छाया बहुत ही सघन है और समस्त लोगों का शोक नष्ट करने की जिसकी इच्छा है ऐसा जिनका अशोकवृक्ष सुशोभित हो रहा है और जो भव्य जीवरूपी कमलों के समूह को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हैं ऐसे वे बहिरंग और अन्तरंग लक्ष्मी के अधिपति श्रीवृषभ जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहें।।१८१।।

जिसका शरीर अतिशय सुन्दर है, जो वायु से हिलती हुई अपनी चंचल शाखाओं से सदा फूलों के उपहार फैलाता रहता है, जिसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली हैं, जो कोयलों के मधुर शब्दरूपी गाने–बजाने से मनोहर है और जो नृत्य करती हुई शाखाओं के अग्रभाग से भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करते हुए भव्य के समान सुशोभित हो रहा है ऐसा वह श्री जिनेन्द्रदेव का शोभायुक्त अशोकवृक्ष सदा जयवन्त रहे।।१८२।।

जिस समवसरण की भूमि में देव लोग प्रसन्न होकर अपने नेत्रों की पंक्ति के समान चंचल और उन्मत्त भ्रमरों से सेवित फूलों की पंक्ति आकाश के अग्रभाग से छोड़ते हैं अर्थात् पुष्पवर्षा करते हैं और जो वायु से हिलती हुई अपनी ध्वजाओं की पंक्ति से आकाश को साफ करती हुई सी सुशोभित होती है ऐसी वह समवसरण भूमि चिरकाल तक हम सबके कल्याण को विस्तृत करे।।१८३।।

रत्नों की प्रभा से देदीप्यमान रहने वाले जिस धूलीसाल में सूर्य निमग्नकिरण होकर अत्यन्त शोभायमान होता है ऐसा वह भगवान् का निर्मल धूलीसाल सदा जयवन्त रहे तथा जो कल्पवृक्ष से भी अधिक कान्ति वाले हैं जिनपर ऊँची ध्वजाएँ फहरा रही हैं, जो आकाश को उल्लंघन कर रही हैं और जो अतिशय देदीप्यमान हैं ऐसे जिनेन्द्रदेव के ये मानस्तम्भ भी सदा जयवन्त रहें।।१८४।।

वाप्यो रत्नतटाः प्रसन्नसलिला नीलोत्पलैरातता
गन्धान्धभ्रमरारवैर्मुखरिता भान्ति स्म यास्ताः स्तुमः।
तां चापि स्फुटपुष्पहासरुचिरां प्रोद्यत्प्रवालांकुरां
वल्लीनां वनवीथिकां तमपि च प्राकारमाद्यं विभोः।।१८५।।
प्रोद्यद् विद्रुमसन्निभैः किसलयैरारञ्जयद् यद्दिशो
भात्युच्चैः पवनाहतैश्च विटपैर्यन्नर्तितुं वोद्यतम् ।
रक्ताशोकवनादिकं वनमदश्चैत्यद्रुमैरङ्कितं
वन्देऽहं समवादिकां सृतिमिमां जैनीं चतुष्काश्रिताम् ।।१८६।।
रक्ताशोकवनं वनं च रुचिमत्सप्तच्छदानामदः
चूतानामपि नन्दनं परतरं यच्चम्पकानां वनम् ।
तच्चैत्यद्रुममण्डितं भगवतो वन्दामहे वन्दितं
देवेन्द्रैर्विनयानतेन शिरसा श्रीजैनबिम्बाङ्कितम् ।।१८७।।

छन्दः (?)

प्राकारात्परतो विभाति रुचिरा हरिवृषगरुडैः श्रीमन्माल्यगजाम्बरैश्य शिखिभिः प्रकटितमहिमा।
हंसैश्चाप्युपलक्षिता प्रविलसद्ध्वजवसनततिः यातामप्यमरार्चितामभिनुमः पवनविलुलिताम् ।।१८८।।

जिनके किनारे रत्नों के बने हुए हैं, जिनमें स्वच्छ जल भरा हुआ है, जो नीलकमलों से व्याप्त हैं और जो सुगन्धि से अन्धे भ्रमरों के शब्दों से शब्दायमान होती हुई सुशोभित हो रही हैं मैं उन बावड़ियों की स्तुति करता हूँ, तथा जो फूले हुए पुष्परूपी हास से सुन्दर है और जिसमें पल्लवों के अंकुर उठ रहे हैं ऐसे लतावन की भी स्तुति करता हूँ और इसी प्रकार भगवान के उस प्रसिद्ध प्रथम कोट की भी स्तुति करता हूँ।।१८५।।

जो देदीप्यमान मूँगा के समान अपने पल्लवों से समस्त दिशाओं को लाल–लाल कर रहे हैं, जो वायु से हिलती हुई अपनी ऊँची शाखाओं से नृत्य करने के लिए तत्पर हुए के समान जान पड़ते हैं, जो चैत्यवृक्षों से सहित हैं, जो जिनेन्द्र भगवान् की समवसरणभूमि में प्राप्त हुए हैं और जिनकी संख्या चार है ऐसे उन रक्त अशोक आदि के वनों की भी मैं वन्दना करता हूँ।।१८६।।

जो चैत्यवृक्षों से मण्डित हैं, जिनमें श्री जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाएँ विराजमान हैं और इन्द्र भी विनय के कारण झुके हुए अपने मस्तकों से जिनकी वन्दना करते हैं ऐसे, भगवान् के लाल अशोकवृक्षों का वन, यह देदीप्यमान सप्तपर्णवृक्षों का वन, वह आम्रवृक्षों का वन और वह अतिशय श्रेष्ठ चम्पकवृक्षों का वन, इन चारों वनों की हम वन्दना करते हैं।।१८७।।

जो अतिशय सुन्दर हैं, जो सिंह, बैल, गरुड़, शोभायमान माला, हाथी, वस्त्र, मयूर और हंसों के चिह्नों से सहित हैं, जिनका माहात्म्य प्रकट हो रहा है, जो देवताओं के द्वारा भी पूजित हैं और जो वायु से हिल रही हैं ऐसी जो कोट के आगे देदीप्यमान ध्वजाओं के वस्त्रों की पंक्तियाँ सुशोभित होती हैं उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूँ।।१८८।।

सुवदनावृत्तम्

यद्दूराद्धूयोममार्गं कलुषयति दिशां प्रान्तं स्थगयति प्रोत्सर्पद्धूपधूमैः सुरभयति जगद्विश्वं द्रुततरम् ।
तन्नः सद्धूपकुम्भद्वयमुरुमनसः प्रीतिं घटयतु श्रीमत्तन्नाट्यशालाद्वयमपि रुचिरं सालत्रयगतम् ।।१८९।।

छन्दः (?)

पुष्पपल्लवोज्ज्वलेषु कल्पपादपोरुकाननेषु हारिषु श्रीमदिन्द्रवन्दिताः स्वबुध्नसुस्थितेद्धसिद्धबिम्बका द्रुमाः।
सन्ति तानपि प्रणौम्यमूं नमानि चस्मरामि च प्रसन्नधीः स्तूपपंक्तिमप्यभूं समग्ररत्नविग्रहां जिनेन्द्रबिम्बिनीम्।।१९०।।

स्रग्धरा

वीथीं कल्पद्रुमाणां सवनपरिवृतिं तामतीत्य स्थिता या
शुभ्रा प्रासादपङ्क्तिः स्फटिकमणिमयः सालवर्यस्तृतीयः।
भर्तुः श्रीमण्डपश्च त्रिभुवनजनतासंश्रयात्तप्रभावः
पीठं चोद्यत्त्रिभूमं श्रियमनु तनुताद् गन्धकुट्याश्रितं नः।।१९१।।
मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाध्वा।
सालः कल्पद्रुमाणां सपरिवृतवनं स्तूपहर्म्यावली च
प्राकारः स्फाटिकोन्तर्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः।।१९२।।

जो फैलते हुए धूप के धूएँ से आकाशमार्ग को मलिन कर रहे हैं जो दिशाओं के समीप भाग को आच्छादित कर रहे हैं और जो समस्त जगत् को बहुत शीघ्र ही सुगन्धित कर रहे हैं ऐसे प्रत्येक दिशा के दो–दो विशाल तथा उत्तम धूपघट हमारे मन में प्रीति उत्पन्न करें, इसी प्रकार तीनों कोटों सम्बन्धी, शोभा–सम्पन्न दो–दो मनोहर नाट्यशालाएँ भी हमारे मन में प्रीति उत्पन्न करें।।१८९।।

फूल और पल्लवों से देदीप्यमान और अतिशय मनोहर कल्पवृक्षों के बड़े–बड़े वनों में लक्ष्मीधारी इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय तथा जिनके मूलभाग में सिद्ध भगवान् की देदीप्यमान प्रतिमाएँ विराजमान हैं ऐसे जो सिद्धार्थवृक्ष हैं मैं प्रसन्नचित्त होकर उन सभी की स्तुति करता हूँ, उन सभी को नमस्कार करता हूँ और उन सभी का स्मरण करता हूँ, इसके सिवाय जिनका समस्त शरीर रत्नों का बना हुआ है और जो जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से सहित हैं ऐसे स्तूपों की पंक्ति का भी मैं प्रसन्नचित्त होकर स्तवन, नमन तथा स्मरण करता हूँ।।१९०।।

वन की वेदी से घिरी हुई कल्पवृक्षों के वनों की पंक्ति के आगे जो सफेद मकानों की पंक्ति है उसके आगे स्फटिकमणि का बना हुआ जो तीसरा उत्तम कोट है, उसके आगे तीनों लोकों के समस्त जीवों को आश्रय देने का प्रभाव रखने वाला जो भगवान् का श्रीमण्डप है और उसके आगे जो गन्धकुटी से आश्रित तीन कटनीदार ऊँचा पीठ है वह सब हम लोगों की लक्ष्मी को विस्तृत करे।।१९१।।

संक्षेप में समवसरण की रचना इस प्रकार है–सबसे पहले (धूलीसाल के बाद) चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ हैं, मानस्तम्भों के चारों ओर सरोवर हैं, फिर निर्मल जल से भरी हुई परिखा है, फिर पुष्पवाटिका (लतावन) है, उसके आगे पहला कोट है, उसके आगे दोनों ओर दो–दो नाट्यशालाएँ हैं, उसके आगे दूसरा अशोक आदि का वन है, उसके आगे वेदिका है, तदनन्तर ध्वजाओं की पंक्तियाँ हैं, फिर दूसरा कोट है, उसके

देवोऽर्हन्प्राङ्मुखो वा नियतिमनुसरन्नुत्तराशामुखो वा
यामध्यास्ते स्म पुण्यां समवसृतिमहीं तां परीत्याध्यवात्सुः।
प्रादक्षिण्येन धीन्द्रा द्युयुवतिगणिनीनृस्त्रियस्त्रिश्च देव्यो
देवाः सेन्द्राश्च मर्त्याः पशव इति गणा द्वादशामी क्रमेण।।१९३।।
योगीन्द्रा रुन्द्रबोधा विबुधयुवतयः सार्यका राजपत्न्यो
ज्योतिर्वन्येशकन्या भवनजवनिता भावना व्यन्तराश्च।
ज्योतिष्काः कल्पनाथा नरवरवृषभास्तिर्यगौघैः सहामी
कोष्ठेषूक्तेष्वतिष्ठन् जिनपतिमभितो भक्तिभारावनम्राः।।१९४।।
प्रादुःष्य द्वाङ्मयूखैर्विघटिततिमिरो धूतसंसाररात्रि–
स्तत्संध्या संधिकल्पां मुहुरपघटयन् क्षीणमोहीमवस्थाम्।
सज्ज्ञानोदग्रसादि प्रतिनियत नयोद्वेगसप्ति प्रयुक्त–
स्याद्वादस्यन्दनस्थो भृशमथ रुरुचे भव्यबन्धुर्जिनार्कः।।१९५।।

आगे वेदिका सहित कल्पवृक्षों का वन है, उसके बाद स्तूप और स्तूपों के बाद मकानों की पंक्तियाँ हैं, फिर स्फटिकमणिमय तीसरा कोट है, उसके भीतर मनुष्य, देव और मुनियों की बारह सभाएँ हैं तदनन्तर पीठिका है और पीठिका के अग्रभाग पर स्वयम्भू भगवान् अरहन्तदेव विराजमान हैं।।।१९२।।

अरहन्तदेव स्वभाव से ही पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख कर जिस समवसरण भूमि में विराजमान होते हैं उसके चारों ओर प्रदक्षिणा रूप से क्रमपूर्वक १ बुद्धि के ईश्वर गणधर आदि मुनिजन, २ कल्पवासिनी देवियाँ, ३ आर्यिकाएँ–मनुष्यों की स्त्रियाँ, ४ भवनवासिनी देवियाँ, ५ व्यन्तरणी देवियाँ, ६ ज्योतिष्किणी देवियाँ ७ भवनवासी देव, ८ व्यन्तर देव, ९ ज्योतिष्क देव, १० कल्पवासी देव, ११ मनुष्य और १२ पशु इन बारह गणों के बैठने योग्य बारह सभाएँ होती हैं।।१९३।।

उनमें से पहले कोठे में अतिशय ज्ञान के धारक गणधर आदि मुनिराज, दूसरे में कल्पवासी देवों की देवांगनाएँ, तीसरे में आर्यिका सहित राजाओं की स्त्रियाँ तथा साधारण मनुष्यों की स्त्रियाँ, चौथे में ज्योतिष देवों की देवांगनाएँ, पाँचवें में व्यन्तर देवों की देवांगनाएँ, छठे में भवनवासी देवों की देवांगनाएँ, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यन्तर देव, नवें में ज्योतिषी देव, दसवें में कल्पवासी देव, ग्यारहवें में चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ मनुष्य और बारहवें में पशु बैठते हैं। ये सब ऊपर कहे हुए कोठों में भक्तिभार से नम्रीभूत होकर जिनेन्द्र भगवान् के चारों ओर बैठा करते हैं।।१९४।।

तदनन्तर जिन्होंने प्रकट होते हुए वचनरूपी किरणों से अन्धकार को नष्ट कर दिया है, संसाररूपी रात्रि को दूर हटा दिया है और उस रात्रि की सन्ध्या सन्धि के समान क्षीण मोह नामक बारहवें गुणस्थान की अवस्था को भी दूर कर दिया है जो सम्यग्ज्ञानरूपी उत्तम सारथी के द्वारा वश में किए हुए सात नयरूपी वेगशाली घोड़ों से जुते हुए स्याद्वादरूपी रथपर सवार हैं और जो भव्य जीवों के बन्धु हैं ऐसे श्रीजिनेन्द्रदेव रूपी सूर्य अतिशय देदीप्यमान हो रहे थे।।१९५।।

इत्युच्चैः संगृहीतां समवसृतिमहीं धर्मचक्रादिभर्तु-
र्भव्यात्मा संस्मरेद्यः स्तुतिमुखरमुखो भक्तिनम्रेण मूर्ध्ना।
जैनीं लक्ष्मीमचिन्त्यां सकलगुणमयीं प्राश्नुतेऽसौ महर्द्धिं
चूडाभिर्नाकभाजां मणिमुकुटजुषामर्चितां स्रग्धराभिः।।१९६।।

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
भगवत्समवसृतिविभूतिवर्णनं नाम त्रयोविंशं पर्व।। २३।।

इस प्रकार ऊपर जिसका संग्रह किया गया है ऐसी, धर्मचक्र के अधिपति जिनेन्द्र भगवान् की इस समवसरण भूमि का जो भव्य जीव भक्ति से मस्तक झुकाकर स्तुति से मुख को शब्दायमान करता हुआ स्मरण करता है वह अवश्य ही मणिमय मुकुटों से सहित देवों के मालाओं को धारण करने वाले मस्तकों के द्वारा पूज्य, समस्त गुणों से भरपूर और बड़ी–बड़ी ऋद्धियों से युक्त जिनेन्द्र भगवान् की लक्ष्मी अर्थात् अर्हन्त अवस्था की विभूति को प्राप्त करता है।।१९६।।

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिषष्टिलक्षण
महापुराण के संग्रह में समवसरणविभूति का वर्णन करने वाला
तेईसवां पर्व समाप्त हुआ।। २३।।

समवसरण रचना

(हरिवंशपुराण से*)

भगवान नेमिनाथ के केवलज्ञान का वर्णन

पूर्वाह्णेऽश्वयुजस्यातः शुक्लप्रतिपदि प्रभुः। शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा चतुर्घातिमहावनम्।।११२।।
अनन्तकेवलज्ञानदर्शनादिचतुष्टयम् । त्रैलोक्येन्द्रासनाकम्पि संप्रापत्परदुर्लभम् ।।११३।।

स्रग्धरावृत्तम्

घण्टारावोरुसिंहस्फुटपटहरवोदारशङ्खस्वनैस्तां
जैनीं कैवल्यलब्धिं सकलसुरगणा द्राग्विदित्वा यथास्वम् ।
इन्द्राः सिंहासनोच्चैर्मुकुटविचलनैः स्वान् प्रयुञ्ज्यावधीन् स्वैः
प्राप्तानीकैः सहायुः क्षुभितसलिलधिव्रातविद्धिस्त्रिलोक्याः।।११४।।
आपूर्यावार्यवेगैर्गननजलनिधिं वाहनानां समूहैः
सप्तानीकैरनेकैस्त्रिदशपतिगणस्तं परीत्य प्रपेदे।
प्राच्चैर्मूर्धावलेपं गिरिपतिमधिपस्नानकल्याणमात्रं
भूयः कल्याणकण्ठे गुणभरणगुणादूर्जयन्तं जयन्तम् ।।११५।।
मन्दारादि द्रुमाणां सुरभितककुभां पुष्पवृष्ट्या सुराणां
दिव्यस्त्रीगीतमूर्छन्मुखरितभुवनैर्दुन्दुभीनां निनादैः।

तदनन्तर आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल के समय भगवान् नेमिनाथ ने शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा चार घातियारूपी महावन को जलाकर तीन लोक के इन्द्रों के आसन कँपा देने वाले एवं अन्य जनदुर्लभ, केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनन्तचतुष्टय प्राप्त किए।।११२-११३।।

घण्टाओं के शब्द, विशाल सिंहनाद, दुन्दुभियों के स्पष्ट शब्द और शंखों की भारी आवाज से समस्त देवों ने शीघ्र ही निश्चय कर लिया कि जिनेन्द्र भगवान् को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है तथा इन्द्रों ने भी सिंहासन और उन्नत मुकुटों के कम्पित होने से अपने-अपने अवधिज्ञान का प्रयोग कर उक्त बात का ज्ञान कर लिया। तदनन्तर तीनों लोकों के इन्द्र, समुद्रों के समूह को क्षुभित करने वाली अपनी-अपनी सेनाओं के साथ गिरनार पर्वत की ओर चल पड़े।।११४।।

उस समय इन्द्रों ने अवार्य वेग से युक्त वाहनों के समूह और सात प्रकार की अनेक सेनाओं से आकाशरूपी समुद्र को व्याप्त कर दिया और आकर गिरनार पर्वत की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उस समय वह पर्वत, ऊँचे शिखर का अभिमान धारण करने वाले गिरिराज-सुमेरु पर्वत को भी जीत रहा था क्योंकि सुमेरु पर्वत पर तो भगवान् का मात्र जन्मकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक हुआ था और गिरनार पर्वत पर दीक्षाकल्याणक के बाद पुनः ज्ञानकल्याणक होने से अनेक गुण प्रकट हुए थे।।११५।।

देवलोग, दिशाओं को सुगन्धित करने वाले मन्दार आदि वृक्षों के फूलों की वर्षा करने लगे। देवांगनाओं के

---

* हरिवंशपुराण पृ. ६४४, ६४५ से।

भेत्रा लोकस्य शोकं फलकुसुमभृताशोकशाखाभृता च
श्वेतच्छत्रत्रयेण त्रिभुवनविभुताचिह्नभूतोरुभूम्ना।।११६।।
हंसालीपातलीलैर्धवलितखचलैश्चामराणां सहस्रैः
भाभिर्भामण्डलेन प्रतिहतविकसदानुभामण्डलेन।
नानारत्नौघरोचिर्जनितसुरधनुर्हेमसिंहासनेन
भाषाभेदस्फुरन्त्या स्फुरणविरहितस्वाधरोद्भाषया च।।११७।।
अष्टाभिः प्रातिहार्यैरतिशमितपरैः स्वैर्विशेषैरशेषैः
कर्मापायस्वभावत्रिदिवपतिमवैस्तैश्चतुस्त्रिंशता च।
त्रैलोक्योद्धारणाय प्रकृतिधृतधृतिर्नेमिनाथो जगत्यां
द्वाविंशो हारिवंशो गुणगणदिनकृत्तीर्थकृत्प्रादुरासीत्।।११८।।

सुन्दर संगीत से मिश्रित दुन्दुभियों के शब्द संसार को मुखरित करने लगे। लोगों के शोक को नष्ट करने वाला फल और फूलों से युक्त अशोक वृक्ष प्रकट हो गया। तीन लोक की विभुता के चिह्नस्वरूप श्वेत छत्रत्रय सिर पर फिरने लगे। हंसावली के पात के समान सुशोभित एवं पर्वत की भूमि को सफेद करने वाले हजारों चमर ढुलने लगे। अपनी कान्ति से देदीप्यमान सूर्य की प्रभा के समूह को पराजित करने वाला भामण्डल प्रकट हो गया। नाना रत्नसमूह की किरणों से इन्द्रधनुष को उत्पन्न करने वाला स्वर्ण-सिंहासन आविर्भूत हो गया और नाना भाषाओं के भेद से युक्त एवं ओंठों के स्फुरण से रहित दिव्यध्वनि खिरने लगी। इस प्रकार पूर्वोक्त आठ प्रातिहार्यों, दूसरों को अत्यन्त शान्त करने वाली अपनी समस्त विशेषताओं और केवलज्ञान-सम्बन्धी, जन्म-सम्बन्धी तथा देवकृत चौंतीस अतिशयों से विभूषित, तीन लोक के उद्धार के लिए स्वाभाविक धैर्य के धारक और अनेक गुणों के समूह को प्रकट करने के लिए सूर्य के समान, हरिवंश के शिरोमणि बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान् पृथ्वी पर प्रकट हुए।।११६-११८।।

भगवान नेमिनाथ का समवसरण*

सप्तपञ्चाशः सर्गः

समवादि समापादि शरणं शरणं क्षणात् । त्रिजगत्प्राणिनां देवैः पाकशासनशासनात्।।१।।
सर्वो द्वारवतीलोको यदुभोजकुलाम्बुधिः। आरुरोह गिरिं भूत्या रामकेशवपूर्वकः।।२।।
अवलोक्य जिनेन्द्रस्य शरणं समवादिकम् । बहिरन्तःपरं प्रापद्विस्मयं जनसागरः।।३।।
यादृशी समवस्थानभूमिस्तीर्थकृतामिह। तादृशी श्रोतृलोकस्य समासेन निगद्यते।।४।।
भूमेः स्वभावभूताया दिव्यारत्निप्रमोच्छ्रितिः। भूमिस्तावत्समुच्छ्राया कल्पभूमिरुपर्यतः।।५।।
स्वर्गश्रियं श्रिया जेत्री चतुरस्रा सुखप्रदा। सैकान्तद्वादशाद्यात्मयोजनां कालदेशतः।।६।।
उच्चैर्गन्धकुटीदेशकर्णिका पद्ममूर्तिवत् । भाति भूमिरसौ बाह्य भूश्रीपत्रपरम्परा।।७।।
इन्द्रनीलमयी भूमिर्बाह्यादर्शतलोपमा। भूयसामपि भूयस्त्वं विशतां विदधाति या।।८।।
दूरादिन्द्रादयो यस्यां मानयन्ति नमस्यया। मानार्हास्त्रिजगन्नाथं साभूर्मानाङ्गणामिधा।।९।।

अथानन्तर देवों ने इन्द्र की आज्ञा से क्षण-भर में तीन जगत् के जीवों के लिए शरणभूत समवसरण की रचना कर दी।।१।।

बलदेव और कृष्ण को आदि ले यादव और भोजवंश के सागर-स्वरूप समस्त द्वारिका निवासी बड़े वैभव के साथ गिरिनार पर्वत पर चढ़े और भीतर-बाहर जिनेन्द्र भगवान् का समवशरण देखकर वह जनता का अपार सागर परम आश्चर्य को प्राप्त हुआ।।२-३।।

तीर्थंकरों की समवसरण भूमि जैसी होती है उसका यहाँ संक्षेप से श्रोताओं के लिए वर्णन किया जाता है।।४।।

समवसरण की दिव्य भूमि स्वाभाविक भूमि से एक हाथ ऊँची रहती है और उससे एक हाथ ऊपर कल्पभूमि होती है।।५।।

यह भूमि अपनी शोभा से स्वर्गलक्ष्मी को जीतने वाली, चौकोर, सुखदायी और देशकाल के अनुसार बारह योजन से लेकर एक योजन तक विस्तार वाली होती है।

भावार्थ-समवसरण भूमिका उत्कृष्ट विस्तार बारह योजन और कम-से-कम विस्तार एक योजन प्रमाण होता है।।६।।

यह भूमि कमल के आकार की होती है इसमें गन्धकुटी तो कर्णिका के समान ऊँची उठी होती है और बाह्य भूमि कमलदल के समान विस्तृत है।।७।।

यह इन्द्रनीलमणि से निर्मित होती है, इसका बाह्य भाग दर्पणतल के समान निर्मल होता है और प्रवेश करने वाले बहुत से जीवों को एक साथ स्थान देने वाली रहती है।।८।।

जिसमें मान के योग्य इन्द्र आदि देव त्रिलोकीनाथ-भगवान् की दूर से ही पूजा करते हैं वह मानांगण नाम की भूमि है।।९।।

---

* हरिवंशपुराण पृ. ६४६ से ६५९ तक।

महादिक्षु चतस्रोऽस्या गव्यूतिद्वयविस्तृताः। वीथ्यस्तन्मध्यगानीयुर्मानपीठान्पुरः प्रभान् ।।१०।।
स्वोत्सेधत्रिगुणात्मीयविस्तराण्युक्तिविस्तरैः। सौवर्णरत्नमूर्त्तीनि मान्यन्ते नृसुरासुरैः।।११।।
नृसुरामानवस्तम्भानास्थायार्चन्ति यत्र भूः। सा त्वास्थानाङ्गणाभिख्या ज्वलल्लौहितरत्नभा।।१२।।
मध्ये वीथि चतस्रोऽत्र त्रिभङ्गा हैमपीठिकाः। भान्त्युरोद्वयसोच्छ्रायाः वृत्ताः क्रोशार्धविस्तृताः।।१३।।
चापोनपीठिकाव्यासा योजनाभ्यधिकोच्छ्रयाः। शुम्भिता मानवस्तम्भाश्चत्वारः पीठिकास्वधि।।१४।।
द्विषड्योजनदृश्यास्ते पालिकास्याम्बुजस्थिताः। वज्रस्फटिकवैडूर्यमूलमध्याग्रविग्रहाः।।१५।।
द्विसहस्राश्रयो नानारत्नरश्मिविमिश्रिताः। चतुर्दिक्षूर्ध्वसिद्धार्चाः रत्नभूतोरुपालिकाः।।१६।।
पालिकामुखपद्मस्थतपनीयस्फुरद्घटाः। घटास्याबद्धफलकाः श्रीभामाभिषवश्रियः।।१७।।
श्रीचूलारत्नमाचक्रमास्यविंशतियोजनाः। साभिमानमनोदेवमानवस्तंभना बभुः।।१८।।
ततः सरांसि चत्वारि शुम्भदम्भोजभांज्यलम् । हंससारसचक्राह्वारावरम्यककुप्स्वलम् ।।१९।।

इस भूमि की चारों महादिशाओं में दो-दो कोश विस्तृत चार महावीथियाँ हैं। ये वीथियाँ अपने मध्य में स्थित चार मानस्तम्भों के पीठ धारण करती हैं।।१०।।

ये पीठ अपनी ऊँचाई से तिगुने चौड़े एवं सुवर्ण और रत्नमयी मूर्तियों के धारक होते हैं तथा मनुष्य, सुर, असुर सभी आकर इन्हें नमस्कार करते हैं।।११।।

जहाँ स्थित होकर मनुष्य और देव, मानस्तम्भों की पूजा करते हैं वह आस्थानांगणा नाम की भूमि देदीप्यमान लाल मणियों की कान्ति को धारण करती है।१२।।

वीथियों के मध्य में तीन कटनीदार चार सुवर्णमयी पीठिकाएँ हैं जो छाती बराबर ऊँची हैं और आधा कोश चौड़ी हैं।।१३।।

उन पीठिकाओं पर चार मानस्तम्भ सुशोभित हैं जो पीठिकाओं की चौड़ाई से एक धनुष कम चौड़े हैं और एक योजन से कुछ अधिक ऊँचे हैं।।१४।।

वे मानस्तम्भ बारह योजन की दूरी से दिखाई देते हैं। पालिका के अग्रभाग पर जो कमल हैं उन्हीं पर स्थित हैं, उनका मूलभाग हीरा का, मध्य भाग स्फटिक का और अग्रभाग वैडूर्यमणि का बना हुआ है।।१५।।

हर एक मानस्तम्भ दो-दो हजार कोणों से सहित हैं-दो-दो हजार पहल के हैं, नाना रत्नों की किरणों से मिले हुए हैं, उनकी चारों दिशाओं में ऊपर सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं तथा उनकी रत्नमयी बड़ी-बड़ी पालिकाएँ हैं।।१६।।

पालिकाओं के अग्रभाग पर जो कमल हैं उन पर सुवर्ण के देदीप्यमान घट हैं, उन घटों के अग्रभाग से लगी हुई सीढ़ियाँ हैं तथा उन सीढ़ियों पर लक्ष्मीदेवी के अभिषेक की शोभा दिखलायी गयी है।।१७।।

वे मानस्तम्भ लक्ष्मीदेवी के चूड़ारत्न के समान अपनी कान्ति के समूह से बीस योजन तक का क्षेत्र प्रकाशमान करते रहते हैं तथा जिनका मन अहंकार से युक्त है ऐसे देव और मनुष्यों को वहीं रोक देने वाले हैं।।१८।।

उन मानस्तम्भों की चारों दिशाएँ हंस, सारस और चकवों के शब्दों से अत्यन्त सुन्दर हैं तथा उनमें खिले हुए कमलों से युक्त चार सरोवर हैं।।१९।।

अतो वज्रमयो वप्रो वक्षोदघ्नो घनद्युतिः। द्विगुणीभूतविस्तारः परीयाय समन्ततः।।२०।।
परीत्य परिखातोऽस्थाज्जलप्रभमणिक्षितः। जानुदघ्नाम्बुगम्भीरा कृष्णसाटीव भूस्त्रियाः।।२१।।
हेमाम्भोजररजःपुञ्जपिञ्जरी भाविताम्भसि। स्वच्छायां दिङ्मुखान्यस्यां साङ्गरागाणि चात्यभान् ।।२२।।
वल्लीवनमतोऽप्यन्तः परीत्य स्थितमित्यभात् । कुसुमामोदिता शान्तं शकुन्तालिकुलाकुलम् ।।२३।।
प्राकारोऽन्तः परीयाय कनत्कनकभास्वरः। विजयादिबृहद्रौप्यचतुर्गोपुरमण्डितः।।२४।।
तत्र दौवारिका भौमाः कटकादिविभूषणाः। प्रभावोत्सारितायोग्या मुद्गरोद्धतपाणयः।।२५।।
मणितोरणपार्श्वेषु गोपुराणां स्फुरत्त्विषाम् । छत्रचामरभृङ्गारपूर्वाष्टशतकान्यमान् ।।२६।।
तद्गोपुरपुरो भान्ति प्रेक्षाशालास्त्रिभूमिकाः। द्विर्द्विर्वीथ्यंतयोर्नृत्यद्द्वात्रिंशत्सुरकन्यकाः।।२७।।
भात्यशोकवनं प्राच्यां सप्तपर्णवनं त्वपाक्। प्रतीच्यां चम्पकवनमुदीच्यामाम्रसद्वनम् ।।२८।।
ससिद्धप्रतिमोऽशोकः सप्तपर्णश्च चम्पकम् । तथैवाम्रतरुस्तेषां वनानामधिपाः क्रमात् ।।२९।।

सरोवरों के आगे एक वज्रमय कोट है जो छाती बराबर ऊँचा है, अत्यन्त कान्ति से युक्त है, ऊँचाई से दूना चौड़ा है और चारों ओर से घेरे हुए है।।२०।।

इस कोट को चारों ओर से घेरकर एक परिखा स्थित है जिसकी भूमि जल के समान कान्ति वाले मणियों से निर्मित है, उसमें घुटनों प्रमाण गहरा पानी भरा है तथा वह पृथ्वी रूपी स्त्री की नीली साड़ी के समान जान पड़ती है।।२१।।

वह परिखा अत्यन्त स्वच्छ है तथा उसका जल स्वर्णमय कमलों की पराग के समूह से पीला-पीला हो रहा है अतएव उसमें प्रतिबिम्बित दिशारूप स्त्रियों के मुख अंगराग से सहित के समान जान पड़ते हैं।।२२।।

उसके आगे चारों ओर से घेरकर स्थित लताओं का वन सुशोभित है जो फूलों के द्वारा दिशाओं के अन्त भाग को सुगन्धित कर रहा है तथा पक्षियों और भ्रमरों के समूह से व्याप्त है।।२३।।

उसके आगे देदीप्यमान सुवर्ण के समान चमकीला एवं विजय आदि चाँदी के बड़े-बड़े चार गोपुरों से सुशोभित कोट, चारों ओर से घेरे हुए हैं।।२४।।

उन गोपुरों पर व्यन्तर जाति के देव द्वारपाल हैं जो कटक आदि आभूषणों से सुशोभित हैं, अपने प्रभाव से अयोग्य व्यक्तियों को दूर हटाते रहते हैं तथा जिनके हाथ मुद्गरों से उद्धत होते हैं।।२५।।

देदीप्यमान कान्ति से युक्त उन गोपुरों के मणिमय तोरणों के दोनों ओर छत्र, चमर तथा भृंगार आदि अष्टमंगल द्रव्य एक सौ आठ, एक सौ आठ संख्या में सदा सुशोभित रहते हैं।।२६।।

उन गोपरों के आगे वीथियों के दोनों ओर तीन-तीन खण्ड की दो-दो नाट्यशालाएँ हैं जिनमें बत्तीस-बत्तीस देव-कन्याएँ नृत्य करती हैं।।२७।।

तदनन्तर पूर्व दिशा में अशोक वन, दक्षिण में सप्तपर्ण वन, पश्चिम में चम्पक वन और उत्तर में आम्रवन सुशोभित है।।२८।।

इन चारों वनों में अशोक वन का अशोक वृक्ष, सप्तपर्ण वन का सप्तपर्ण वृक्ष, चम्पक वन का चम्पक वृक्ष और आम्र वन का आमवृक्ष स्वामी है। ये स्वामी वृक्ष सिद्ध की प्रतिमाओं से सहित हैं अर्थात् इनके नीचे सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान रहती हैं।।२९।।

त्रिकोणाः मण्डलाकाराश्चतुरस्राश्च वापिकाः। वनेषु रत्नतट्यन्ताशुद्धस्फटिकभूमयः।।३०।।
विश्वाः सतोरणाः लक्ष्यास्तीर्थ्यास्तूच्चैर्वराण्डकैः। मण्डितागाहमानेष्वगाधा द्विक्रोशविस्तृताः।।३१।।
नन्दा नन्दोत्तरानन्दानन्दवत्यभिनन्दिनी। नन्दघोषेत्यमूर्वाप्यः षडशोकवनस्थिताः।।३२।।
विजयाभिजया जैत्री वैजयन्त्यपराजिताः। जयोत्तरेति षड्वाप्यः सप्तपर्णवनाश्रिताः।।३३।।
कुमुदा नलिनी पद्मा पुष्करा विकचोत्पला। कमलेत्यपि षड्वाप्यश्चम्पकाख्यवने मताः।।३४।।
प्रभासा भास्वती भासा सुप्रभा भानुमालिनी। स्वयंप्रभेति षड्वाप्यः सहकारवनोदिताः।।३५।।
उदयो विजयः प्रीतिः ख्यातिश्चेति क्रमोदितैः। फलैः पूर्वादयो वाप्यः पूज्यन्ते तत्फलार्थिभिः।।३६।।
तद्वापीपुष्पसंदोहं यथोक्तं प्राप्य भाक्तिकाः। आस्तूपं क्रमशोभ्यर्च्य विशन्ति क्रमकोविदाः।।३७।।
अन्तरेणोदयं प्रीतिं चाभितस्त्रिभुवोऽध्वसु। भान्ति नाटकशालास्ता हाटकोज्ज्वलमूर्तयः।।३८।।
अध्यर्धक्रोशविस्तारा द्वात्रिंशज्ज्योतिषां स्त्रियः। तद्भुवो रत्ननिर्माणाः स्वच्छस्फटिकभित्तयः।।३९।।
तासु भक्त्या प्रनृत्यन्ति द्वात्रिंशज्ज्योतिषां स्त्रियः। हावभावविलासाद्या रसपुष्टिसपुष्टयः।।४०।।

उन वनों में तिकोनी, चौकोनी और गोलाकार अनेक वापिकाएँ हैं। उन वापिकाओं के तट रत्ननिर्मित हैं तथा उनकी भूमि शुद्ध स्फटिक से निर्मित है। ये सभी वापिकाएँ तोरणों से युक्त हैं, दर्शनीय हैं, सीढ़ियों से युक्त हैं, ऊँचे-ऊँचे बरण्डों से सुशोभित हैं, प्रवेश करने में गहरी हैं और दो कोश चौड़ी हैं।।३०-३१।।

नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दवती, अभिनन्दिनी, और नन्दघोषा ये छः वापिकाएँ अशोक वन में स्थित हैं।।३२।।

विजया, अभिजया, जैत्री, वैजयन्ती, अपराजिता और जयोत्तरा ये छः वापिकाएँ सप्तपर्ण वन में स्थित हैं।।३३।।

कुमुदा, नलिनी, पद्मा, पुष्करा, विश्वोत्पला और कमला ये छः वापियाँ चम्पक वन में मानी गयी हैं।।३४।।

और प्रभासा, भास्वती, भासा, सुप्रभा, भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छः वापियाँ आम्रवन में कही गयी हैं।।३५।।

पूर्व आदि दिशाओं की वापिकाएँ क्रम से उदय, विजय, प्रीति और ख्याति नामक फल देती हैं तथा इन फलों के इच्छुक मनुष्य इन वापिकाओं की पूजा करते हैं।।३६।।

क्रम के जानने वाले भक्तजन उन वापिकाओं से यथोक्त फूलों का समूह प्राप्त कर स्तूपों तक क्रम-क्रम से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हुए आगे प्रवेश करते हैं।।३७।।

उदय और प्रीतिरूप फल को देने वाली वापिकाओं के बीच के मार्ग के दोनों ओर तीन खण्ड की सुवर्णमय देदीप्यमान बत्तीस नाट्यशालाएँ हैं।।३८।।

ये नाट्यशालाएँ डेढ़ कोश चौड़ी हैं, नाना प्रकार के बेलबूटों से सुशोभित हैं और उनकी भूमियाँ रत्नों की बनी हैं तथा उनकी दीवालें स्वच्छ स्फटिक से निर्मित हैं।।३९।।

उनमें ज्योतिषी देवों की बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती हैं जो हाव, भाव और विलास से युक्त तथा शृंगार आदि रसों की पुष्टि से सुपुष्ट होती हैं।।४०।।

सचतुर्गोपुरातोऽपि पर्येति वनवेदिका। दिव्या वज्रमयी वीथीपार्श्वयोर्ध्वजपङ्क्तयः।।४१।।
त्रिदण्डविस्तृताश्चित्राः पीठिकाः प्रतिभक्तिगाः। योजनार्धोच्छ्रितास्तासु वंशा रत्नात्मपूर्वकाः।।४२।।
तदग्रपालिकानद्धफलकाधिष्ठिता ध्वजाः। महान्तो दश चित्राः सत्किङ्किणीचित्रपट्टकाः।।४३।।
शिखिहंसगरुत्मत्स्रक्सिंहेभमकराम्बुजैः। वृषरूपेण चक्रेण समधिष्ठितमूर्त्तयः।।४४।।
तेषामष्टशतं जातिर्द्वात्रिंशञ्च चतुःशती। ध्वजसंख्या भवेदेषां सामान्येन समासतः।।४५।।
सद्वात्रिंशत्सहस्राः स्युर्लक्षाः पंचाशदष्ट च। साधिका ध्वजसंख्येयं सैकदिक्का द्विसंगुणा।।४६।।
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि लक्षा षट्षष्टिरष्टसु। ध्वजकोट्यश्चतस्रः स्युश्चतुर्दिक्ष्वपि साधिकाः।।४७।।
प्रीतिकल्याणमध्ये स्युरभितः पञ्चभूमिकाः। नृत्तशालाः प्रनृत्यन्ति यत्र भावनयोषितः।।४८।।
प्राकारोऽन्तः परीयाय द्वितीयो हेमनिर्मितः। पञ्चभूमिकरत्नश्रीचतुर्गोपुरभूषितः।।४९।।
हटद्घाटकपीठस्थाः कम्बुकण्ठगुणोज्ज्वलाः। शातकुम्भमयाः कुम्भाः साम्भोजास्याः सहाम्भसः।।५०।।
शोभन्ते तद्द्विपार्श्वेषु द्वौ द्वौ मङ्गलदर्शनाः। वेत्रदण्डधरा द्वास्थास्तद्द्वाःसु भवनाधिपाः।।५१।।

उसके आगे चार गोपुरों से युक्त अत्यन्त सुन्दर वज्रमयी वनवेदी है जो पूर्वोक्त वनों को चारों ओर से घेरे हुए है। चार गोपुरों के आगे चार वीथियाँ हैं और उनके दोनों पसवाड़ों में ध्वजाओं की पंक्तियाँ फहराती रहती हैं।।४१।।

प्रत्येक विभाग में उन ध्वजाओं की पृथक्-पृथक् पीठिकाएँ हैं जो तीन धनुष चौड़ी हैं, चित्र-विचित्र हैं तथा उन पर आधा योजन ऊँचे रत्नमयी बाँस लगे हुए हैं।।४२।।

उन बाँसों के अग्रभाग पर जो पटिया लगे हैं उनमें दश प्रकार की रंग-बिरंगी, छोटी-छोटी घण्टियों और चित्रपट्टकों से युक्त बड़ी ध्वजाएँ फहराती रहती हैं।।४३।।

वे दस प्रकार की ध्वजाएँ क्रम से मयूर, हंस, गरुड़, माला, सिंह, हाथी, मकर, कमल, बैल और चक्र के चिह्न से चिह्नित होती हैं।।४४।।

एक दिशा में एक जाति की ध्वजाएँ एक सौ आठ होती हैं और चारों दिशाओं की मिलकर एक जाति की चार सौ बत्तीस होती हैं। यह इनकी सामान्य रूप से संक्षेप में संख्या बतलायी है।।४५।।

विशेष रीति से एक दिशा में एक करोड़ सोलह लाख चौंसठ हजार हैं और चारों दिशाओं में चार करोड़ अड़सठ लाख छत्तीस हजार कुछ अधिक हैं।।४६-४७।।

प्रीति और कल्याणरूप फल देने वाली वापिकाओं के बीच मार्ग में दोनों ओर पाँच खण्ड की नृत्यशालाएँ हैं जिनमें भवनवासी देवों की देवांगनाएँ नृत्य करती हैं।।४८।।

नृत्यशालाओं के आगे पाँच-पाँच खण्ड के रत्नमयी चार गोपुरों से विभूषित स्वर्णनिर्मित दूसरा कोट है।।४९।।

गोपुरों के दोनों पसवाड़ों में देदीप्यमान सुवर्ण के पीठों पर स्थित, शंख के समान सुन्दर कण्ठों में पड़ी मालाओं से सुशोभित मुखों पर कमल धारण करने वाले एवं जल से भरे स्वर्ण निर्मित मंगलकलश दो-दो की संख्या में सुशोभित हैं। इस दूसरे कोट के द्वारों पर भवनवासी देवों के इन्द्र द्वारपाल हैं जो बेंत की छड़ी धारण किए हुए पहरा देते हैं।।५०-५१।।

पुरस्ताद्गोपुराणां च द्वे द्वे नाटकवेश्मनी। पुरस्तात्तु ततो हैमौ द्वौ द्वौ धूपघटौ स्फुटौ।।५२।।
चतुर्दिक्सिद्धरूपाढ्यं द्विर्द्विः सिद्धार्थपादपम् । कल्पवृक्षवनं तत्र वीथ्यन्तेषु यथायथम् ।।५३।।
सचतुर्गोपुरातोऽन्तर्वेदिका वनपाततः। तोरणान्तरिताः सार्वाः स्तूपा नव नवाध्वसु।।५४।।
पद्मरागमहास्तूपपर्यन्तेषु सभागृहाः। हेमरत्नमयाश्चित्रा मुनिदेवगणोचिताः।।५५।।
नभःस्फटिकनिर्माणस्ततः सालस्तृतीयकः। चतुश्चित्रमहारत्नसप्तभूमिकगोपुरः।।५६।।
विजयो विश्रुतं कीर्तिर्विमलोदयविश्वधुक्। वासवीर्य वरं चेति पूर्वाख्या ख्यापिताष्टधा।।५७।।
वैजयन्तं शिवं ज्येष्ठं वरिष्ठानघधारणम् । याम्यमप्रतिघं चेति दक्षिणाख्याष्टधा मताः।।५८।।
जयन्तामितसारं च सुधामाक्षोभ्यसुप्रभम् । वरुणं वरदं चेति पश्चिमाख्याष्टधा स्मृताः।।५९।।
अपराजितमर्थाख्यमतुलार्थममोघकम् । उदयं चाक्षयं दोदक्कोबेरं पूर्णकामकम् ।।६०।।
सुरत्नासनमध्यस्था द्रष्टणां भवदर्शिनः। तद्द्वारोमयपार्श्वेषु भान्ति मङ्गलदर्पणाः।।६१।।
यैः प्रध्वस्तमहाध्वान्तप्रभावलयभास्वरैः। भास्वतो भासमुद्धूय भासन्ते गोपुराण्यलम् ।।६२।।

गोपुरों के आगे दो-दो नाट्यशालाएँ हैं और उनके आगे स्वर्ण निर्मित दो-दो धूपघट रखे हुए हैं।।५२।।

उससे आगे चारों दिशाओं में सिद्धों की प्रतिमाओं से युक्त, दो-दो सिद्धार्थ वृक्षों से सहित कल्पवृक्षों का वन वीथियों के अन्त में यथारीति स्थित हैं।।५३।।

तदनन्तर चार गोपुरों से सहित, वन की रक्षा करने वाली अन्तर्वेदिका है और मार्गों में तोरणों से युक्त, सबका भला करने वाले नौ-नौ स्तूप हैं।।५४।।

वे स्तूप पद्मराग मणियों से निर्मित होते हैं तथा उनके समीप स्वर्ण और रत्नों के बने, मुनियों और देवों के योग्य नाना प्रकार के सभागृह रहते हैं।।५५।।

सभागृहों के आगे आकाशस्फटिकमणि से बना, नाना प्रकार के महारत्नों से निर्मित सात खण्ड वाले चार गोपुरों से सुशोभित तीसरा कोट है।।५६।।

इस कोट के पूर्व द्वार के विजय, विश्रुत, कीर्ति, विमल, उदय, विश्वधुक्, वासवीर्य और वर ये आठ नाम प्रसिद्ध हैं।।५७।।

दक्षिण द्वार के वैजयन्त, शिव, ज्येष्ठ, वरिष्ठ, अनघ, धारण, याम्य और अप्रतिघ ये आठ नाम कहे गए हैं।।५८।।

पश्चिम द्वार के जयन्त, अमितसार, सुधाम, अक्षोभ्य, सुप्रभ, वरुण और वरद ये आठ नाम स्मरण किए गए हैं।।५९।।

और उत्तर द्वार के अपराजित, अर्थ, अतुलार्थ, उदक, अमोघक, उदय, अक्षय और पूर्णकामक ये आठ नाम हैं।।६०।।

उन द्वारों के पसवाड़ों में उत्तम रत्नमय आसनों के मध्य में स्थित मंगलरूप दर्पण सुशोभित हैं जो देखने वालों के पूर्व भव दिखलाते हैं।।६१।।

ये दर्पण गाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाले कान्ति के समूह से सदा देदीप्यमान रहते हैं और उनसे गोपुर सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत कर अतिशय शोभायमान होते हैं।।६२।।

विजयादिपुरद्वाःसु द्वाःस्थास्तिष्ठन्ति कल्पजाः। यथायथं ज्वलद्भूषा जयकल्याणकारिणः।।६३।।
शालास्त्रयोऽप्यमी त्वेकद्वित्रिक्रोशोच्छ्रयोन्मिताः। मूलमध्योपरिव्या सैस्तदर्धार्धसुसंमिताः।।६४।।
स्वरत्नित्रयहीनोक्तप्रमाणजगतीतलाः। हस्तोद्विद्धाक्षविस्तीर्णव्यामार्धकपिशीर्षकाः।।६५।।
ततोऽप्यन्तर्वणं नानातरुवल्लीगृहाकुलम्। मञ्चप्रेङ्खागिरिप्रेक्षागृहकोटिविराजितम्।।६६।।
वेदिकाबद्धवीथीषु कल्याणादिजयाजिरम्। कदल्यः कदलीकल्पाः प्रकाशन्तेऽन्तरस्थिताः।।६७।।
अन्तर्नाटकशाला स्यात्ततः कल्याणसप्रभाः। लोकपालविलासिन्यो यत्र नृत्यन्ति सन्ततम्।।६८।।
तदन्तरे भवत्यन्यत्पीठं पीठगुणास्पदम्। प्रोद्दंशुरत्नजालास्ततिमिरावलिमण्डलम्।।६९।।
सिद्धार्थपादपाः सन्ति सिद्धरूपविराजितैः। विटपैर्व्याप्य दिक्प्रान्तमिच्छयेव स्थितास्ततः।।७०।।
स्तूपा द्वादशभूभूषा भूषयन्त्यथ मन्दिरम्। हिरण्मया महामेरुं चत्वारो मेरवो यथा।।७१।।
चतुर्दिग्गोपुरद्वारवेदिकालंकृताः शुभाः। चतस्रो दिक्ष्वथ ज्ञेयाश्चतसृष्वपि वापिकाः।।७२।।
नन्दाभद्राजयापूर्णेत्यभिख्याभिः क्रमोदिताः। यज्जलाभ्युक्षिताः पूर्वां जातिं जानन्ति जन्तवः।।७३।।

विजयादिक गोपुरों में यथायोग्य 'जय हो' 'कल्याण हो' इन शब्दों का उच्चारण करने वाले एवं देदीप्यमान आभूषणों से युक्त कल्पवासी देव द्वारपाल रहते हैं।।६३।।

ये तीनों कोट एक कोश, दो कोश और तीन कोश ऊँचे होते हैं तथा मूल, मध्य और ऊपरी भाग में इनकी चौड़ाई ऊँचाई से आधी होती है।।६४।।

इन कोटों के जगतीतलों का प्रमाण अपनी ऊँचाई से तीन हाथ कम कहा गया है और उनके ऊपर बने हुए बन्दर के शिर के आकार के कंगूरे एक हाथ तथा एक वितस्ति चौड़े और आधा वेमा ऊँचे कहे गए हैं।।६५।।

उसके आगे नाना वृक्षों और लतागृहों से व्याप्त, मंच, प्रेंखागिरि और प्रक्षागृहों से सुशोभित अन्तर्वण है।६६।।

वेदिकाओं से बद्ध वीथियों के बीच में कल्याणजय नाम का आँगन है और उसमें शाल्मली वृक्ष के समान ऊँचे एवं अन्तर से स्थित केला के वृक्ष प्रकाशमान हो रहे हैं।।६७।।

तदनन्तर उन्हीं के भीतर नाटकशाला है जिसमें सुवर्ण के समान कान्ति की धारक लोकपाल देवों की देवांगनाएँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं।।६८।।

उनके मध्य में श्रेष्ठ गुणों का स्थान तथा ऊँची उठने वाली किरणों से सुशोभित रत्नावली से अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाला दूसरा पीठ है।।६९।।

उसके आगे सिद्धार्थ वृक्ष हैं जो सिद्धों की प्रतिमाओं से सुशोभित शाखाओं से इच्छापूर्वक ही मानों दिशाओं को व्याप्त कर स्थित हैं।।७०।।

उसके आगे एक मन्दिर है जिसे पृथ्वी के आभरण स्वरूप बारह स्तूप उस तरह सुशोभित करते रहते हैं जिस तरह कि सुवर्णमय चार मेरु पर्वत जम्बूद्वीप के महामेरु को सुशोभित करते रहते हैं।।७१।।

इनके आगे चारों दिशाओं में शुभ वापिकाएँ हैं जो चारों दिशाओं में बने हुए गोपुर-द्वारों और वेदिका से अलंकृत हैं।।७२।।

नन्दा, भद्रा, जया और पूर्णा ये चार उनके नाम हैं। उन वापिकाओं के जल में स्नान करने वाले जीव अपना पूर्व-भव जान जाते हैं।।७३।।

ताः पवित्रजलापूर्णसर्वपापरुजाहराः। परापरभवाः सप्त दृश्यन्ते यासु पश्यताम्।।७४।।
अथ गव्यूतमुद्विद्धं योजनाधिकविस्तृतम् । कटीमात्रवरण्डस्थकदलीध्वजसंकुलम्।।७५।।
निरन्तरविशन्निर्यज्जनद्वारोच्चतोरणम् । त्रिलोकविजयाधानमहो भाति जयाजिरम्।।७६।।
मुक्ताबालुकविस्तीर्णप्रवालसिकतान्तरम् । सुरत्नकुसुमैश्चित्रं हेमाम्भोजैस्तदर्चितैः।।७७।।
तपनीयरसालिप्तैस्तपनैरिव भूगतैः। तत्र तत्र यथादेश्यं मण्ड्यन्ते पृथुमण्डलैः।।७८।।
प्रासादैर्मण्डपैश्चान्यैः सुखावासैः सुशोभते। देवासुरनरापूर्णैस्तत्र तत्र विचित्रितम्।।७९।।
क्वचिदालेख्य हृद्यानि वेश्मानि क्वचिदन्तरे। पुराणाद्भुतभूतीनि चित्राख्यानान्वितानि च।।८०।।
क्वचित्पुण्यफलप्राप्त्या पापपाकेन च क्वचित् । धर्माधर्मगतिं साक्षाद्दर्शयन्तीव पश्यतः।।८१।।
दानशीलतपःपूजाप्रारम्भास्तत्फलानि च। तद्वियोगविपत्तीश्च तानि श्रद्धापयन्त्यमून्।।८२।।
स्फुरत्पुलकसंसक्तमुक्तादामोन्मिषन्मणिः। पताका घण्टिकारावरमणीयानिलेरिता।।८३।।
उदंशुरत्नमालेव स्फुरन्ती वीचिरर्णवे। वीक्ष्यते व्योमनीन्द्राद्यः कौतुकाद्येन चाभितः।।८४।।
राजतीन्द्रध्वजः सोऽयं तन्मध्ये हेमपीठिकाम् । अलंकुर्वन् यथामूर्तो देहो देवजयश्रियः।।८५।।

वे वापिकाएँ पवित्र जल से भरी एवं समस्त पापरूपी रोगों को हरने वाली हैं। इनमें देखने वाले जीवों को अपने आगे पीछे के सात भव दिखने लगते हैं।।७४।।

वापिकाओं के आगे एक जयांगण सुशोभित है जो एक कोश ऊँचा है, एक योजन से कुछ अधिक चौड़ा है, कटि बराबर ऊँचे बरण्डों पर स्थित कदली-ध्वजाओं से व्याप्त है, जिनमें मनुष्य निरन्तर प्रवेश करते और निकलते रहते हैं ऐसे द्वारों और उच्च तोरणों से युक्त है, तीन लोक की विजय का आधार है, उसमें बीच-बीच में मूँगाओं की लाल-लाल बालू का अन्तर देकर मोतियों की सफेद बालू बिछी हुई है, उत्तम रत्नमय पुष्पों और रखे हुए सुवर्ण कमलों से चित्र-विचित्र है। उस जयांगण के भूभाग, जहाँ-तहाँ सुवर्ण रस से लिप्त अतएव पृथ्वी पर आए हुए सूर्यों के समान दिखने वाले विशाल वर्तुलाकार मण्डलों से सुशोभित हैं। जहाँ-तहाँ नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित वह जयांगण, देव, असुर और मनुष्यों से परिपूर्ण भवनों, मण्डपों तथा अन्य सुखकर निवास स्थानों से सुशोभित है।।७५७९।।

कहीं चित्रों से सुन्दर और कहीं पुराणों में प्रतिपादित आश्चर्यकारी विभूति से युक्त तथा नाना प्रकार के कथानकों से सहित भवन बने हैं।।८०।।

वे भवन कहीं पुण्य के फल की प्राप्ति से देखने वाले लोगों को धर्म का साक्षात् फल दिखलाते हैं तो कहीं पाप का परिपाक दिखाकर अधर्म का साक्षात् फल दिखलाते हैं।।८१।।

वे भवन, उन दर्शकजनों को दान, शील, तप और पूजा के प्रारम्भ तथा उनके फलों की एवं उनके अभाव में होने वाली विपत्तियों की श्रद्धा कराते हैं।।८२।।

उस जयांगण के मध्य में सुवर्णमय पीठ को अलंकृत करता हुआ इन्द्रध्वज सुशोभित होता है जो ऐसा जान पड़ता है मानों भगवान् की विजयलक्ष्मी का मूर्तिधारी शरीर ही हो। उस इन्द्रध्वज में देदीप्यमान गोले, लटकती हुई मोतियों की माला और जगमगाते हुए मणियों से युक्त एक पताका लगी रहती है। वह पताका वायु से कम्पित होने के कारण घण्टियों के शब्द से अत्यन्त रमणीय जान पड़ती है। ऊपर उठती हुई किरणों से युक्त रत्नों की माला से सुशोभित वह पताका जब आकाश में फहराती है तब ऐसी जान पड़ती है मानो समुद्र से लहर ही उठ रही हो। इन्द्रादिक देव उसे बड़े कौतुक से देखते हैं।।८३-८५।।

ततः स्तम्भसहस्त्रस्थो मण्डपोऽस्ति महोदयः। नाम्ना मूर्तिमती यत्र वर्तते श्रुतदेवता।।८६।।
तां कृत्वा दक्षिणे भागे धीरैर्बहुश्रुतैर्वृतः। श्रुतं व्याकुरुते यत्र श्रायसं श्रुतकेवली।।८७।।
तदर्धमानाश्चत्वारस्तत्परीवारमण्डपाः। आक्षेपण्यादयो येषु कथ्यन्ते कथकैः कथाः।।८८।।
तत्प्रकीर्णकवासेषु चित्रेष्वाचक्षते स्फुटम्। ऋषयः स्वेष्टमर्थिभ्यः केवलादिमहर्द्धयः।।८९।।
तपनीयमयं पीठं ततश्चित्रलताचितम्। यत्तद्वल्युपहारेण यथाकालं समर्च्यते।।९०।।
पीठार्हश्रीपदद्वारं सरत्नकुसुमोत्करम्। मण्डलैः पूर्यते मध्ये मार्गं चन्द्रार्कसप्रभैः।।९१।।
अभितः स्वाख्यया द्वौ तं मण्डपौ स्तः प्रभासकौ। अभ्यध्वं राजतो यत्र निधीशौ कामदायिनौ।।९२।।
प्रेक्षाशाले विशाले स्तः प्रमदाख्ये ततोऽन्तरे। यत्र कल्पनिवासिन्यो नृत्यन्त्यप्सरसः सदा।।९३।।
विजयाजिरकोणेषु विलसत्केतुमालिनः। चत्वारो योजनोद्विद्धा लोकस्तूपा भवन्त्यमी।।९४।।
अधोवेत्रासनाकारा झल्लरीसममध्यगाः। ऊर्ध्वं मृदङ्गसंस्थानाः स्वान्ततालाभनालिकाः।।९५।।
स्वच्छस्फटिकरूपास्ते सुव्यक्तान्तर्निवेशकाः। दृश्यते लोकविन्यांसो यत्रादर्शतले यथा।।९६।।

उसके आगे एक हजार खम्भों पर खड़ा हुआ महोदय नाम का मण्डप है जिसमें मूर्तिमती श्रुतदेवता विद्यमान रहती है।।८६।।

उस श्रुतदेवता को दाहिने भाग में करके, बहुश्रुत के धारक अनेक धीर-वीर मुनियों से घिरे श्रुतकेवली कल्याणकारी श्रुत का व्याख्यान करते हैं।।८७।।

महोदय मण्डप से आधे विस्तार वाले चार परिवार मण्डप और हैं जिनमें कथा कहने वाले पुरुष आक्षेपिणी आदि कथाएँ कहते रहते हैं।।८८।।

इन मण्डपों के समीप में नाना प्रकार के फुटकर स्थान भी बने रहते हैं जिनमें बैठकर केवलज्ञान आदि महाऋद्धियों के धारक ऋषि इच्छुकजनों के लिए उनकी इष्ट वस्तुओं का निरूपण करते हैं।।८९।।

उसके आगे नाना प्रकार की लताओं से व्याप्त एक सुवर्णमय पीठ रहता है जिसकी भव्यजीव नाना प्रकार से समयानुसार पूजा करते हैं।।९०।।

उस पीठ का श्रीपद नाम का द्वार है जो रत्नों और फूलों के समूह से युक्त है तथा जो मार्ग के बीच में बने हुए सूर्य और चन्द्रमा के समान देदीप्यमान मण्डलों से परिपूर्ण है।।९१।।

उस द्वार के दोनों ओर प्रभासक नाम के दो मण्डप हैं जिनमें मार्ग के सम्मुख, इच्छानुसार फल देने वाले निधियों के स्वामी दो देव सुशोभित रहते हैं।।९२।।

उनके आगे प्रमदा नाम की दो विशाल नाट्यशालाएँ हैं जिनमें कल्पवासिनी अप्सराएँ सदा नृत्य करती रहती हैं।।९३।।

विजयांगण के कोनों में चार लोकस्तूप होते हैं जिनपर पताकाओं की पंक्तियाँ फहराती रहती हैं, तथा जो एक योजन ऊँचे रहते हैं।।९४।।

ये लोकस्तूप, नीचे वेत्रासन के समान, मध्य में झालर के समान,ऊपर मृदंग के समान और अन्त में तालवृक्ष के समान लम्बी नालिका से सहित हैं।।९५।।

इनका स्वच्छ स्फटिक के समान रूप होता है, अतः इनके भीतर की रचना अत्यन्त स्पष्ट रहती है। इन स्तूपों में लोक की रचना दर्पणतल के समान स्पष्ट दिखाई देती है।।९६।।

मध्यलोकस्वरूपान्तर्व्यक्तनिर्माणमूर्त्तयः। मध्यलोका इति ख्याताः सन्ति स्तूपास्ततः परे।।९७।।
मन्दरस्तूपनामानो मन्दराकारभास्वराः। चतुःकाण्डचतुर्दिक्षु चैत्या भान्ति ततोऽपरे।।९८।।
ततोऽन्तःकल्पवासाख्याः कल्पवासिनिवेशिनः। स्तूपास्ते कल्पवासर्द्धि साक्षात्कुर्वन्ति पश्यताम् ।।९९।।
ग्रैवेयकपरास्तेऽन्ये नाम्ना स्तूपास्तथाविधाः। ततो ग्रैवेयकाभिख्यां दर्शयन्तीव मानवान् ।।१००।।
नवानुदिशनामानस्ततः स्तूपा विराजते। नवानुदिशमध्यक्षं पश्यन्ते यत्र प्राणिनः।।१०१।।
विजयादिचतुर्दिक्का विमानोद्भासिनस्ततः। सर्वार्थदायिनः सन्ति स्तूपाः सर्वार्थसिद्धयः।।१०२।।
सिद्धस्तूपाः प्रकाशन्ते ततोऽन्ये स्फटिकामलाः। यत्रैव दर्पणच्छाया दृश्यते सिद्धरूपभाक्।।१०३।।
भव्यकूटाख्यया स्तूपा भास्वत्कूटास्ततोऽपरे। यानभव्या न पश्यन्ति प्रभावान्धीकृतेक्षणाः।।१०४।।
प्रमोहा नाम सन्त्यन्ये स्तूपा यत्र प्रमोहिताः। विस्मरन्ति यथाग्राहं चिराभ्यस्तं च देहिनः।।१०५।।
प्रबोधाख्या भवन्त्यन्ये स्तूपा यत्र प्रबोधिताः। तत्त्वमासाद्य संसारान्मुच्यन्ते साधवो ध्रुवम् ।।१०६।।
एवमन्योऽन्यसंसक्तवेदिकातोरणोज्ज्वलाः। दश स्तूपाः समुत्तुङ्गाः राजन्त्यापरिधेः क्रमात् ।।१०७।।

इन स्तूपों के आगे मध्यलोक नाम से प्रसिद्ध स्तूप हैं जिनके भीतर मध्यलोक की रचना स्पष्ट दिखती है।।९७।।

आगे मन्दराचल के समान देदीप्यमान मन्दर नाम के स्तूप हैं जिनपर चारों दिशाओं में भगवान् की प्रतिमाएँ सुशोभित हैं।।९८।।

उनके आगे कल्पवासियों की रचना से युक्त कल्पवास नामक स्तूप हैं जो देखने वालों को कल्पवासी देवों की विभूति साक्षात् दिखाते हैं।।९९।।

उनके आगे ग्रैवेयकों के समान आकार वाले ग्रैवेयक स्तूप हैं जो मनुष्यों को मानो ग्रैवेयकों की शोभा ही दिखाते रहते हैं।।१००।।

उनके आगे अनुदिश नाम के नौ स्तूप सुशोभित हैं जिनमें प्राणी नौ अनुदिशों को प्रत्यक्ष देखते हैं।।१०१।।

आगे चलकर जो चारों दिशाओं में विजय आदि विमानों से सुशोभित हैं ऐसे समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले सर्वार्थसिद्धि नाम के स्तूप हैं।।१०२।।

वन के आगे स्फटिक के समान निर्मल सिद्ध स्तूप प्रकाशमान हैं जिनमें सिद्धों के स्वरूप को प्रकट करने वाली दर्पणों की छाया दिखाई देती है।।१०३।।

उनके आगे देदीप्यमान शिखरों से युक्त भव्यकूट नाम के स्तूप रहते हैं जिन्हें अभव्य जीव नहीं देख पाते क्योंकि उनके प्रभाव से उनके नेत्र अन्धे हो जाते हैं।।१०४।।

उनके आगे प्रमोह नाम के स्तूप हैं जिन्हें देखकर लोग अत्यधिक विभ्रम में पड़ जाते हैं और चिरकाल से अभ्यस्त गृहीत वस्तु को भी भूल जाते हैं।।१०५।।

आगे चलकर प्रबोध नाम के अन्य स्तूप हैं जिन्हें देखकर लोग प्रबोध को प्राप्त हो जाते हैं और तत्त्व को प्राप्त कर साधु हो निश्चित ही संसार से छूट जाते हैं।।१०६।।

इस प्रकार जिनकी वेदिकाएँ एक दूसरे से सटी हुई हैं तथा जो तोरणों से समुद्भासित हैं ऐसे अत्यन्त ऊँचे दशस्तूप क्रम-क्रम से परिधि तक सुशोभित हैं।।१०७।।

ततोऽस्ति क्रोशविस्तारःपरिधिर्धनुरुच्छ्रितिः। यत्र मण्डलभूवार्यं परियन्ति नरामराः।।१०८।।
बाह्याः सप्तदश न्यस्ता गव्यूतैर्वृतमेकतः। कर्णिकाथ तदन्तस्था ज्ञेया सार्धत्रियोजना।।१०९।।
परिवेष इवार्कं यः परिधिः परिवेष्टते। चित्ररत्नमयोऽन्तस्थं भासुरं परिमण्डलम्।।११०।।
निर्मित्सानन्तरं भर्तुर्व्रजस्योत्पद्यते पुरम् । दिव्यं तत्र प्रभावो हि मनसा ज्ञायिनां महान्।।१११।।
त्रिलोकसारं श्रीकान्तं श्रीप्रभं शिवमन्दिरम् । त्रिलोकीलोककान्तिश्री श्रीपुरं त्रिदशप्रियम्।।११२।।
लोकालोकप्रकाशा द्यौरुदयोऽभ्युदयावहम् । क्षेमं क्षेमपुरं पुण्यं पुण्याहं पुष्पकास्पदम्।।११३।।
भुवः स्वर्भूस्तपः सत्यं लोकालोकोत्तमं रुचिः। रुचावहमुदारर्धिं दानधर्मपुरं परम्।।११४।।
श्रेयः श्रेयस्करस्तीर्थं तीर्थावहमुदग्रहम् । विशालचित्रकूटं धीश्रीधरं च त्रिविष्टपम्।।११५।।
मङ्गलोत्तमकल्याणशरणादिपुराणि पूः। जयापराजितादित्यजयन्त्यचलसंपुरम्।।११६।।
विजयं तं जसन्ताभं विमलं विमलप्रभम्। कामभूर्गगनाभोगं कल्याणं कलिनाशनम् ।।११७।।
पवित्रं पञ्चकल्याणं पद्मावर्तः प्रभोदयः। परार्घ्यमण्डिता वासौ महेन्द्रं महिमालयम् ।।११८।।
स्वायम्भुवं सुधाधात्री शुद्धावासः सुखावती। विरजा वीतशोकार्थविमला विनयावनिः।।११९।।
भूतधात्री पुराकल्पः पुराणं पुण्यसंचयः। ऋषीवती यमवती रत्नवत्याजरामरा।।१२०।।
प्रतिष्ठा ब्रह्मनिष्ठोर्वी केतुमालिन्यरिन्दमम्। मनोरमं तमःपारमरत्नीरत्नसंचयम् ।।१२१।।
अयोध्यामृतधानीति समं ब्रह्मपुराख्यया। जाताह्वयमुदात्तार्थं तत्कल्पज्ञैरुदीर्यते।।१२२।।

इसके आगे एक कोट रहता है जो एक कोश चौड़ा तथा एक धनुष ऊँचा होता है और उसके मण्डल की भूमि को बचाकर मनुष्य तथा देव प्रदक्षिणा देते रहते हैं।।१०८।।

इस परिधि में बाहर की ओर सत्रह कर्णिकाएँ हैं जो एक-एक कोश विस्तृत हैं और भीतर की ओर एक कर्णिका है जो साढ़े तीन योजन विस्तार वाली है (?) ।।१०९।।

जिस प्रकार परिवेश सूर्य को घेरता है उसी प्रकार चित्र-विचित्र रत्नों से निर्मित यह परिधि भीतर के देदीप्यमान मण्डल को घेरे रहती है।।११०।।

वहाँ गणधर देव की इच्छा करते ही एक दिव्य पुर बन जाता है सो ठीक ही है क्योंकि मनःपर्यय ज्ञान के धारक जीवों का प्रभाव महान् होता है।।१११।।

वह पुर कल्प के ज्ञाता मनुष्य के द्वारा त्रिलोकसार, श्रीकान्त, श्रीप्रभु, शिवमन्दिर, त्रिलोकीश्री, लोक कान्तिश्री, श्रीपुर, त्रिदशप्रिय, लोकालोकप्रकाशाद्यौ, उदय, अभ्युदयावह, क्षेम, क्षेमपुर, पुण्य, पुण्याह, पुष्पकास्पद, भुवःस्वर्भूः, तपःसत्य, लोकालोकोत्तम, रुचि, रुचावह, उदारर्द्धि, दानधर्मपुर, श्रेय, श्रेयस्कर, तीर्थं, तीर्थावह, उदग्रह, विशाल, चित्रकूट, धीश्रीधर, त्रिविष्टप, मंगलपुर, उत्तमपुर, कल्याणपुर, शरणपुर, जयपुरी, अपराजितापुरी, आदित्यपुरी, जयन्तीपुरी, अचलसंपुर, विजयन्त, विमल, विमलप्रभ, कामभू, गगनाभोग, कल्याण, कलिनाशन, पवित्र, पंचकल्याण, पद्मावर्त, प्रभोदय, परार्घ्य, मण्डितावास, महेन्द्र, महिमालय, स्वायम्भुव, सुधाधात्री, शुद्धावास, सुखावती, विरजा, वीतशोका, अर्थविमला, विनयावनि, भूतधात्री, पुराकल्प, पुराण, पुण्यसंचय, ऋषीवती, यमवती, रत्नवती, अजरामरा, प्रतिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठोर्वी, केतुमालिनी, अरिन्दम, मनोरम, तमःपार, आरत्नी, रत्नसंचय, अयोध्या, अमृतधानी, ब्रह्मपुर, जाताह्वय और उदात्तार्थ नाम से कहा जाता है।।११२-१२२।।

अथ त्रैलोक्यसारैकसंदोहमयमद्भुतम्। भाति भर्तृप्रभावोत्थं तत्पदं बहुविस्मयम् ।।१२३।।
कृतावधानस्तत्सिद्धिं भूयः स्रष्टापि चिन्तयन्। ध्रुवं मोतुह्यतेऽन्यस्य तथा चेत्तत्र का कथा।।१२४।।
दशषोडशभिस्तस्य सुवर्णमणिजातिभिः। यथास्थानं स्वयं चित्रं निर्माणमभिराजते।।१२५।।
तलं तिस्रो जगत्यश्च तत्र क्रोशार्धविस्तृताः। उपर्युपरि तत्र स्यात्परिहाणिश्च तावती।।१२६।।
तासां वज्रमयी सिद्धिश्चित्ररत्नोज्ज्वला भुवाम् । यत्प्रभा शक्रचापानि तनोति परितः परा।।१२७।।
उरोदघ्ना वरण्डास्ते भूषयन्ति ज्वलत्प्रभाः। जगतीर्यत्र राजन्ते कदल्यो धनुरन्तराः।।१२८।।
त्रिंशदक्षमितै[१]: कूटैर्द्विगुणायतकोष्ठकैः। द्विगुणैर्भूयते तासु दशदण्डान्तरास्थितैः।।१२९।।
द्वौ द्वौ दौवारिकावासावभितः स्तस्तदन्तिके। यत्र वैश्रवणस्यार्थः प्रतिद्वारं प्रकाशते।।१३०।।
कूटानां सप्तशत्यासु द्वासप्तत्यधिका क्रमात् । चत्वारिंशदष्टयुक्ता कोष्ठकानां च सा गणिः।।१३१।।
द्वाविंशतिशतान्याहुर्विंशानि जगतीत्रये। कूटसंख्या समासेन कोष्ठकानां च तावती।।१३२।।
एकाष्टलोकभीभङ्गा[२] नवैकद्विचतुर्भियः[३]। षडस्तिखैकभङ्गाः[४] स्युर्जगतीकेतवः क्रमात् ।।१३३।।

भगवान् के प्रभाव से उत्पन्न वह नगर, तीन लोक के समस्त श्रेष्ठ पदार्थों के समूह से युक्त, आश्चर्य स्वरूप एवं बहुत भारी आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ सुशोभित होता है।।१२३।।

उसका बनाने वाला कुबेर भी एकाग्रचित्त हो उसके बनाने का पुनः विचार करे तो वह भी नियम से भूल कर जाएगा फिर अन्य मनुष्य की बात ही क्या है ? ।।१२४।।

उस नगर का निर्माण यथास्थान छब्बीस प्रकार के सुवर्ण और मणियों से चित्र-विचित्र है अतः अत्यधिक सुशोभित होता है।।१२५।।

उसके तलभाग में तीन जगती रहती हैं जो आधा-आधा कोश चौड़ी होती हैं और ऊपर-ऊपर उन जगतियों में उतनी ही हानि होती जाती है।।१२६।।

उन जगतियों की रचना वज्रमयी एवं चित्र-विचित्र रत्नों से उज्ज्वल है और उनकी श्रेष्ठ कान्ति चारों ओर इन्द्रधनुषों को विस्तृत करती रहती है।।१२७।।

छाती प्रमाण ऊँचे तथा देदीप्यमान प्रभा के धारक बरण्डे उन जगतियों को सुशोभित करते रहते हैं तथा उन पर एक धनुष के अन्तर से स्थित सुशोभित पताकाएँ हैं।।१२८।।

उन जगतियों में तीस-तीस वितस्तियों के कूट और उनसे द्विगुण आयामवाले दश-दश धनुषों के अन्तर से स्थित कोष्ठक रहते हैं।।१२९।।

उन जगतियों के समीप दोनों ओर द्वारपालों के दो-दो आवास स्थान हैं जिनमें प्रत्येक द्वार पर कुबेर की अपूर्व धनराशि प्रकाशमान है।।१३०।।

प्रत्येक जगती के कूटों की संख्या सात सौ बहत्तर है तथा कोष्ठकों की संख्या अड़तालीस है।।१३१।।

संक्षेप से तीनों जगतियों की कूट संख्या बाईस सौ बीस है और कोष्ठों की संख्या उसी प्रमाण से है।।१३२।।

प्रथम जगती में बत्तीस हजार तीन सौ इक्यासी, दूसरी में चौबीस हजार दो सौ उन्नीस और तीसरी में इकतीस हजार छप्पन ध्वजाएँ रहती हैं।।१३३।।

---

१. वितस्ति (ङ टि.)। २. ३२३८१। ३. २४२१९। ४. ३१०५६।

वियद्भूयोनिभीभङ्गश्रेणयः[१] पूर्वकूटगाः। भूषण्मण्डगलव्योमखोत्क्रमा[२] मध्यकूटगाः।।१३४।।
[३]खाष्टाष्टचतुरस्त्यक्षीण्यन्तकूटगता ध्वजाः। कोष्ठगास्तत्र तत्रामी भाव्यन्ते ते द्विसंगुणाः।।१३५।।
लक्षा षड्शिंतिर्ज्ञेयाः सहस्राणां च विंशतिः। षट्पञ्चाशद्विशत्यामा[४] तत्सर्वकदलीगणः।।१३६।।
तत्र [५]सस्वेददेशेषु मण्डपा रत्नमण्डिताः। द्वयेकगव्यूतविस्तारसमुत्सेधाश्चकासति।।१३७।।
तदर्धव्यासनिर्माणशिखरान्तरवासिनः। सन्ति सन्मङ्गलोद्भासि मूर्तयोर्चा जिनेश्वराः।।१३८।।
तत्रस्था अपि तद्देशाद्विनिष्क्रम्य नभस्यमी। यथोपदिष्टा दृश्यन्ते संमुखीभूय पश्यताम् ।।१३९।।
पीठानि त्रीणि भास्वन्ति चतुर्दिक्षु भवन्ति तु। चत्वारि च सहस्राणि धर्मचक्राणि पूर्वके।।१४०।।
द्वितीये तु महापीठे शिखिहंसध्वजेतरे। अष्टौ तिष्ठन्ति दिग्भागान्भासयन्तो महाध्वजाः।।१४१।।
अग्रे श्रीमण्डपोद्भासी प्रासादो बहुमङ्गलः। गन्धकुट्यभिधानः स्यात्तत्र सिंहासनं विभोः।।१४२।।
तत्रासीनं जिनाधीशं नृसुरासुरकोटयः। तुष्टुवुस्तुष्टचित्तास्ता मकुटन्यस्तपाणयः।।१४३।।

पूर्व कूटों में दो लाख बत्तीस हजार चार सौ सत्तर, मध्यम कूटों में सात लाख इकसठ हजार एक सौ और अन्तिम कूटों में दो लाख चौवन हजार आठ सौ अस्सी और कोष्ठकों में दूनी-दूनी हैं।।१३४-१३५।।

इस प्रकार समस्त ध्वजाओं की संख्या छब्बीस लाख बीस हजार दो सौ छप्पन है।।१३६।।

वहाँ सस्वेद-जलसिक्त प्रदेशों में रत्नों से मण्डित अनेक मण्डप हैं जो दो कोस चौड़े और एक कोस ऊँचे हैं।।१३७।।

जिनकी रचना मण्डपों से आधी चौड़ी है, ऐसे शिखरों के मध्य भाग में विराजमान जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाएँ हैं जो उत्तम मंगल द्रव्यों से सुशोभित हैं।।१३८।।

यद्यपि ये प्रतिमाएँ अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं तथापि सामने खड़े होकर देखने वालों को ऐसी दिखाई देती हैं मानो उन स्थानों से निकलकर आकाश में ही विद्यमान हों।।१३९।।

वहाँ चारों दिशाओं में देदीप्यमान तीन पीठ होते हैं उनमें पहले पीठ पर चार हजार धर्मचक्र सुशोभित हैं[१]।।१४०।।

दूसरी पीठ पर मयूर और हंसों की ध्वजाओं से भिन्न आठ प्रकार की महाध्वजाएँ दिशाओं को सुशोभित करती हुई विद्यमान हैं।।१४१।।

तीसरी पीठ पर श्रीमण्डप को सुशोभित करने वाला अनेक मंगलद्रव्यों से सहित गन्धकुटी नाम का प्रासाद है उसमें भगवान् का सिंहासन रहता है।।१४२।।

उस सिंहासन पर विराजमान जिनेन्द्रदेव की सन्तुष्ट चित्त के धारक मनुष्य, सुर और असुरों के झुण्ड के झुण्ड मुकुटों पर हाथ लगाकर स्तुति करते थे।।१४३।।

---

१. २३२४७०। २. ७६११००। भूपदेन सप्त, षट्पदेन षट्, मण्डः पिच्छवाची तेन एकः, गलः कण्ठवाची तेन एकः, व्योमखपदाभ्यां शून्यद्वयम्, यद्यपि सर्वत्र अङ्कानां वामतो गतिरित नियमः तथापि अत्र उत्क्रमशब्देन उपरि उल्लेखः तेन पूर्वोक्ता संख्या निःसरति। ३. २५४८८०। ४. अमा-सह। ५. संस्वेददेशेषु म.। ५. यहाँ यह अर्थ संगत नहीं होता है। इसका अर्थ ऐसा प्रतीत होता है कि तीन पीठ—कटनी में से प्रथम पीठ—कटनी पर चार दिशा में एक-एक ऐसे चार धर्मचक्र होते हैं। जिनमें एक-एक धर्मचक्र में एक-एक हजार आरे होते हैं। तिलोयपण्णत्ती में कहा है-प्रथम पीठ—कटनी पर चारो दिशाओं में शिर पर धर्मचक्र को रखे हुए यक्षेन्द्र स्थित रहते हैं। आदिपुराण में भी वर्णित है। यथा-(आदि पु० पृ. ५३६, श्लो० २९२-२९३)।

विजयस्व महादेव! विजयस्व महेश्वर! विजयस्व महाबाहो! विजयस्व महेक्षण।।१४४।।
इत्यादि स्तुतिकोटीनामन्ते प्रव्रज्य तत्क्षणात् । गणिनामग्रणीर्जातो वरदत्तो गणाधिपः।।१४५।।
षट्सहस्रनृपस्त्रीभिः सह राजीमती तदा। प्रव्रज्याग्रेसरी जाता सार्यिकाणां गणस्य तु।।१४६।।
यतिवर्गादयः सर्वेगणा द्वादश ते ततः। प्रणिपत्य यथास्थानं तं प्रभुं समुपासते।।१४७।।
परिपर्यध्वनस्तस्मिन्पदेषु द्वादशस्वमी। पूर्वदक्षिणभागादिष्वासतेऽग्रप्रदक्षिणम् ।।१४८।।
तत्र प्रत्यक्षधर्माणो धर्मेशांशा इवामलाः। भासन्ते वरदस्याग्रे वरदत्तादियोगिनः।।१४९।।
भर्तुर्या भूतयो बाह्यास्तदन्तर्भूतितः प्रति। राजन्ते कल्पवासिन्यो युक्ता स्तन्मूर्तयो यथा।।१५०।।
ह्रीदयाक्षान्तिशान्त्यादिगुणालंकृतसंपदः। समेत्योपविशन्त्यार्या सद्धर्मतनया यथा।।१५१।।
द्योतिर्मण्डलवासिन्यो भर्तृज्योतिष्टमप्रभाः। अभिनन्द्यतदुद्भूतविभाभासश्चकासति।।१५२।।
वनश्रियो यथा मूर्ता वानव्यन्तरयोषितः। वन्यपुष्पलतानम्रा नमन्ति वरदक्रमम् ।।१५३।।

वे कह रहे थे कि हे महादेव! आपकी जय हो। हे महेश्वर! आप जयवन्त हों, हे महाबाहो! आप विजयी हों, हे विशाल नेत्र! जयवन्त हों।।१४४।।

इत्यादि करोड़ों स्तवनों के बाद वरदत्त ने तत्काल दीक्षा ले ली और गणों के स्वामी प्रथम गणधर हो गए।१४५।।

उसी समय छह हजार रानियों के साथ दीक्षा लेकर राजीमती आर्यिकाओं के समूह की प्रधान बन गयी।।१४६।।

मुनि समूह को आदि लेकर बारह गण भगवान् नेमिनाथ को प्रणाम कर यथास्थान उनकी उपासना करते थे।।१४७।।

मार्ग के चारों ओर घेरकर बारह सभाएँ उनकी पूर्व, दक्षिण आदि दिशाओं में मुनिसमूह को आदि लेकर बारह गण विराजमान थे।।१४८।।

वहाँ उत्कृष्ट वर को प्रदान करने वाले भगवान् नेमिनाथ के आगे वरदत्त को आदि लेकर अनेक मुनि सुशोभित थे जो धर्म के स्वरूप को प्रत्यक्ष करने वाले एवं अत्यन्त निर्मल धर्मेश्वर के अंश के समान जान पड़ते थे।।१४९।।

उनके आगे कल्पवासिनी देवियाँ सुशोभित थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो भगवान् की बाह्याभ्यन्तर विभूतियाँ ही उनका रूप रखकर स्थित हों।।१५०।।

उनके बाद तीसरी सभा में लज्जा, दया, क्षमा, शान्ति आदि गुणरूपी सम्पत्ति से सुशोभित आर्यिकाएँ विराजमान थीं जो समीचीन धर्म की पुत्रियों के समान जान पड़ती थीं।।१५१।।

चौथी सभा में प्रशंसनीय एवं अपने आप से निकलने वाली प्रभा से सुशोभित ज्योतिषी देवों की स्त्रियाँ बैठी थीं जो भगवान् की कान्ति के समान जान पड़ती थीं।।१५२।।

पाँचवीं सभा में मूर्तिधारिणी वन की लक्ष्मी के समान सुन्दर वनवासी व्यन्तर देवों की स्त्रियाँ स्थित थीं तथा वे वन की पुष्पलताओं के समान नम्रीभूत हो भगवान् के चरणों को नमस्कार कर रही थीं।।१५३।।

भवनालयवासिन्यो भगवत्यतिभक्तयः। स्वर्भूर्भुवो यथा लक्ष्म्यः समया तं समासते।।१५४।।
भावनाः पापबन्धस्य छेत्तारं निकषा सते। बिभ्यतः स्वभवाद्भास्वत्फणारत्नविभारूणाः।।१५५।।
व्यन्तराः सुन्दराकारा मन्दरस्येव कल्पकाः। भवन्ति भर्तुराकल्पाः सुमनोमालभारिणः।।१५६।।
परमेश्वरभामग्नस्वप्रभा भास्करादयः। ज्योतिर्गणाः प्रभावृद्धिं प्रार्थयन्ते तमानताः।।१५७।।
सौन्दर्येशाः सुखात्मानो भागा भर्तुरिवोद्यताः। स्वर्भुवः प्रतिभासन्ते सहस्राक्षपुरस्सराः।।१५८।।
दानपूजादिधर्मांशा देहवन्तो यथामलाः। वरदं वरिवस्यन्ति नृपाश्चक्रधरादयः।।१५९।।
अविद्यावैरमायादिदोषापायाप्ततद्गुणाः। हरीभाद्या विभान्त्यन्ये तिर्यंचस्तादृशो यथा।।१६०।।
एवं द्वादशवर्गीयैर्द्वादशाङ्गगुणोपमैः। परीत्योक्तक्रमादीशो गणैरेभिरुपासितः।।१६१।।
पारमेष्ठ्यमनन्यस्थं ख्यापयन्नासनश्रिया। चामरैरमरोद्भूतैः क्रमस्थैः सुमहेशिताम् ।।१६२।।
त्रिलोकाधीशितां छत्रत्रयेणेन्दुत्रयत्विषा। भामण्डलेन भाधिक्यं भवान्तरतमश्छिदा।।१६३।।

छठी सभा में भगवान् की अत्यधिक भक्ति से युक्त भवनवासी देवों की अंगनाएँ स्थित थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्ग, भूमि और अधोलोक की लक्ष्मियाँ ही भगवान् के समीप आकर बैठी हैं।।१५४।।

सातवीं सभा में फणा के समान देदीप्यमान रत्नों की कान्ति से लाल-लाल दिखने वाले भवनवासी देव, अपने संसार से भयभीत होते हुए, पापबन्ध का छेदन करने वाले भगवान् के समीप विद्यमान थे।।१५५।।

आठवीं सभा में सुंदर आकार के धारक व्यंतर देव बैठे थे। वे भगवान के आभूषण स्वरूप थे तथा फूलों की मालाओं को धारण करने वाले मन्दरगिरि के समान जान पड़ते थे।।१५६।।

नवमी सभा में, जिनकी अपनी प्रभा भगवान् की प्रभा में निमग्न हो गयी थी ऐसे सूर्य आदि ज्योतिषी देवों के समूह नम्रीभूत हो भगवान् से अपनी प्रभावृद्धि की प्रार्थना कर रहे थे।।१५७।।

दसवीं सभा में सौन्दर्य के स्वामी, सुखी एवं ऊपर उठे हुए भगवान् के अंशों के समान इन्द्र आदि कल्पवासी देव सुशोभित हो रहे थे।।१५८।।

ग्यारहवीं सभा में चक्रवर्ती आदि राजा भगवान् की उपासना करते थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी दान-पूजा आदि धर्मों के निर्मल अंश ही हों।।१५९।।

तथा बारहवीं सभा में, जिन्हें अविद्या, वैर, माया आदि दोषों के नष्ट हो जाने से विद्या, क्षमा आदि तत्तद्गुण प्राप्त हुए थे ऐसे सिंह, हाथी आदि तिर्यंच विद्यमान थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उन्हीं के समान दूसरे तिर्यंच हों।।

भावार्थ-तिर्यंच अपनी स्वाभाविक कुटिलता को छोड़कर तदाकार होने पर भी ऐसे लगते थे जैसे ये वे न हों दूसरे ही हों।।१६०।।

इस प्रकार द्वादशांग के गुणों के समान बारह सभाओं-सम्बन्धी बारह गण, प्रदक्षिणा रूप से भगवान् की उपासना करते थे।।१६१।।

भगवान् नेमिनाथ, अपने सिंहासन की शोभा से दूसरों में न पाए जाने वाले परमेष्ठीपना को ख्यापित कर रहे थे। क्रम पूर्वक ढोरे जाने पर देवोपनीत चमरों से महेशिता को, तीन चन्द्रमा के समान कान्ति को धारण करने वाले छत्रत्रय से तीन लोक के स्वामित्व को, संसार के आन्तरिक अन्धकार को नष्ट करने वाले भामण्डल से कान्ति की अधिकता को, सब ऋतुओं के फूलों से युक्त अशोक वृक्ष के द्वारा अन्य समस्त जीवों के शोक दूर करने की

सर्वर्तकुसुमेनान्यसर्वशोकापहारिताम् । अशोकेनाभिपूज्यत्वं सुमनोवृष्टिपूजया।।१६४।।
सार्वत्वमभयाधानघोषणेन जयश्रियाम् । नन्दिमङ्गलघोषेण साधुचित्ताभिनन्दिनम् ।।१६५।।
आत्माधीनाः प्रतीहाराः प्रातिहार्यगुणोद्भवैः। भूषितोऽष्टमहोदग्रप्रातिहार्यैर्महेश्वरः।।१६६।।
लोकानां भूतये भूतिभात्मीयां सकलां दधत् । सर्वलोकातिवर्तिन्या भासास्थामधिष्ठितः।।१६७।।
अयमास्ते समग्रात्मा स्वार्थकामाः ससंभ्रमाः। एतैत नमतैशानमित्याह्वानं सघोषणम् ।।१६८।।
वर्तयन्ति सुरास्तस्मिन्मण्डले तदनु द्रुतम् । समन्तात्तत्समायान्ति भूतिभिर्नृसुरासुराः।।१६९।।
तद्दृष्टिगोचरे मङ्क्षु वाहनेभ्योऽवतीर्यते। मानाङ्गणमथास्थाय पूर्वं साञ्जलिमौलिभिः।।१७०।।
तत्र बाह्यो परित्यज्य वाहनादिपरिच्छदम् । विशिष्टककुदैर्युक्ता मानपीठं परीत्य ते।।१७१।।
प्रादक्षिण्येन वन्दित्वा मानस्तम्भनमादितः। उत्तमाः प्रविशत्यन्तरुत्तमाहितभक्तयः।।१७२।।
पापशीला विकर्माणाः शूद्राः पाखण्डपण्डकाः। विकलाङ्गेन्द्रियोद्भ्रान्ताः परियन्ति बहिस्ततः।।१७३।।
छत्रचामरभृङ्गाराद्यवहाय जयाजिरे। आप्तैरनुगताः कृत्वा विशन्त्यञ्जलिमीश्वराः।।१७४।।

सामर्थ्य को, पुष्पवृष्टि रूप पूजा के द्वारा पूज्यता को, अभयोत्पत्तिकी घोषणा करने वाली दिव्यध्वनि से जयलक्ष्मी की सर्वहितकारिता को और आनन्ददायी मंगलमय वादित्रों के नाद से साधुजनों के चित्त को आनन्दित करने की सामर्थ्य को प्रकट कर रहे थे।।१६२-१६५।।

जो आत्मा के आधीन हो उन्हें प्रतीहार कहते हैं। इस प्रकार आत्माधीन गुणों से उत्पन्न अष्ट महाप्रातिहार्यों से भगवान् नेमिनाथ सुशोभित हो रहे थे।।१६६।।

आत्मोत्थ समस्त विभूति को धारण करने वाले भगवान् सर्वलोकातिवर्ती दीप्ति से लोगों का कल्याण करने के लिए समवसरण में विराजमान हुए।।१६७।।

उस समय देव लोग घोषणा के साथ यह कहकर जीवों का आह्वान कर रहे थे कि हे आत्महित के इच्छुक भव्यजनों! सम्पूर्ण विकसित आत्मा को धारण करने वाले केवली भगवान् यहाँ विराजमान हैं, शीघ्रता से यहाँ आओ-आओ और इन्हें नमस्कार करो।।१६८।।

इस प्रकार जब देवों ने आह्वान किया तब शीघ्र ही मनुष्य, देव और असुर वैभव के साथ सब ओर से समवसरण में आने लगे।।१६९।।

समवसरण दृष्टिगोचर होते ही वे मानांगण में खड़े हो सबसे पहले हाथ जोड़ मस्तक से लगाकर वाहनों से नीचे उतरते हैं।।१७०।।

तदनन्तर वाहन आदि परिग्रह को बाहर छोड़कर विशिष्ट राज्य चिह्नों से युक्त हो मानपीठ की प्रदक्षिणा देते हैं।।१७१।।

प्रदक्षिणा के बाद सबसे पहले मानस्तम्भ को नमस्कार करते हैं तदनन्तर हृदय में उत्तम भक्ति को धारण करते हुए उत्तम पुरुष भीतर प्रवेश करते हैं।।१७२।।

और पापी, विरुद्ध कार्य करने वाले, शूद्र, पाखण्डी, नपुंसक, विकलांग, विकलेन्द्रिय तथा भ्रान्त चित्त के धारक मनुष्य बाहर ही प्रदक्षिणा देते रहते हैं।।१७३।।

सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा नरेन्द्र आदि उत्तम पुरुष छत्र, चमर और भृंगार आदि को जयांगण में छोड़ आप्तजनों के साथ हाथ जोड़कर भीतर प्रवेश करते हैं।।१७४।।

प्रविश्य विधिवद्भक्त्या प्रणम्य मणिभौलयः। चक्रपीठं समारुह्य परियन्ति त्रिरीश्वरम् ।।१७५।।
पूजयन्तो यथाकामं स्वशक्तिविभवार्चनैः। सुरासुरनरेन्द्राद्याः नामादेशं नमन्ति च।।१७६।।
ततोऽवतीर्य सोपानैः स्वैः स्वैः स्वाञ्जलिमौलयः। रोमाञ्चव्यक्तहर्षास्ते यथास्थानं समासते।।१७७।।
अभ्यर्कं विकसद्भाति कमलाकरमण्डलम् । यथा तथा जिनाभ्यर्कं तद्गणाम्बुजमण्डलम् ।।१७८।।
सा सेना सर्वतः सर्वा प्रविशन्ती तदास्पदम् । नालं पूरयितुं पूर्णा नदीव वरुणास्पदम् ।।१७९।।
निर्यदायद्विशत्पश्यत्परीयत्प्रीणदानमत् । स्तुवदीशं सतां वृन्दं सततं तत्र वर्तते।।१८०।।
न मोहो न भयद्वेषौ नोत्कण्ठारतिमत्सराः। अस्यां भद्रप्रभावेण जम्भाजृम्भा न संसदि।।१८१।।
निद्रातन्द्रापरिक्लेशक्षुत्पिपासासुखानि न। नास्त्यन्यञ्चाशिवं सर्वमहरेव च सर्वदा।।१८२।।

मालिनीच्छन्दः

समवसरणभूमौ बाह्यभूत्येकभूमौ स्थितवति मुनिनाथेऽत्रान्तरङ्गाङ्गिपूतौ।
पिबति तृषितनेत्रैर्द्वादशानां गणानां समितिरमृतरूपं जैनरूपाम्बुराशिम् ।।१८३।।

। समाप्तम्।

मणिमय मुकुटों को धारण करने वाले वे सब, भीतर प्रवेश कर विधिपूर्वक प्रणाम करते हैं और चक्रपीठ पर आरूढ़ होकर भगवान् जिनेन्द्र की तीन बार प्रदक्षिणा देते हैं।।१७५।।

इच्छानुसार अपनी शक्ति और विभव के अनुकूल सामग्री से पूजा करते हुए अपने नाम का उल्लेख कर नमस्कार करते हैं।।१७६।।

तदनन्तर जिन्होंने अपनी अंजलियाँ मस्तक से लगा रखी हैं और रोमांचों से जिनका हर्ष प्रकट हो रहा है ऐसे वे सब अपनी-अपनी सीढ़ियों से नीचे उतरकर सभाओं में यथास्थान बैठते हैं।।१७७।।

जिस प्रकार सूर्य के सम्मुख खिला हुआ कमलों का समूह सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवानरूपी सूर्य के सम्मुख वह गणरूपी-द्वादश सभारूपी कमलों का समूह सुशोभित हो रहा था।।१७८।।

जिस प्रकार नदी समुद्र को भरने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार सब ओर से समवसरण में प्रवेश करती हुई वह सेना उसे भरने में समर्थ नहीं थी।।१७९।।

वहाँ बाहर निकलता, आता, प्रवेश करता, दर्शन करता, प्रदक्षिणा देता, सन्तुष्ट होता, भगवान् को प्रणाम करता और उनकी स्तुति करता हुआ सज्जनों का समूह सदा विद्यमान रहता है।।१८०।।

समवसरण के भीतर भगवान् के प्रभाव से न मोह रहता है, न राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, न उत्कण्ठा, रति एवं मात्सर्यभाव रहते हैं, न अँगड़ाई और जमुहाई आती है, न नींद आती है, न तन्द्रा सताती है, न क्लेश होता है, न भूख लगती है, न प्यास का दुःख होता है और न सदा समस्त दिन कभी अन्य समस्त प्रकार का अमंगल ही होता है।।१८१-१८२।।

बाह्य विभूति के अद्वितीय स्थान समवसरण भूमि में जब अन्तरंग आत्मा की पवित्रता से युक्त भगवान् विराजमान होते हैं तब बारह सभाओं का समूह अपने तृषित नेत्रों से उनके अमृतरूप सौन्दर्य सागर का पान करता है।।१८३।।

। समाप्त।

समवसरण स्तोत्र

(गणिनी ज्ञानमती कृत)

दोहा-

चिन्मय चिंतामणि प्रभो, गुण अनंत की खान।
समवसरण वैभव सकल, वह लवमात्र समान।।१।।

-शंभुछंद-

जय जय तीर्थंकर क्षेमंकर, तुम धर्म चक्र के कर्ता हो।
जय जय अनंतदर्शन सुज्ञान, सुखवीर्य चतुष्टय भर्त्ता हो।।
जय जय अनंत गुण के धारी, प्रभु तुम उपदेश सभा न्यारी।
सुरपति की आज्ञा से धनपति, रचता है त्रिभुवन मनहारी।।२।।

प्रभु समवसरण गगनांगण में, बस अधर बना महिमाशाली।
यह इंद्र नीलमणि रचित गोल, आकार बना गुणमणिमाली।।
सीढ़ी इक एक हाथ ऊँची, चौड़ी सब बीस हजार बनी।
नर बाल वृद्ध लूले लंगड़े, चढ़ जाते सब अतिशायि घनी।।३।।

पहला परकोटा धूलिसाल, बहुवर्ण रत्न निर्मित सुंदर।
कहिं पद्मराग कहिं मरकतमणि, कहिं इन्द्रनीलमणि से मनहर।।
इसके अभ्यंतर चारों दिश, हैं मानस्तंभ बने ऊँचे।
ये बारह योजन से दिखते[१], जिनवर से द्विदश गुणे ऊँचे।।४।।

इनमें चारों दिश जिनप्रतिमा, उनको सुरपति नरपति यजते।
ये सार्थक नाम धरें दर्शन से, मानी मान गलित करते।।
इस समवसरण में चार कोट, अरु पाँच वेदिकायें ऊँची।
इनके अंतर में आठ भूमि, फिर प्रभू की गंधकुटी ऊँची।५।।

इस धूलिसाल अभ्यंतर में, है भूमि चैत्य प्रासाद प्रथम।
एकेक जैन मंदिर अंतर से, पाँच पाँच प्रासाद सुगम।।
चारों गलियों में उभय तरफ, दो दोय नाट्यशालायें हैं।
अभिनय करतीं जिनगुण गातीं, सुर भवनवासि कन्यायें हैं।।६।।

फिर वेदी वेढ़ रही ऊँची, गोपुर द्वारों से युक्त वहाँ।
द्वारों पर मंगलद्रव्य निधी, ध्वज तोरण घंटा ध्वनी महा।।

---

१. हरिवंशपुराण ।

फिर आगे खाई स्वच्छ नीर से, भरी दूसरी भूमी है।
फूले कुवलय कमलों से युत, हंसों के कलरव की ध्वनि है।।७।।

फिर दूजी वेदी के आगे, तीजी है लताभूमि सुन्दर।
बहुरंग बिरंगे पुष्प खिले, जो पुष्पवृष्टि करते मनहर।।
फिर दूजा कोट बना स्वर्णिम, गोपुर द्वारों से मन हरता।
नवनिधि मंगल घट धूप घटों, युत में प्रवेश करती जनता।।८।।

आगे उद्यान भूमि चौथी, चारों दिश बने बगीचें हैं।
क्रम से अशोक वन सप्तपर्ण, चंपक अरु आम्र तरु के हैं।।
प्रत्येक दिशा मे ंएक एक, तरु चैत्य वृक्ष अतिशय ऊँचे।
इनमें जिन प्रतिमा प्रातिहार्ययुत, चार चार मणिमय दीखें।।९।।

इसके आगे वेदी सुन्दर, फिर ध्वजाभूमि ध्वज से शोभे।
फिर रजतवर्णमय परकोटा, गोपुर द्वारों से युत शोभे।।
फिर कल्पवृक्ष भूमी छट्ठी, दशविध के कल्पवृक्ष इसमें।
प्रतिदिश सिद्धार्थ वृक्ष चारों, हैं सिद्धों की प्रतिमा उनमें।।१०।।

चौथी वेदी के बाद भवन, भूमी सप्तमि के उभय तरफ।
नव नव स्तूप रत्न निर्मित, उनमें जिनवर प्रतिमा सुखप्रद।।
परकोटा स्फटिकमयी चौथा, मरकत मणि गोपुर से सुन्दर।
उस आगे श्रीमंडप भूमी, बारह कोठों से जनमनहर।।११।।

फिर पंचम वेदी के आगे, त्रय कटनी सुन्दर दिखती हैं।
पहली कटनी पर यक्ष शीश, पर धर्मचक्र चारों दिश हैं।।
दूजी कटनी पर आठ महाध्वज, नवनिधि मंगल द्रव्य धरें।
तीजी कटनी पर गंधकुटी पर, जिनवर दर्शन पाप हरें।।१२।।

जय जय जिनवर सिंहासन पर, चतुरंगुल अधर विराज रहे।
जयजय जिनवर की दिव्यध्वनी, सुनकर सब भविजन तृप्त भये।।
सब जातविरोधी प्राणीगण, आपस में मैत्री भाव धरें।
जो वंदे ध्यावें गुण गावें, वे ज्ञानमती कैवल्य करें।।१३।।

–दोहा–

चतुर्मुखी ब्रह्मा तुम्हीं, ज्ञान व्याप्त जग विष्णु।
देवों के भी देव हो, महादेव अरि जिष्णु।।१४।।

भगवान ऋषभदेव-समवसरण रचना

-गणिनी ज्ञानमती

-मंगलाचरण-

प्रभोः ऋषभदेवस्य, समवादिसृतिर्भुवि।
श्रीविहारोऽपि देवस्य, सर्वमंगलकारणम्।।

भगवान ऋषभदेव ने पुरिमतालपुर के उद्यान में ध्यान के बल से जब घातिया कर्मों पर विजय प्राप्त कर ली तब उसी क्षण उन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया। तत्क्षण ही तीनों लोकों में आनंद की लहर छा गई। भगवान पृथ्वी से अधर आकाश में दो हजार हाथ ऊपर पहुँच गये। भगवान को वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान हुआ था, आज वह 'प्रयाग' (इलाहाबाद) में विद्यमान हैं।

उसी क्षण स्वर्गों में कल्पवासी देवों के यहाँ अपने आप बिना बजाये घंटे बजने लगे, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगा, व्यंतर देवों के घरों में भेरी बजने लगीं और भवनवासी देवों के यहाँ शंख ध्वनि होने लगी।

तभी समस्त इंद्रों के आसन कंपायमान हो गये, इंद्रों के मुकुट स्वयमेव झुक गये। कल्पवृक्षों से अपने आप पुष्प बरसने लगे और देवों के हाथी सूंड में कमल उठाकर ऊपर करके नाचने लगे। सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और मंद-सुगंध पवन चलने लगी।

सौधर्म इन्द्र ने तत्क्षण ही अवधिज्ञान से जान लिया कि 'भगवान ऋषभदेव' को केवलज्ञान प्रगट हो गया। तभी उसने सिंहासन से उतरकर सात पैंड आगे बढ़कर परोक्ष से ही भगवान को नमस्कार किया और कुबेर को आज्ञा दी—

हे धनपते! तुम शीघ्र ही पुरिमतालपुर के उद्यान में पहुँचकर भगवान ऋषभदेव के समवसरण की रचना कर दो। कुबेर ने उसी समय अर्धनिमिष में आकाश में अधर समवसरण की रचना कर दी। उस समवसरण में भगवान कमलासन पर चार अंगुल अधर विराजमान हो गये।

सौधर्म इन्द्र का आगमन—अनन्तर सौधर्मेन्द्र ने भगवान का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए मध्यलोक में चलने के लिए देवों को आज्ञा दी। तभी प्रस्थान काल की सूचना देने के लिए जोर-जोर से नगाड़े बजाये गये। उसी क्षण 'बलाहक' नाम के देव ने एक 'कामग' नाम का विमान बनाया और आभियोग्य जाति के देवों में मुख्य ऐसे 'नागदत्त' नाम के देव ने विक्रिया ऋद्धि से एक 'ऐरावत' नाम का हाथी बनाया। इस हाथी का वर्ण सफेद था।

उस ऐरावत हाथी के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत थे, एक-एक दाँत पर एक-एक सरोवर था, एक-एक सरोवर में एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस कमल थे, एक-एक कमल में बत्तीस-बत्तीस दल थे। इन लंबे-लंबे दलों पर बत्तीस-बत्तीस अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं।

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी और ऐशान इंद्र के साथ-साथ ऐसे ऐरावत हाथी पर बैठकर चल पड़ा। उसी समय सभी इन्द्रगण व देवगण अपने-अपने परिवारदेव व देवियों के साथ अपने-अपने वाहनों में बैठकर इन्द्र के साथ निकल पड़े। उस समय इन्द्र के सामने भी अनेक देव अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और किन्नरी देवियाँ श्रीऋषभदेव के विजय गीत गा रही थीं। ऐसे बत्तीस इंद्रों की सेनाएँ उस समय ध्वजा, छत्र, चंवर आदि से

विभूषित हुई आकाश मंडल में छा गई थीं।

सबसे आगे किल्विषक जाति के देव जोर-जोर से सुंदर नगाड़े बजा रहे थे। उनके पीछे इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक और प्रकीर्णकजाति के देव अपने-अपने वाहनों पर आरूढ हो सौधर्मेन्द्र के पीछे-पीछे चल रहे थे। उस समय अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, गंधर्वदेव बाजे बजा रहे थे और किन्नरी जाति की देवियाँ भगवान के गुणानुवादरूप गीत गा रही थीं।

यहाँ इन्द्र आदि देवों के संक्षिप्त लक्षण बताते हैं—

इन्द्र—जो अन्य देवों में नहीं पाये जाने वाले ऐसे आज्ञा, ऐश्वर्य आदि गुणों से सहित हैं, वे 'इन्द्र' हैं।

सामानिक—जो आज्ञा और ऐश्वर्य के बिना अन्य गुणों से इन्द्र के समान हैं और इन्द्र भी जिसे बड़ा मानते हैं, वे 'सामानिक' हैं।

त्रायस्त्रिंश—जो पुरोहित, मंत्री और अमात्यों के समान होते हैं उन्हें 'त्रायस्त्रिंश' कहते हैं। ये संख्या में तेंतीस-तेंतीस ही इन्द्रों की सभा में होते हैं।

पारिषद—जो इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते हैं और इन्द्र का उन पर अतिशय प्रेम रहता है, वे 'पारिषद' हैं।

आत्मरक्ष—जो देव अंगरक्षक के समान इन्द्र के चारों ओर तलवार लेकर घूमते रहते हैं वे 'आत्मरक्ष' हैं। यद्यपि इन्द्र को स्वर्ग में कुछ भी भय नहीं रहता है फिर भी ये इन्द्र का वैभव दिखलाने के लिए ही वहाँ रहते हैं।

लोकपाल—जो दुर्गरक्षक के समान स्वर्गलोक की रक्षा करते हैं, वे 'लोकपाल' हैं।

अनीक—जो सेना के समान हैं, वे 'अनीक' हैं। इनके सात भेद हैं—हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, बैल, गंधर्व और नर्तकी। ये सात प्रकार के देवों की सेनाएँ हैं।

प्रकीर्णक—नगर तथा देशों में रहने वालों के समान जो देव हैं, वे 'प्रकीर्णक' कहलाते हैं।

आभियोग्य—जो नौकर-चाकरों के समान हैं, वे 'आभियोग्य' देव हैं।

किल्विषक—और जो इन्द्र की सभा से बाहर रहते हैं, वे 'किल्विषक' कहलाते हैं।

इस तरह स्वर्गों में दश प्रकार के देव होते हैं।

स्वर्ग में हाथी, बैल आदि पशु हंस, तोते आदि पक्षी नहीं होते हैं। वहाँ पर वे देव ही विक्रिया से पशु-पक्षियों के रूप बनाते हैं।

यहाँ पर जो अल्प पुण्य करते हैं, या तपस्वी साधु आदि बड़ों का अपमान करते हैं अथवा व्रतों में दूषण लगाते हैं, गुरु की आज्ञा उल्लंघन कर स्वच्छंद प्रवृत्ति करते हैं इत्यादि कारणों से ही मनुष्य अल्पपुण्य से मरकर देवगति में पहुँच जाते हैं किन्तु वहाँ पर आभियोग्य या किल्विषक देवों में जन्म ले लेते हैं, ऐसा समझना।

ऐसे असंख्य वैभव से सहित इन्द्र भी जिनकी सेवा करते हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान श्री ऋषभदेव तीनों लोकों में श्रेष्ठ माने गये हैं।

अथवा यों कहिये कि सौधर्मेन्द्र आदि सौ इन्द्रों से वंदित होने से ही भगवान तीर्थंकर श्रेष्ठ माने गये हैं।

अथवा इन्द्रों द्वारा भक्ति की जाने से, समवसरण सभा के रचे जाने से और किंकर बनकर व्यवस्था करते रहने से ही भगवान सर्वश्रेष्ठ गिने गये हैं।

श्री मानतुंगस्वामी ने कहा भी है—

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र! धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि।

हे जिनेन्द्रदेव! धर्म के उपदेश के समय समवसरण में जैसी आप की विभूति थी, वैसी अन्य किसी की नहीं हो सकती है। सो सच ही है-जैसी प्रभा सूर्य की होती है जो कि अंधकार को दूर कर देती है, वैसी प्रभा गृह, नक्षत्र, ताराओं की नहीं हो सकती है।

इन्द्र ने ऐरावत हाथी पर बैठकर स्वर्ग से प्रयाण कर अर्धनिमिष में मध्यलोक में आकर भगवान ऋषभदेव के समवसरण को दूर से ही देखा।

यह बारह योजन—छ्यानवे मील का विस्तृत गोलाकार था और इन्द्रनील मणि से बना हुआ था।

इसको घेरकर चारों ओर पंचवर्णी रत्नों से निर्मित 'धूलिसाल' नाम का परकोटा था।

अहो! जिस समवसरण की रचना का सूत्रधार स्वयं इन्द्र था, उस समवसरण का वर्णन भला कौन कर सकता है ?

इस समवसरण में अनेक नाट्यशालाएँ बनी हुई थीं, जहाँ देवांगनाएँ भगवान के गुणों का गान करते हुए नृत्य करती रहती थीं। अनेक सुंदर उपवन-बगीचे थे जो नंदनवन से भी अधिक सुंदर थे, अनेक बावड़ियाँ थीं, अनेक स्तूप ऐसे थे जो मध्यलोक, स्वर्गलोक, तीनलोक आदि की रचनाओं को दिखला रहे थे। जगह-जगह नवनिधियाँ थीं जो सभी को इच्छित फल देने वाली थीं। इसी प्रकार कल्पवृक्षों से, अनेक ध्वजाओं से इसकी सुंदरता ऐसी अद्भुत थी कि तीन लोक में भी ऐसी दर्शनीय वस्तुएँ मिलना असंभव था।

यह सभी वैभव सभी जीवों के मन को हरण करने वाला था।

यही कारण है कि आज भी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, कल्पद्रुम विधान आदि धार्मिक कार्यक्रमों में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम-धार्मिक नाटक, भजन, नृत्य आदि आयोजित किये जाते हैं जो कि लोगों का मनोरंजन भी करते हैं और धर्म में प्रीति एवं पापों से भय भी उत्पन्न कराते हैं।

अब यहाँ संक्षेप में तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के आधार से समवसरण का वर्णन करते हैं—

समवसरण रचना—समवसरण के वर्णन में इक्तीस प्रकरण अधिकार जानने योग्य हैं-१. सामान्य भूमि का प्रमाण २. सोपानों का प्रमाण ३. विन्यास ४. वीथी ५. धूलिसाल कोट ६. चैत्यप्रासाद भूमि ७. नृत्यशाला ८. मानस्तंभ ९. वेदी १०. खातिकाभूमि ११. वेदी १२. लताभूमि १३. साल १४. उपवनभूमि १५. नृत्यशाला १६. वेदी १७. ध्वजाभूमि १८. साल १९. कल्पभूमि २०. नृत्यशाला २१. वेदी २२. भवनभूमि २३. स्तूप २४. साल २५. श्रीमंडपभूमि २६. ऋषि आदि द्वादशगणों का विन्यास २७. वेदी २८. प्रथम कटनी २९. द्वितीय कटनी ३०. तृतीय कटनी ३१. गंधकुटी का प्रमाण।

अथवा सरलता से समझने के लिए इसमें चार परकोटे, पाँच वेदियाँ, आठ भूमियाँ एवं तीन कटनी हैं। तीसरी कटनी पर गंधकुटी है। इसमें भी आठ भूमियों को समझ लेने से सब समझ में आ जाता है।

सामान्य भूमि—सामान्यरूप से यह समवसरण भूमि गोल है, आकाश में अधर है, इन्द्रनीलमणिमयी है और बारह योजन प्रमाण है। इसके आगे भगवान अजितनाथ से लेकर भगवान नेमिनाथपर्यन्त आधा-आधा योजन

अर्थात् दो-दो कोश कम होती गई है तथा पार्श्वनाथ एवं महावीर भगवान की योजन के चतुर्थ भाग — एक-एक कोश कम थी। यह जो सामान्य भूमि का प्रमाण बतलाया है, वह अवसर्पिणी काल के तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का है। उत्सर्पिणी काल में इससे विपरीत है। विदेह क्षेत्र के सभी तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का प्रमाण बारह योजन ही है क्योंकि वहाँ हमेशा चतुर्थकाल के प्रारंभ जैसी ही कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है।

१. भगवान ऋषभदेव का समवसरण	१२ योजन (९६ मील)
२. भगवान अजितनाथ का समवसरण	११ (१/२ योजन) (९२ मील)
३. भगवान संभवनाथ का समवसरण	११ योजन (८८ मील)
४. भगवान अभिनंदननाथ का समवसरण	१० १/२ योजन (८४ मील)
५. भगवान सुमतिनाथ का समवसरण	१० योजन (८० मील)
६. भगवान पद्मप्रभु का समवसरण	९ १/२ योजन (७६ मील)
७. भगवान सुपार्श्वनाथ का समवसरण	९ योजन (७२ मील)
८. भगवान चंद्रप्रभु का समवसरण	८ १/२ योजन (६८ मील)
९. भगवान पुष्पदंतनाथ का समवसरण	८ योजन (६४ मील)
१०. भगवान शीतलनाथ का समवसरण	७ १/२ योजन (६० मील)
११. भगवान श्रेयांसनाथ का समवसरण	७ योजन (५६ मील)
१२. भगवान वासुपूज्यनाथ का समवसरण	६ १/२ योजन (५२ मील)
१३. भगवान विमलनाथ का समवसरण	६ योजन (४८ मील)
१४. भगवान अनंतनाथ का समवसरण	५ १/२ योजन (४४ मील)
१५. भगवान धर्मनाथ का समवसरण	५ योजन (४० मील)
१६. भगवान शांतिनाथ का समवसरण	४ १/२ योजन (३६ मील)
१७. भगवान कुंथुनाथ का समवसरण	४ योजन (३२ मील)
१८. भगवान अरनाथ का समवसरण	३ १/२ योजन (२८ मील)
१९. भगवान मल्लिनाथ का समवसरण	३ योजन (२४ मील)
२०. भगवान मुनिसुव्रतनाथ का समवसरण	२ १/२ योजन (२० मील)
२१. भगवान नमिनाथ का समवसरण	२ योजन (१६ मील)
२२. भगवान नेमिनाथ का समवसरण	१ १/२ योजन (१२ मील)
२३. भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण	१ १/४ योजन (१० मील)
२४. भगवान महावीर का समवसरण	१ योजन (८ मील)

सोपान रचना — यह समवसरण इस भूमितल से ५०० धनुष अर्थात् २००० हाथ ऊँचाई पर रहता है अतः पृथ्वी तल से एक हाथ ऊपर से सीढ़ियाँ शुरू हो जाती हैं। देव, मनुष्य और तिर्यंचों के चढ़ने के लिए आकाश में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ऊपर-ऊपर, एक-एक हाथ ऊँची ऐसी सुवर्णमयी बीस हजार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

समवसरण का ऐसा माहात्म्य है कि अंधे, लंगड़े, लूले, बालक, वृद्ध, युवा, बीमार आदि सभी जन इन

सीढ़ियों को अंतर्मुहूर्त — ४८ मिनट में ही पार कर जाते हैं।

विन्यास — इस समवसरण में चार कोट, पाँच वेदियाँ, इनके बीच में आठ भूमियाँ थीं, पुनः तीन कटनी थीं।

समवसरण में चारों दिशाओं में वीथी — गलियाँ बनी थीं, ये गलियाँ दो-दो कोश विस्तार वाली हैं। यह वीथियों का प्रमाण श्री ऋषभदेव के समवसरण का है।

आठों भूमियों के मूल में वज्रमय कपाटों से सुशोभित एवं देव, मनुष्य और तिर्यंचों के गमनागमन से सहित ऐसे बहुत से तोरणद्वार बने हुए थे।

धूलिसाल परकोटा — इस समवसरण भूमि में, जो कि आकाश में अधर है उसमें सबसे बाहर 'धूलिसाल' नाम का परकोटा है। यह पंचवर्णी रत्नों से निर्मित है, इसमें मार्ग बने हैं, अट्टालिकाएँ हैं और पताकाएँ फहरा रही हैं। इस परकोटे में पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के चार गोपुर द्वार होते हैं। ये द्वार तीन खन के थे और मणिमय माला आदि से सुंदर सजे हुए थे।

प्रत्येक 'गोपुर' के बाहर और मध्य भाग में द्वार के दोनों पार्श्व भागों में आठ मंगल द्रव्य, नवनिधियाँ रखी रहती हैं। बहुत पुत्तलिकाएँ बनी हुई थीं जिनके मस्तक पर धूपघट रखे हुए थे। इन धूपघटों में हमेशा अग्नि जलती रहती थी व देवगण धूप खेया करते थे।

मंगलद्रव्य — झारी, कलश, दर्पण, चामर, ध्वजा, व्यजन, छत्र और सुप्रतिष्ठ ये आठ मंगलद्रव्य प्रत्येक १०८-१०८ वहाँ रहते हैं।

नवनिधियाँ — काल, महाकाल, पांडु, माणवक, शंख, पद्म, वैडूर्य, पिंगल और नानारत्न ये नवनिधियाँ प्रत्येक १०८-१०८ समवसरण में रहती हैं। ये काल आदि निधियाँ क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य, (मालादिक) भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, महल, आभूषण और संपूर्ण रत्नों को देती हैं।

एक-एक पुतली के मस्तक पर एक-एक धूपघट रहता है[१]।

नाट्यशालाएँ — इन गोपुर द्वारों के बीच दोनों पार्श्वभागों में नाट्यशालाएँ बनी थीं, रत्नों से निर्मित इन नाट्यशालाओं में हमेशा देवांगनाएँ नृत्य करती रहती थीं।

इस धूलिसाल कोट की ऊँचाई भगवान ऋषभदेव की ऊँचाई से चौगुनी थी। इसके तोरणों की ऊँचाई चौगुनी परकोटे की ऊँचाई से अधिक थी एवं गोपुर द्वारों की ऊँचाई उनसे भी अधिक थी।

द्वाररक्षक देव — इस धूलिसाल के चारों गोपुरद्वारों पर उत्तम दण्डरत्नों को हाथ में लेकर ज्योतिषी देव द्वाररक्षक थे।

आठ भूमियाँ समवसरण में — १. चैत्यप्रासाद भूमि २. खातिका भूमि ३. लताभूमि ४. उपवनभूमि ५. ध्वजाभूमि ६. कल्पभूमि ७. भवनभूमि ८. श्रीमंडपभूमि ये आठ भूमियाँ मानी हैं।

चैत्यप्रासादभूमि — इस धूलिसाल के अभ्यंतर भाग में चारों तरफ से वेष्टित ऐसी प्रथम चैत्यप्रासादभूमि है। इसमें एक-एक जिनमंदिर ऊँचे-ऊँचे बने थे और एक-एक मंदिर के अन्तराल में पाँच-पाँच प्रासाद बने थे। ये नाना प्रकार के उद्यान, बावड़ी, कूप आदि से मनोहर थे। इन जिनमंदिरों की और देवप्रासादों की ऊँचाई तीर्थंकर ऋषभदेव की ऊँचाई से बारहगुनी मानी है।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २३७।

नाट्यशालाएँ—इस प्रथमभूमि में चारों तरफ गलियों में दोनों पार्श्वभागों में सुवर्ण-रत्नों से निर्मित दो-दो नाट्यशालाएँ बनी रहती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में बत्तीस रंगभूमियाँ हैं और एक-एक रंगभूमि में बत्तीस-बत्तीस भवनवासिनी देवांगनाएँ तीर्थंकरों के विजयगीत गाती हुई नृत्य करती रहती हैं और पुष्पांजलि क्षेपण करती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में नाना प्रकार की सुगंधि से युक्त दो-दो धूपघट रहते हैं।

मानस्तंभ—प्रथम पृथिवी के बहुमध्यभाग में चारों गलियों के बीचों-बीच मानस्तंभ भूमियाँ हैं। इन मानस्तंभ भूमि के चारों तरफ गोपुर द्वारों से सहित परकोटा है। इसके मध्य वनखंड हैं। इनके मध्य पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से 'सोम, यम, वरुण और कुबेर' इन लोकपालों से सुंदर क्रीड़ानगर बने रहते हैं। इसके अभ्यंतर भाग में 'कोट' है उसके आगे वन वापिकाएँ हैं जिनमें कमल खिले रहते हैं। उनके बीच में अपनी-अपनी दिशा और विदिशाओं में भी दिव्य क्रीड़नपुर बने रहते हैं। उनके अभ्यंतर भाग में चार गोपुरों से सहित तीसरा 'कोट' है।

इसके बीच में अर्थात् तीन परकोटों में से अभ्यंतर कोट के बीच में मानस्तंभ के लिए प्रथम, द्वितीय और तृतीय पीठ अर्थात् तीन कटनी बनी हुई हैं।

प्रथम कटनी वैडूर्यमणिमय, द्वितीय कटनी सुवर्णमय और तृतीय कटनी नाना रत्नों से निर्मित नानावर्णमय होती है। प्रथम कटनी में आठ सीढ़ियाँ हैं, दूसरी में चार एवं तीसरी पर चढ़ने के लिए भी चार ही सीढ़ियाँ हैं। तीसरी कटनी पर बीचों बीच में 'मानस्तंभ' खड़े हुए हैं। ये मानस्तंभ अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे रहते हैं। भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष—दो हजार हाथ थी अतः ये मानस्तंभ छह हजार धनुष ऊँचे—चौबीस हजार हाथ ऊँचे थे अर्थात् तीन कोश ऊँचे थे।

प्रत्येक मानस्तंभ के मूलभाग का विस्तार दो हजार धनुष है, वज्रमय द्वारों से युक्त है और मध्यभाग स्फटिकमणि से निर्मित है और गोलाकार है। मानस्तंभ के उपरिम भाग वैडूर्यमणिमय हैं इनमें चंवर, घंटा, किंकणी, रत्नहार एवं ध्वजाएँ शोभा बढ़ाती रहती हैं।

इन मानस्तंभों में ऊपरी भाग में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन प्रतिमाओं में आठ-आठ प्रातिहार्य रहते हैं। ऊपर में शिखर बने हुए हैं जिनमें ध्वजाएँ फहरा रही हैं।

इन मानस्तंभों के देखने मात्र से मिथ्यादृष्टी एवं महामानियों का भी मान गलित हो जाता है इसीलिए इनका 'मानस्तंभ' यह सार्थक नाम है।

अन्यत्र ग्रंथ में लिखा है—

"ये मानस्तंभ बारह योजन की दूरी से (९६ मील से) दिखाई देते हैं। पालिका के अग्रभाग पर जो कमल हैं उन्हीं पर स्थित हैं। इनका मूल भाग हीरे का, मध्यभाग स्फटिक मणि का और अग्रभाग वैडूर्यमणि का है। ये मानस्तंभ दो-दो हजार कोणों से दो-दो हजार पहलू वाले हैं। चारों दिशाओं में ऊपर में सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं तथा उनकी रत्नमयी बड़ी-बड़ी पालिकाएँ हैं। पालिकाओं के अग्रभाग पर जो कमल हैं उन पर सुवर्ण के देदीप्यमान घट हैं, उन घटों के अग्रभाग से लगी हुई सीढ़ियाँ हैं तथा उन सीढ़ियों पर लक्ष्मी देवी के अभिषेक की शोभा दिखलाई गई है। वे मानस्तंभ लक्ष्मी देवी के चूड़ारत्न के समान अपनी कांति से 'बीस योजन' तक का क्षेत्र प्रकाशमान करते हैं तथा जिनका मन अहंकार से युक्त है ऐसे देव और मनुष्यों को वहीं रोक देने वाले हैं।[१]"

---

१. हरिवंशपुराण पु. सर्ग ५७, पृ. ६४७।

१६ सरोवर—पूर्वदिशा के मानस्तंभ की चारों दिशाओं में तीनों परकोटों के बाहर क्रम से नन्दोत्तरा, नंदा, नंदिमती और नंदिघोषा ये चार द्रह (वापिकाएँ) हैं। दक्षिण दिशा के मानस्तंभ में चारों दिशाओं में विजया, वैजयंता, जयंता और अपराजिता नाम की बावड़ियाँ हैं। पश्चिम दिशा के मानस्तंभ के चारों तरफ अशोका, सुप्रबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीका नाम की वापिकाएँ हैं। उत्तर के मानस्तंभ में चारों दिशाओं में क्रम से हृदयानंदा, महानंदा, सुप्रतिबुद्धा और प्रभंकरा ये चार द्रह हैं।

ये सभी द्रह समचतुष्कोण हैं, वेदिका और तोरण द्वारों से सहित हैं। इसमें कमल आदि फूल खिल रहे हैं और हंस आदि क्रीड़ा कर रहे हैं।

प्रत्येक द्रहों में तटों पर जलक्रीड़ा के योग्य मणिमयी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन द्रहों में भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव क्रीड़ा किया करते हैं और मनुष्यों के लिए भी वे क्रीड़ा के लिए हैं। प्रत्येक द्रह के आश्रित निर्मल जल से परिपूर्ण दो-दो कुंड होते हैं जिसमें देव, मनुष्य और तिर्यंच अपने पैरों की धूलि धोकर आगे जाते हैं।

आदिपुराण में वर्णित मानस्तंभ—इन मानस्तंभों के ऊपर तीन छत्र फिर रहे थे, इन्द्र के द्वारा बनाये जाने के कारण उनका (मानस्तंभों का) 'इन्द्रध्वज' यह नाम भी रूढ़ हो गया था। उनके दर्शन से मिथ्यादृष्टी जीवों का सब मान नष्ट हो जाता है, वे बहुत ऊँचे प्रमाण वाले थे और तीनों लोकों के जीव उनका सम्मान करते थे इसलिए उनका 'मानस्तंभ' यह नाम सार्थक था।

कहा भी है—

हिरण्मयांगाः प्रोत्तुंगा मूर्ध्निच्छत्रत्रयांकिताः।
सुरेन्द्रनिर्मितत्त्वाच्च प्राप्तेन्द्रध्वजरूढिकाः।।१०१।।
मानस्तंभान्महामान-योगात्त्रैलोक्यमाननात्।
अन्वर्थसंज्ञया तज्ज्ञैर्मानस्तंभाः प्रकीर्तिताः[1]।।१०२।।

प्रथम वेदी—इस चैत्यप्रासादभूमि को वेढ़कर प्रथम वेदी है। इसमें भी रत्नमय ध्वजाएँ हैं, तोरण द्वार हैं। उन पर तोरण बंधे हुए हैं और घंटे लटक रहे हैं। इस वेदी के भी चार गोपुर द्वार हैं, द्वारों के आजू-बाजू १०८-१०८ मंगलद्रव्य व नवनिधियाँ शोभित हो रही हैं, पुत्तलिकाओं के मस्तक पर धूपघट शोभायमान हैं। इसके मूल और उपरिम भाग का विस्तार धूलिसाल के मूल विस्तार के समान है और ऊँचाई तीर्थंकर देव की ऊँचाई से चौगुनी—धूलिसाल के समान है।

द्वितीयखातिकाभूमि—इस प्रथम वेदी के आगे स्वच्छजल से भरी खातिका—खाई है। यह अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से चतुर्थ भाग प्रमाण गहरी है। इसमें मणिमय सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुमुद, कुवलय आदि फूल खिल रहे हैं और हंस आदि पक्षी कलरव ध्वनि कर रहे हैं। चैत्यप्रासादभूमि के विस्तार के समान ही इस भूमि का विस्तार है।

कोई-कोई आचार्य 'चैत्यप्रासाद' भूमि नहीं स्वीकार करते। उनके आदेशानुसार भगवान ऋषभदेव के समवसरण में खातिका भूमि का विस्तार एक योजन प्रमाण था और शेष तीर्थंकरों का क्रम से हीन था।

महापुराण में श्रीजिनसेनस्वामी ने भी चैत्यप्रासादभूमि[2] नहीं मानी है।

---

१. आदिपुराण पर्व २२, पृ. ५१६। २. हरिवंशपुराण में भी चैत्यप्रासाद भूमि का वर्णन नहीं है। यहाँ चैत्यप्रासाद भूमि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के आधार से किया है।

द्वितीयवेदी—दूसरी वेदी इस खातिकाभूमि को वेष्टित किये है यह प्रथम वेदी के समान ही है, मात्र इसका विस्तार प्रथम वेदी से दुगुना है।

तृतीय लताभूमि—इस वेदी के आगे लताभूमि है इसमें पुन्नाग, नाग, कुम्बक, शतपत्र आदि की बेलें पुष्पों से सुंदर दिखती हैं। इसमें अनेक क्रीड़ा पर्वत बने हुए हैं और जलभरी बावड़ियाँ भी बनी हुई हैं इनमें भी फूल खिले हुए हैं तथा मणियों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

द्वितीय कोट—इस लतावन को घेरकर आगे दूसरा कोट—परकोटा है। यह सुवर्णमयी है और ऊँचाई, गोपुरद्वार आदि में धूलिसाल के समान है। परन्तु इतना विशेष है कि इसका विस्तार दुगुना है एवं द्वार रजतमयी है। इनके रक्षक यक्षजाति के देव हैं।

हरिवंशपुराण में कहा है—

इस कोट के गोपुर द्वारों के रक्षक व्यन्तर जाति के देव द्वारपाल हैं जो कटक आदि आभूषणों से सुंदर हैं, हाथ में मुद्गर लिये रहते हैं और अपने प्रभाव से अयोग्य व्यक्तियों को दूर हटाते रहते हैं[१]।

इस परकोटे के गोपुर द्वारों के मणिमय तोरणों के दोनों ओर १०८-१०८ मंगल द्रव्य आदि हैं। इस कोट के आगे गली के दोनों ओर तीन-तीन खण्ड की दो-दो नाट्यशालाएँ हैं, जिसमें बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती रहती हैं।

चतुर्थ उपवन भूमि—इसके आगे चौथी उपवन भूमि है इसमें पूर्व आदि के क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपा और आम के बगीचे हैं। इन चारों वनों—बगीचों में छोटी-छोटी नदियाँ हैं, उन पर पुल बने हुए हैं, कहीं क्रीड़ा पर्वत हैं तो कहीं पर बावड़ियाँ बनी हुई हैं और कहीं-कहीं सुंदर हिंडोले लगे हुए हैं।

चैत्यवृक्ष—इन चारों वनों के बीच-बीच में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं। ये तीर्थंकर देव की ऊँचाई से बारहगुने ऊँचे हैं। इन चैत्यवृक्षों में एक-एक में चारों दिशाओं में एक-एक अर्हंत देव की मणिमय प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन प्रतिमाओं के आश्रित आठ महाप्रातिहार्य बने हुए हैं।

एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित—प्रतिमाओं के सामने एक-एक मानस्तंभ बने हुए हैं, ये मानस्तंभ तीन परकोटे से वेष्टित व तीन कटनी के ऊपर रहते हैं। एक-एक मानस्तंभ में भी चार-चार प्रतिमाएँ विराजमान हैं अर्थात् एक चैत्यवृक्ष में चार प्रतिमाएँ और चार मानस्तंभ हो गये हैं।

ये चैत्यवृक्ष वनस्पतिकायिक नहीं हैं प्रत्युत् पृथिवीकायिक रत्नों से निर्मित होते हैं। इन मानस्तंभों के आश्रित भी वापियाँ होती हैं। वहाँ कहीं पर रमणीय भवन, कहीं क्रीड़नशाला और कहीं नाट्यशालाएँ बनी हुई हैं। अनेक रत्नों से निर्मित भवनों में देव-मनुष्य आदि विचरण करते हैं।

उपवनभूमि में बनी वापिकाओं में स्नान करने से मनुष्य अपना एक भव देख लेते हैं और उन वापिकाओं के जल में अपना मुख देखने से वे अपने पूर्व के तीन, वर्तमान का एक और भविष्यत् के तीन ऐसे सात भव देख लेते हैं[२]।

हरिवंशपुराण में बावड़ियों का वर्णन बहुत ही सुन्दर है—

उपवनभूमि में पूर्व दिशा के अशोक वन में नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दवती, अभिनंदिनी और नंदिघोषा

---

१. हरिवंशपुराण पु., सर्ग ५७, पृ. ६४८। २. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २४८।

ये छह बावड़ियाँ हैं। दक्षिण के सप्तपर्ण वन में विजया, अभिजया, जैत्री, वैजयंती, अपराजिता और जयोत्तरा ये छह वापिकाएँ हैं। पश्चिम में चंपकवन में कुमुदा, नलिनी, पद्मा, पुष्करा, विश्वोत्पला और कमला ये छह वापिकाएँ हैं। उत्तर में आम्रवन में प्रभासा, भास्वती, भासा, सुप्रभा, भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छह वापिकाएँ हैं। पूर्व दिशा की वापिकाएँ अपनी पूजा करने वाले मनुष्यों को उदयफल प्रदान करती हैं। दक्षिण दिशा की वापियाँ विजय फल को, पश्चिम दिशा की वापियाँ प्रीति फल को एवं उत्तर दिशा की वापियाँ ख्याति फल को देती हैं। इन-इन फलों के इच्छुक मनुष्य इन वापिकाओं की पूजा करते हैं[१]। अर्थात् इनके जल का आदरपूर्वक सेवन करते हैं।

क्रम के जानने वाले भक्तजन उन बावड़ियों से फूलों को लेकर क्रम-क्रम से स्तूपों तक जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं की पूजा करते हुए आगे प्रवेश करते हैं।

उदय और प्रीतिरूप फल को देने वाली वापिकाओं के बीच के मार्ग के दोनों ओर तीन खंड वाली सुवर्णमय बत्तीस नाट्यशालाएँ हैं। ये डेढ़ कोश चौड़ी हैं, इनकी भूमियाँ रत्नों से निर्मित हैं और दीवालें स्फटिक की हैं। उनमें ज्योतिषी देवों की बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती रहती हैं।[२]

महापुराण में लिखा है कि अशोक चैत्यवृक्ष में नीलमणियों के पत्ते हैं और पद्मरागमणियों से निर्मित फूलों के गुच्छे शोभित हो रहे हैं एवं सुवर्ण से बनी हुई ऊँची-ऊँची शाखाएँ हैं, ये हवा के झकोरे से हिलते हैं, इस चैत्यवृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में जिनेन्द्रदेव की चार प्रतिमाएँ हैं, जिनका इन्द्र स्वयं अभिषेक-पूजन करते हैं।

इस वृक्ष के ऊपर घंटे लटक रहे हैं, ध्वजाएँ फहरा रही हैं और मोतियों की झालरों से सहित छत्रत्रय लगे हुए हैं[३]।

नाट्यशालाएँ—इन चारों वनों के आश्रित चारों गलियों के दोनों पार्श्वभागों में दो-दो नाट्यशालाएँ हैं ऐसे सोलह नाट्यशालाएँ हो गईं। इनमें से आदि की आठ नाट्यशालाओं में भवनवासिनी देवांगनाएँ एवं आगे की आठ नाट्यशालाओं में कल्पवासिनी देवकन्याएँ (देवांगनाएँ) नृत्य किया करती हैं।

इस उपवनभूमि का विस्तार प्रथम चैत्यप्रासाद भूमि से दूना माना गया है।

तृतीय वेदी—यह तीसरी वेदी इस चतुर्थ उपवनभूमि को घेरकर स्थित है। इसका भी पूरा वर्णन दूसरी वेदी के समान है।

यहाँ पर द्वाररक्षक यक्षेन्द्र देव हैं।

पंचमी ध्वजाभूमि—इस तृतीयवेदी के आगे 'ध्वजाभूमि' है, इसमें दिव्यध्वजाएँ हैं। ये दश प्रकार के चिन्हों से चिन्हित हैं। सिंह, गज, बैल, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र ये दश चिन्ह माने गये हैं। चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में इन दश प्रकार की ध्वजाओं में से एक-एक प्रकार की एक सौ आठ-एक सौ आठ रहती हैं। इनमें से भी प्रत्येक ध्वजा अपनी एक सौ आठ क्षुद्रध्वजाओं से सहित होती हैं।

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के समवसरण में (महाध्वजा १०×१०८×४=४३२०। क्षुद्रध्वजा १०×१०८×१०×४=४६६५६०। समस्त ध्वजा ४३२०+४६६५६०=४७०८८०) कुल चार लाख सत्तर हजार आठ सौ अस्सी हैं।

१-२. हरिवंशपुराण सर्ग ५७, पृ. ६४८-६४९। ३. आदिपुराण पर्व २२, पृ. ५२५।

ये ध्वजाएँ रत्नों से निर्मित होकर भी हवा से हिलती हैं, नाना प्रकार के रत्नों से सुंदर हैं। ये ध्वजाएँ रत्नों से खचित सुवर्णमय स्तंभों में लगी हुई हैं। इन स्तंभों की ऊँचाई भी तीर्थंकर ऋषभदेव की ऊँचाई से बारह गुणी है।

यहाँ पर लताभूमि के विस्तार से दूना ध्वजाभूमि का विस्तार समझना चाहिए।

तृतीयकोट—इस ध्वजाभूमि के आगे चांदी के समान तीसरा कोट—परकोटा है। यह कोट धूलिसाल से दूना है और गोपुरद्वार, मंगलद्रव्य, नवनिधि, धूपघट, नाट्यशाला आदि की व्यवस्था पूर्ववत् हैं। इसके द्वाररक्षक भवनवासी देव हैं।

छठी कल्पभूमि—इस तृतीय रजत परकोटे के बाद कल्पभूमि है। इसमें दश प्रकार के कल्पवृक्ष लगे हुए हैं।

यह भूमि अपनी ध्वजभूमि के सदृश विस्तार वाली है। इसमें भी उत्तम वापिकाएँ हैं जिनमें कमल फूल रहे हैं। कहीं पर सुंदर प्रासाद हैं, कहीं पर क्रीड़नशालाएँ, कहीं प्रेक्षणशालाएँ—चित्रशालाएँ आदि बनी हुई हैं। इस भूमि में पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग नाम के कल्पवृक्ष हैं। ये अपने-अपने नाम के अनुसार ही वस्तुएँ प्रदान करते रहते हैं।

इस भूमि में भी चारों दिशाओं में क्रम से एक-एक सिद्धार्थ वृक्ष हैं। उनके नाम क्रम से नमेरू, मंदार, संतानक और पारिजात हैं। ये सिद्धार्थवृक्ष तीन कोटों के अंदर हैं और तीन मेखलाओं के ऊपर स्थित हैं।

इनमें से प्रत्येक वृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में एक-एक, ऐसी चार सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं जो कि वंदना करने वालों के समस्त पाप नष्ट करने वाली हैं। एक-एक सिद्धार्थवृक्ष के आश्रित तीन कोटों से सहित व तीन कटनी के ऊपर चार-चार मानस्तंभ बने हुए हैं अर्थात् एक-एक सिद्धप्रतिमा के सामने एक-एक मानस्तंभ हैं। ये सिद्धार्थ वृक्ष भी भगवान ऋषभदेव की ऊँचाई से बारहगुने ऊँचे हैं।

नाट्यशालाएँ—कल्पतरुभूमि के पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी—गली के आश्रित चार-चार नाट्यशालाएँ हैं। ये चैत्यवृक्षों के सदृश ऊँची हैं, पाँच खण्ड वाली हैं, बत्तीस रंगभूमियों से सहित हैं। इनमें ज्योतिषी देवियाँ नृत्य करती रहती हैं।

चतुर्थ वेदी—इस छठी भूमि को घेरकर चौथी वेदी बनी हुई है। यह अपनी प्रथम वेदी के सदृश ही है। यहाँ भवनवासी देव द्वारों की रक्षा करते हैं।

सातवीं भवनभूमि—इस चतुर्थवेदी के आगे भवनभूमि है। इसमें ऊँचे-ऊँचे भवन बने हुए हैं जो कि रत्नों से निर्मित हैं, ध्वजाओं से सहित हैं और तोरणों से युक्त हैं। इन भवनों में जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं, देवगण जिनका नित्य अभिषेक करते रहते हैं। इस भूमि में भी उपवन, लताएँ, क्रीड़ाग्रह, क्रीड़ापर्वत आदि बने हुए हैं।

स्तूपरचना—भवनभूमि के पार्श्वभागों में प्रत्येक वीथी—गली के मध्य में जिन और सिद्धों की अनुपम प्रतिमाओं से सहित नौ-नौ स्तूप हैं। इन स्तूपों पर छत्र फिर रहे हैं, ध्वजाएँ फहरा रही हैं और आठ मंगल द्रव्य रखे हुए हैं। ये स्तूप रत्नों से निर्मित हैं।

एक-एक स्तूप के बीच में मकर के आकार के सौ-सौ तोरण होते हैं। इन स्तूपों की ऊँचाई अपने चैत्यवृक्षों के बराबर है। इन स्तूपों की लम्बाई और विस्तार का प्रमाण इस समय नष्ट हो चुका है[१]।

भव्यजीव इन स्तूपों का अभिषेक, पूजन और प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

ये स्तूप ऐसे दिखते थे कि मानों भगवान की नौ केवललब्धियाँ ही हों।[२]

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २५४-२५५। २. आदिपुराण, पृ. ५३३।

हरिवंशपुराण में कहा है—ये नौ-नौ स्तूप पद्मराग मणियों से निर्मित हैं तथा उनके समीप नाना प्रकार के सभागृह हैं जो कि स्वर्ण और रत्नों के बने हुए हैं। ये मुनियों के योग्य और देवों के योग्य हैं।[१]

चतुर्थकोट—इस भवनभूमि को घेरकर आकाशस्फटिक से निर्मित चतुर्थ कोट है इसके चारों गोपुरद्वार मरकत मणि से बने हुए हैं।

इन गोपुरद्वारों पर कल्पवासी देव हाथ में रत्नदण्ड लेकर द्वारपाल बनकर खड़े रहते हैं।

आठवीं श्रीमंडपभूमि—स्फटिक परकोटे से आगे श्रीमण्डपभूमि है। इसमें बारह कोठे बने हुए हैं। निर्मल स्फटिक मणि से सोलह दीवालों के बीच में ये बारह कोठे हैं क्योंकि चारों दिशाओं में जो विशाल वीथी—गलियाँ हैं उनके भी आजू-बाजू में दीवाले हैं अतः सोलह हो गई हैं अर्थात् चार-चार दीवालों के बीच तीन-तीन कोठे होने से बारह कोठे होते हैं।

द्वादशगण व्यवस्था—इन बारह कोठों में पूर्वदिशा आदि से—प्रदक्षिणा के क्रम से ऋषि आदि बारहगण बैठते हैं—

१. प्रथम कोठे में अक्षीण ऋद्धि आदि के धारक गणधरदेव आदि दिगम्बर मुनि बैठते हैं। २. स्फटिकमणि की दीवाल से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ बैठती हैं। २. स्फटिकमणि की दीवाल से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ बैठती हैं। ३. तीसरे कोठे में आर्यिकाएँ तथा श्राविकाएँ बैठती हैं इसी में क्षुल्लिकाएँ, ब्रह्मचारिणियाँ शामिल हैं। ४. चतुर्थ कोठे में ज्योतिषी देवियाँ। ५. पाँचवें में व्यन्तर देवियाँ। ६. छठे में भवनवासिनी देवियां। ७. सातवें में भवनवासी देव। ८. आठवें में व्यन्तर देव। ९. नवमें में ज्योतिष्क देव। १०. दसवें में सौधर्म स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक के कल्पवासी देव। ११. ग्यारहवें में चक्रवर्ती, मांडलिक आदि राजागण व श्रावक बैठते हैं इसी में ऐलक, क्षुल्लक सम्मिलित हैं, जो कि यथायोग्य बैठते हैं और १२. बारहवें कोठे में हाथी, सिंह, व्याघ्र, हरिण आदि पशुगण बैठते हैं।

इन सभी कोठों में बैठने वाले भव्यजीव पूर्व बैर को छोड़कर परस्पर में मैत्री भाव को धारण कर लेते हैं।

पाँचवीं वेदी—इसके आगे स्फटिक पाषाण से निर्मित पाँचवीं वेदी है जो कि चतुर्थ कोट के सदृश विस्तार वाली है।

हरिवंशपुराण में स्तूपों का कुछ विशेष वर्णन आया है उसे यहाँ संक्षेप से दिखाते हैं।

स्फटिकमणि से निर्मित तृतीय कोट है। इसके चारों गोपुरद्वारों के क्रम से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित ये नाम हैं।

इन द्वारों के पसवाड़ों में उत्तम रत्नमय आसनों के मध्य में स्थित मंगलरूप दर्पण हैं जो देखने वालों के पूर्वभव दिखलाते हैं। ये दर्पण गाढ़ अंधकार को दूर करते हैं। 'विजय' आदि गोपुरों में यथायोग्य 'जय हो, कल्याण हो' इन शब्दों का उच्चारण करते हुए कल्पवासी देव द्वारपाल रहते हैं। उसके आगे नानावृक्षों और लतागृहों से व्याप्त मंच, प्रेंखागिरि और प्रेक्षागृहों से सुशोभित अन्तर्वन हैं।

कल्याणजय—वीथियों—गलियों के बीच में 'कल्याणजय' नाम का आँगन है, उसमें केले के वृक्ष लगे हुए हैं। उन्हीं के भीतर नाटकशाला है जिसमें लोकपाल की देवांगनाएँ नृत्य करती हैं। उनके मध्य दूसरा 'पीठ' है।

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग ५७, पृ. ६५०।

उसके आगे 'सिद्धार्थवृक्ष' हैं इसमें सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बारहस्तूप—उसके आगे एक मंदिर है जिसे पृथिवी के आभूषणस्वरूप 'बारहस्तूप' सुशोभित कर रहे हैं। इनके आगे चारों दिशाओं में शुभ वापिकाएँ हैं-नन्दा, भद्रा, जया और पूर्णा ये इनके नाम हैं उन वापिकाओं में स्नान करने से जीव अपना पूर्वभव जान लेते हैं। इनमें अपना प्रतिबिम्ब देखने से जीव अपने सात भव देख लेते हैं।

जयांगण—वापिकाओं से आगे एक 'जयांगण' बना हुआ है जो कि एक कोश ऊँचा और एक योजन चौड़ा है। इसमें तोरण बंधे हुए हैं, यह तीन लोक की विजय का आधार है, इसमें बीच-बीच में मूंगाओं की लाल-लाल बालुका का अंतर देकर मोतियों की सफेद बालू बिछी हुई है। वह 'जयांगण' अनेक चित्रावली, अनेक भवन, मंडप व निवास स्थानों से सहित है।

इन्द्रध्वज—उस जयांगण के मध्य स्वर्णमयी पीठ पर 'इन्द्रध्वज' सुशोभित है। उस पर मणियों से सुंदर एक ऊँची 'पताका' लगी हुई है। रत्नों की माला, किंकणी आदि से सुशोभित वह पताका जब आकाश में फहराती है, तब इन्द्रादिक देव भी बड़े ही कौतुक से उसे देखते हैं।

श्रुतदेवता—उसके आगे एक हजार खंभों पर खड़ा हुआ 'महोदय' नाम का मंडप है जिसमें 'मूर्तिमती श्रुतदेवता' विद्यमान रहती हैं। उस श्रुतदेवता को दाहिने भाग में करके 'श्रुतकेवली' महामुनि श्रुत का व्याख्यान करते रहते हैं। महोदय मंडप से आधे विस्तार वाले चार परिवार मंडप और हैं जिसमें कथा कहने वाले 'आक्षेपणी आदि कथाएँ कहते रहते हैं। इन मंडपों के समीप में नाना प्रकार के और स्थान भी बने रहते हैं जिनमें बैठकर महाऋद्धियों के धारक ऋषिगण इच्छुकजनों के लिए उनकी इष्ट वस्तुओं का निरूपण करते हैं।

उसके आगे एक सुवर्णमय पीठ है जिसकी भव्यजीव समयानुसार पूजा करते हैं। उस पीठ का 'श्रीपद' नाम का द्वार है, उस द्वार के दोनों ओर 'प्रभासक' नाम के दो मंडप हैं जिनमें निधियों के स्वामी दो देव स्थित हैं।

प्रमदा नाट्यशालाएँ—

उनके आगे 'प्रमदा' नाम की दो विशाल नाट्यशालाएँ हैं जिनमें कल्पवासिनी अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं।

लोकस्तूप—

१. लोकस्तूप—विजयांगण के कोनों में चार 'लोकस्तूप' होते हैं जो एक योजन ऊँचे हैं, इन पर पताकाएँ फहराती रहती हैं। ये लोकस्तूप तीन लोक की रचना दिखलाते हैं। ये नीचे वेत्रासन के समान, मध्य में झालर के समान, ऊपर मृदंग के समान और अंत में तालवृक्ष के समान लंबी 'त्रसनाली' से सहित हैं। इनका स्वच्छ स्फटिक के समान रूप है अतः ये अपने भीतर की रचना स्पष्ट झलकाते हैं।

२. मध्यलोकस्तूप—इन लोकस्तूपों से आगे 'मध्यलोक' नाम से प्रसिद्ध स्तूप है। जिनमें मध्यलोक की रचना स्पष्ट दिखती है।

३. मन्दरस्तूप—आगे मंदराचल के समान 'मंदरस्तूप' हैं जिन पर चारों दिशाओं में भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

४. कल्पवासस्तूप—उनके आगे कल्पवासियों की रचना से युक्त 'कल्पवासस्तूप' है जो देखने वालों को कल्पवासी देवों की विभूति दिखलाते हैं।

५. ग्रैवेयकस्तूप—उनके आगे ग्रैवेयकों के समान आकार वाले 'ग्रैवेयकस्तूप' हैं जो मनुष्यों को ग्रैवेयकों

की शोभा दिखाते हैं।

६. अनुदिशस्तूप—उनके आगे 'अनुदिश' नाम के नौ स्तूप सुशोभित हैं जिनमें प्राणी नौ अनुदिशों को प्रत्यक्ष देख लेते हैं।

७. सर्वार्थसिद्धिस्तूप—आगे चलकर चारों दिशाओं में विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानों से सुशोभित समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले 'सर्वार्थसिद्धि' स्तूप हैं।

८. सिद्धस्तूप—उनके आगे स्फटिक के समान निर्मल 'सिद्धस्तूप' हैं जिनमें सिद्धों के स्वरूप को प्रगट करने वाली दर्पणों की छाया दिखाई देती है।

९. भव्यकूट—उनके आगे देदीप्यमान शिखरों से युक्त 'भव्यकूट' नाम के स्तूप रहते हैं जिन्हें अभव्यजीव नहीं देख पाते हैं क्योंकि इनके प्रभाव से उनके नेत्र अंधे हो जाते हैं।

१०. प्रमोहस्तूप—उनके आगे 'प्रमोहस्तूप' हैं जिन्हें देखकर लोग अत्यधिक भ्रम में पड़ जाते हैं और चिरकाल से अभ्यस्त भी गृहीत वस्तु को भूल जाते हैं।

११. प्रबोधस्तूप—आगे चलकर 'प्रबोधस्तूप' हैं जिन्हें देखकर लोग प्रबोध को प्राप्त हो जाते हैं और तत्त्व को प्राप्तकर साधु बनकर भी संसार से छूट जाते हैं।

इस प्रकार जिनकी वेदिकाएँ एक-दूसरे से सटी हुई हैं तथा जो तोरणों से समुद्भासित हैं, ऐसे अत्यंत ऊँचे दश स्तूप क्रम-क्रम से परिधि तक सुशोभित हैं।

वहाँ पर गणधर महामुनि की इच्छा करते ही एक 'दिव्यपुर' बन जाता है उसके त्रिलोकसार, श्रीकांत आदि अनेक नाम माने गये हैं। भगवान के प्रभाव से वह पुर तीनलोक के समस्त पदार्थों को धारण करने में समर्थ होता है।[१]

अब तीन कटनी का वर्णन करते हैं—

१. प्रथम कटनी—इस स्फटिकमयी पाँचवीं वेदी के आगे 'वैडूर्यमणि' से निर्मित प्रथम पीठ—कटनी है। बारह कोठों से आगे और चारों वीथियों के आगे सोलह स्थानों के सामने प्रथम कटनी पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, ये सीढ़ियाँ भी सोलह-सोलह हैं।

धर्मचक्र—प्रथम कटनी पर चारों दिशाओं में एक-एक यक्षेन्द्र अपने मस्तक पर 'धर्मचक्र' को लेकर स्थित रहते हैं। इसी कटनी पर अष्टमंगलद्रव्य और पूजाद्रव्य रखे हुए हैं।

गणधर गुरु, अनेक ऋषिगण, देव-देवियाँ आदि इसी प्रथम कटनी पर चढ़कर भगवान की प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्रदेव के सन्मुख होते हुए पूजा करते हैं।

इस प्रथम कटनी की ऊँचाई चार धनुष—सोलह हाथ की है।

२. द्वितीय कटनी—प्रथम कटनी के ऊपर चारों दिशाओं में चढ़ने के लिए आठ-आठ सीढ़ियाँ होती हैं। इस द्वितीय कटनी पर मणिमय स्तंभों पर लटकती हुई महाध्वजाएँ रहती हैं इन ध्वजाओं के चिन्ह—सिंह, बैल, कमल, चक्र, माला, गरुड़, हाथी और ध्वजा ये आठ प्रकार के माने हैं। यह कटनी स्वर्णमयी मानी गई है।

३. तृतीय कटनी—इस द्वितीय कटनी के ऊपर उतनी ही ऊँची तीसरी कटनी है, यह अनेक रत्नों से निर्मित है। दूसरी कटनी से चढ़ने के लिए इसमें भी आठ-आठ सीढ़ियाँ होती हैं।

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग ५७, पृ. ६५३-६५४।

गंधकुटी—इसी तृतीय पीठ पर एक सुंदर 'गंधकुटी' होती है। इस गंधकुटी की चौड़ाई और लम्बाई भगवान ऋषभदेव के समवसरण में छह सौ धनुष प्रमाण थी और ऊँचाई नौ सौ धनुष थी।

इस गंधकुटी में चंवर, किंकिणी, वंदनमाला, हार आदि सुशोभित रहते हैं और सुंदर ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। मलय, चंदन, गोशीर, कालागरु आदि सुगंधित धूपों से सहित धूप घट रखे रहते हैं।

इस गंधकुटी के मध्य स्फटिक मणि से निर्मित भगवान की ऊँचाई के योग्य रमणीय सिंहासन है। भगवान ऋषभदेव उस सिंहासन के ऊपर आकाश में चार अंगुल अधर विराजमान थे।

श्री विष्णुसेन द्वारा रचित समवसरण स्तोत्र में सिंहासन के ऊपर कमल का वर्णन आया है।

तन्मध्यस्थितसिंहासन-मध्ये शोणमंबुजं रमणीयं।
दशशतदलसंयुक्तं, तन्मध्ये कनककर्णिकायामुपरि[१]।।

गंधकुटी के मध्य सिंहासन है उस सिंहासन के बीच में लाल कमल है जो अतिशय सुंदर है, उसमें एक हजार दल हैं, उस कमल की कर्णिका के ऊपर चार अंगुल अधर तीर्थंकर प्रभु विराजमान रहते हैं।

गंधकुटी के ऊपर शिखर रहते हैं, जिन पर करोड़ों विजयपताकाएँ—ध्वजाएँ बंधी हुई हैं, ऐसे ऊँचे शिखरों से सहित वह गंधकुटी नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित है[२]।

इससे स्पष्ट है कि समवसरण में गंधकुटी वेदी के समान शिखरों से सहित होती है।

आठ प्रातिहार्य—भगवान के समवसरण में आठ प्रातिहार्य होते हैं-अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, छत्रत्रय, चामर, देवदुंदुभि, भामंडल, सिंहासन और दिव्यध्वनि।

१. जिस वृक्ष के नीचे भगवान को केवलज्ञान होता है, वही वृक्ष अशोक वृक्ष कहलाता है। भगवान ऋषभदेव का यह वृक्ष वटवृक्ष है[३]।

२. देवों द्वारा कल्पवृक्षों के सुंदर-सुंदर पुष्प बरसाये जाते हैं।

३. भगवान के मस्तक के ऊपर तीन छत्र फिरते हैं ये भगवान के तीन लोक की प्रभुता बतलाते हैं।

४. भगवान के आजू-बाजू यक्षेन्द्र चौंसठ चंवर ढोरते हैं। तीर्थंकरों के सिवाय अन्य चक्रवर्ती आदि के चंवरों की संख्या उनके-उनके राजदरबार में आधी-आधी मानी गई है[४]।

५. देवगण आकाश में स्थित होकर जो पणव, शंख, नगाड़े आदि करोड़ों प्रकार के वाद्य बजाते हैं, वह 'देवदुंदुभि' है।

६. भगवान के पीछे कांति के समूह से निर्मित, करोड़ों देवों के तेज को फीका करता हुआ भामंडल देदीप्यमान होता है, इसमें भव्यजीव अपने सात भव देख लेते हैं[५]।

७. रत्नों से निर्मित सिंहासन होता है जिस पर भगवान विराजमान रहते हैं।

८. भगवान के मुख से दिव्यध्वनि प्रगट होती है। यह एक प्रकार की होकर भी समस्त मनुष्यों की भाषाओं में श्रोताओं के भेद से अनेक प्रकार की हो जाती है। यह दिव्यध्वनि अक्षररूप ही है[६]।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में इस दिव्यध्वनि को केवलज्ञान के अतिशय में लिया है और प्रातिहार्य में इस स्थान

---

१. सिंहासन पर कमल का वर्णन तिलोयपण्णत्ति, आदिपुराण और हरिवंशपुराण में नहीं है। २. आदिपुराण पर्व २३, पृ. ५४१। ३. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २६४। ४. आदिपुराण पर्व २३, पृ. ५६७। ५. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २६५। ६. आदिपुराण पर्व २३।

पर कहा है—

"गाढ़ भक्ति में आसक्त देव मनुष्य आदि द्वादशगण के भव्यजीव, हाथ जोड़े हुए, प्रसन्नमुख होकर तीर्थंकर भगवान को घेरकर स्थित रहते हैं, यह एक प्रातिहार्य है[१]।"

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में चौंतीस अतिशयों का वर्णन बहुत ही सुंदर है-**जन्म के अतिशय**—तीर्थंकर भगवान के जन्म से ही दश अतिशय विशेष माने हैं-१. स्वेद रहित होना—पसीना नहीं होना २. मल-मूत्र रहितशरीर ३. दूध के समान श्वेत रुधिर ४. वज्रऋषभनाराच संहनन ५. समचतुरस्र संस्थान ६. अनुपम रूप ७. नवचंपक के समान उत्तम अतिशय सुगंधित शरीर ८. शरीर में एक हजार आठ उत्तम लक्षण ९. अनंत बल १० और हित-मित-प्रियवचन।

केवलज्ञान के १० अतिशय—तीर्थंकर भगवान को जब केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब दश अतिशय प्रगट हो जाते हैं—

१. अपने पास से चारों दिशाओं में एक सौ योजन—आठ सौ मील तक सुभिक्ष रहता है। २. भगवान का आकाश में गमन होता है। ३. वहाँ हिंसा नहीं होती—किसी जीव को कोई मार नहीं सकता है। ४. भगवान भोजन—आहार नहीं करते हैं। ५. भगवान के ऊपर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता है। ६. भगवान का पूर्व या उत्तर में एक ही मुख रहता है फिर भी चारों तरफ मुख दीखने से सभी ऐसा समझते हैं कि भगवान का मुख मेरी ओर है। यह चतुर्मुख हो जाना भी एक अतिशय है। ७. भगवान के शरीर की छाया नहीं पड़ती है। ८. भगवान की पलकें नहीं झपकती हैं। ९. भगवान सर्व विद्याओं के ईश्वर होते हैं—तीन लोक की सर्वविद्याओं के स्वामी होते हैं। १०. भगवान के केवलज्ञान के बाद नख और केश नहीं बढ़ते हैं। ११. भगवान की दिव्यध्वनि सात सौ लघु भाषा और अठारह महाभाषारूप से खिरती है तथा और भी जो संज्ञी—मनसहित जीवों की अक्षर-अनक्षर भाषाएँ हैं उन सबमें भगवान की दिव्यध्वनि परिणत हो जाती है इसलिए यह 'सर्वभाषामय' मानी गई है।

भगवान की दिव्यध्वनि जिस समय खिरती है, उस समय भगवान के तालु, दांत, कंठ और ओष्ठ नहीं हिलते हैं। भगवान की वह ध्वनि अस्खलित और अनुपम है, तीनों संध्या कालों में नव मुहूर्तों तक खिरती है—एक-एक बार तीन-तीन मुहूर्त[२] तक खिरती है और एक योजन—आठ मीलपर्यन्त जाती है।

कहीं-कहीं चार बार मानने से अर्धरात्रि में भी तीन मुहूर्त तक खिरती है, ऐसा माना है। वहाँ समवसरण में दिन-रात्रि का भेद नहीं रहता है। वहाँ भगवान के प्रभामंडल के प्रकाश में व दिव्य रत्नों के प्रकाश में अनेक सूर्यों के प्रकाश भी फीके पड़ जाते हैं।

यह दिव्यध्वनि स्वभाव से तीन या चार बात तो खिरती ही है इससे अतिरिक्त समय में श्रीगणधर देव, इन्द्र या चक्रवर्ती के प्रश्नों के निमित्त से असमय में भी खिर जाती है।

भगवान को केवलज्ञान होने के बाद उनकी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं अतएव भगवान की दिव्यध्वनि बिना इच्छा के स्वयमेव भव्यजीवों के पुण्य के निमित्त से खिर जाती है, यह ऐसा स्वभाविक ही है। कहा भी है-

अनात्मार्थं बिना रागैः, शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्-मुरजः किमपेक्षते[३]।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २६५। * चंवर चक्रवर्ती के बत्तीस, अर्धचक्री के सोलह, मंडलेश्वर के आठ, अर्ध-मंडलेश्वर के चार महाराजा के दो और राजा के एक चंवर माना है। २. ४८ मिनट का एक मुहूर्त होता है। ३. रत्नकरण्डश्रावकाचार

किसी के प्रति किंचित् भी राग — प्रेम के बिना और अपने किसी भी प्रयोजन के बिना भी शास्ता — सच्चे उपदेशक भगवान सज्जन पुरुषों के हित के लिए उपदेश देते हैं जैसे कि शिल्पी के हाथ से ताड़ित हुआ मृदंग स्वयं कुछ भी अपेक्षा नहीं करता है।

यह दिव्यध्वनि भव्यजीवों को छह द्रव्य, नव पदार्थ, सात तत्त्व आदि का उपदेश देती है, स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग का उपदेश देती है श्रावक और मुनिधर्म का कथन करती है, भव्यजीवों के लिए उनके पूर्व भव-भविष्यकाल आदि का वर्णन करती है स्वर्ग, नरक, मध्यलोक, जम्बूद्वीप, कर्मभूमि, भोगभूमि आदि समस्त तीनलोक का कथन करती है।

भगवान को जब केवलज्ञान हो जाता है, उस काल में एक समय मात्र में भगवान तीनों लोकों और तीनों कालों को युगपत् जान लेते हैं।

इस प्रकार तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में केवलज्ञान के ग्यारह अतिशय माने हैं और अन्यत्र ग्रंथों में दश अतिशय माने हैं अतः तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में भगवान के केवलज्ञान के अनन्तर देवों द्वारा किए गए तेरह अतिशय ही माने हैं।

देवकृत तेरह अतिशय — १. तीर्थंकर भगवान के माहात्म्य से संख्यात योजनों तक वन-उद्यान असमय में पत्ते, फूल और फलों से वृद्धिंगत हो जाते हैं। २. सुखदायक हवा चलने लगती है जो कि धूलि, कंटक आदि को दूर कर देती है। ३. सभी जीव पूर्व वैर को छोड़कर मैत्रीभाव धारण कर लेते हैं। ४. भूमि दर्पण के समान स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है। ५. सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगंधित जल की वर्षा करते हैं। ६. देवगण विक्रिया से फलों के भार से झुकी हुई शालि, जौ आदि की खेती को बना देते हैं। ७. सर्व जीवों को नित्य ही आनंद उत्पन्न होता रहता है। ८. वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाते हैं। ९. कुएँ, तालाब, सरोवर आदि निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं। १०. आकाश धुएँ आदि से रहित निर्मल हो जाता है। ११. सभी जीवों को रोगादि की बाधाएँ नहीं होती हैं। १२. यक्षेन्द्र मस्तक पर किरणों से देदीप्यमान हजार आरों वाले धर्मचक्र को धारण करते हैं। १३. तीर्थंकर के चारों दिशाओं व विदिशाओं में छप्पन सुवर्णकमल, एक पादपीठ एवं विविध प्रकार के पूजन द्रव्य होते हैं।

अन्यत्र — नंदीश्वर भक्ति में चौदह अतिशय निम्न प्रकार से हैं[१] —

अर्द्धमागधी भाषा होती, सब जन मैत्री भाव सदा।
सब ऋतु के फल-फूल खिले, तरुलता सुशोभित हुए मुदा।।४२।।
पृथ्वी रत्नमयी दर्पणवत्, शोभित हुई चमकशाली।
परमानन्द करें सब जन को, मंद सुगंधित पवन चली।।४३।।
वायुकुमार सुगंधित वायु, से योजन तक पृथ्वी को।
धूलि-कंटक-तृण-पत्थर से, रहित स्वच्छ कर दिया अहो।।४४।।
मेघकुमार देव भी विद्युन्माला की बहु शोभा से।
इन्द्राज्ञा से सुरभि सुगंधित, गंधोदक वृष्टि करते।।४५।।

---

१. नंदीश्वर भक्ति, श्लोक ४२ से ५१।

जहाँ चरण प्रभु धरें वहाँ है, उत्तम स्वर्ण कमल खिलते।
आगे पीछे सात-सात, सौगंधित अतुल सुखद होते।।४६।।
शालि आदिक खेती के फल, भारों से झुकती पृथ्वी।
त्रिभुवनपति का वैभव लखकर, हर्षित हो रोमांच हुई।।४७।।
शरद ऋतु सम विमल सरोवर, सम निर्मल आकाश अहो।
सभी दिशाएँ तत्क्षण ही, तमरहित प्रकाशें सब थल को।।४८।।
आओ!आओ! देव! भवन-व्यंतर-ज्योतिष-वैमानिक सब।
इंद्राज्ञा से सभी तरफ से, त्वरित बुलावें सुरगण तब।।४९।।
हजार आरों से सुंदर बहु, रत्न किरणयुत अति चमके।
रविमंडल को हंसने वाला, धर्मचक्र चलता आगे।।५०।।
इस विधि मंगल आठ कहें, दर्पण आदिक अनुपम सुविशेष।
भक्तिराग युत देवेन्द्रों से, कल्पित बहुविध महा विशेष।।५१।।

भगवान के समवसरण में भगवान के सान्निध्य में यक्ष-यक्षिणी विद्यमान रहते हैं इन्हें शासन देव-देवी भी कहते हैं—

उनके नाम तिलोयपण्णत्ति में कहे हैं—

''**गोवदणमहाजक्खा.....**

१. गोवदन २. महायक्ष ३. त्रिमुख ४. यक्षेश्वर ५. तुंबुरव ६. मातंग ७. विजय ८. अजित ९. ब्रह्म १०. ब्रह्मेश्वर ११. कुमार १२. षण्मुख १३. पाताल १४. किन्नर १५. किंपुरुष १६. गरुड़ १७. गंधर्व १८. कुबेर १९. वरुण २०. भ्रकुटि २१. गोमेध २२. पार्श्व २३. मातंग—धरणेन्द्र २४. गुह्यक।

इस प्रकार ये भक्ति से संयुक्त चौबीस यक्ष हैं। ये ऋषभ आदि तीर्थंकरों के पास में स्थित रहते हैं।

१. चक्रेश्वरी २. रोहिणी ३. प्रज्ञप्ति ४. वज्रशृंखला ५. वज्रांकुशा ६. अप्रतिचक्रेश्वरी ७. पुरुषदत्ता ८. मनोवेगा ९. काली १०. ज्वालामालिनी ११. महाकाली १२. गौरी १३. गांधारी १४. वैरोटी १५. सोलसा १६. मानसी १७. महामानसी १८. जया १९. विजया २०. अपराजिता २१. बहुरूपिणी २२. कूष्मांडी—अम्बिका २३. पद्मावती और २४. सिद्धायिनी, ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों के समीप रहा करती हैं[१]।

समवसरण की महिमा—यद्यपि समवसरण का क्षेत्र और वहाँ बने हुए बारह कोठों का स्थान सीमा में रहता है फिर भी वहाँ असंख्यातों देव, देवियाँ, संख्यातों मनुष्य और संख्यातों तिर्यंच समा जाते हैं। ये सभी भव्यजीव जिनेन्द्र भगवान के माहात्म्य से ही एक-दूसरे से अस्पृष्ट—अबाधित रहते हैं।

जिनेन्द्रदेव की महिमा ही ऐसी है कि वहाँ अवगाहनशक्ति विशेष हो जाती है।

एक अक्षीणमहालय ऋद्धिधारी मुनि जहाँ बैठते हैं, उनके चारों ओर छोटे से स्थान में भी असंख्यातों जीव बैठकर उपदेश सुन सकते हैं तो पुनः अर्हंत देव तीर्थंकर की महिमा से यह सब अतिशय हो जावे, तो आश्चर्य ही क्या है?

समवसरण के माहात्म्य से बालक, वृद्ध आदि सभी जीव वहाँ प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २६६-२६७।

काल के भीतर ही संख्यात योजन चले जाते हैं और उन्हें थकान नहीं होती है।

वहाँ कोठों में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और मनरहित असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते हैं तथा संदेह आदि से सहित व विपरीत बुद्धि वाले जीव नहीं रहते हैं तथा वहाँ पर जिनेन्द्र भगवान के प्रभाव से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, कामबाधा, क्षुधा, तृषा और तृष्णा आदि नहीं होते हैं[१]।

हरिवंशपुराण में भी कहा है—

वहाँ समवसरण में पापी, विरोधी, विरुद्ध कार्य करने वाले, शुद्र, पाखंडी, नपुंसक, विकलांग, दो इन्द्रिय, तीन इंद्रिय, चार इन्द्रिय जीव तथा भ्रान्तचित्त के धारक मनुष्य बाहर ही घूमते रहते हैं, ये अन्दर प्रवेश नहीं कर पाते हैं[२]।

वहाँ समवसरण के भीतर भगवान के प्रभाव से न मोह रहता है, न राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, न उत्कंठा, रति एवं मात्सर्य रहते हैं, न अंगड़ाई और जमुहाई आती है, न नींद आती है, न तन्द्रा सताती है, न क्लेश होता है, न भूख लगती है, न प्यास लगती है और न सदा समस्त दिन कभी अन्य समस्त प्रकार के अमंगल ही होते हैं[३]।

समवसरण में गणधरदेव—इधर भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान प्रगट हुआ, उधर अयोध्या में भरत को तीन समाचार एक साथ प्राप्त हुए—पिता को केवलज्ञान, आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति और अन्तःपुर में पुत्ररत्न की प्राप्ति। भरत महाराज ने निर्णय किया कि पहले पिता श्री ऋषभदेव भगवान के केवलज्ञान की पूजा करना है अतः वे तत्क्षण ही समवसरण में आ गये और विधिवत् भगवान की वंदना-पूजा की।

इधर पुरिमताल नगर के स्वामी भरत के छोटे भाई ऋषभसेन समवसरण में आये, भगवान के दर्शन कर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर भगवान के प्रथम गणधर हो गये। उसी समय हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ, श्रेयांसकुमार भी दीक्षित हो गणधर हो गये।

भरत की छोटी बहन ब्राह्मी एवं बाहुबली की छोटी बहन सुंदरी ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली, तभी "प्रथम पुत्री" ब्राह्मी सर्व आर्यिकाओं में प्रधान गणिनी हो गईं। उस समय अनेक राजाओं ने एवं राजकन्याओं ने-महिलाओं ने दीक्षा ली थी। भरत के भाई अनंतवीर्य ने भी दीक्षा ले ली। वे इस अवसर्पिणी में सर्वप्रथम मोक्ष गये हैं। भगवान की दीक्षा के समय जो चार हजार राजा दीक्षित होकर तप से भ्रष्ट हो गये थे, उनमें से 'मरीचिकुमार' को छोड़कर सभी ने वहाँ समवसरण में दीक्षा ले ली।

दिव्यध्वनि—भगवान की दिव्यध्वनि से असंख्य भव्यप्राणियों ने धर्मामृत का पान किया। वहीं पर 'श्रुतकीर्ति' नाम के पुरुष ने श्रावक के उत्तम व्रत ग्रहण कर श्रावकों में प्रमुख कहलाये। प्रियव्रता नाम की श्राविका, श्रावक के उत्तम व्रतों को धारण करके श्राविकाओं में प्रमुख हुईं एवं उस समवसरण के मुख्य श्रोता भरतचक्रवर्ती प्रसिद्ध हुए हैं।

सहस्रनामस्तोत्र—वहाँ इन्द्रराज ने भगवान की स्तुति करते हुए एक हजार आठ नामों से भगवान की स्तुति की थी। महापुराण में वर्णित स्तुति ही 'सहस्रनाम स्तोत्र' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है।

भगवान का श्रीविहार—जब भगवान ऋषभदेव के श्रीविहार का समय आया तब सौधर्मेन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. २६६-२६७। २-३. पापशीला विकर्माणाः शूद्राः पाखंडपंडकाः। विकलांगेन्द्रियोद्भ्रान्ताः परियन्ति बहिस्ततः।।१७३।। (हरिवंशपुराण, सर्ग ५७, पृ. ६५८-६५९)

"हे भगवन्! भव्यजीवरूप धान्य पापरूपी अनावृष्टि से सूख रहे हैं, सो हे प्रभो! आप 'तीर्थविहार' करके धर्मरूपी अमृत से उन्हें सींचकर उनके लिए आप ही शरण होइये।" हे त्रैलोक्यनाथ! आपकी विजय के उद्योग को सिद्ध करने वाला यह 'धर्मचक्र' तैयार है।

इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद भगवान का 'तीर्थविहार' प्रारंभ हुआ।

वास्तव में भगवान न तो इच्छापूर्वक विहार करते हैं और न इन्द्र की प्रार्थना से भी करते हैं, उनका श्रीविहार निसर्गतः होता है फिर भी यह सब व्यवस्था नियोगरूप ही है।

जैसे ही भगवान तीर्थविहार के लिए खड़े हुए, वैसे ही करोड़ों देव इधर-उधर व्यवस्था में लग गए। इंद्रगण भी भगवान के दिग्विजय के समय आगे-आगे हो गए।

उस समय आगे-आगे की पृथिवी दर्पण के समान स्वच्छ हो गई। पवनकुमार जाति के देवों ने एक योजन तक की भूमि को धूलि आदि से साफ कर दिया। मेघकुमार देवों ने सुगंधित जल की कण-कणरूप से वर्षा कर पृथ्वी को रजरहित सुगंधित कर दिया।

शालि आदि खेत लहलहाने लगे। सभी वृक्षों व लताओं में एक साथ छहों ऋतुओं के फल, फूल आ गए। सभी मनुष्य व पशु-पक्षीगण भी आपस में मैत्री भाव को प्राप्त हो गए। भगवान के माहात्म्य से चार सौ कोश तक पृथ्वी पर सुभिक्ष हो गया, सब प्रकार से कल्याण व आरोग्य हो गया। पृथ्वी प्राणियों की हिंसा से रहित हो गई, करोड़ों ध्वजाएं फहराने लगीं। देवों ने गंभीर दुंदुभि बजाना प्रारंभ कर दिया। आकाशरूपी रंगभूमि में देवांगनाएँ नृत्य करने लगीं। किन्नर जाति के देव मनोहर गीत गा रहे थे और गंधर्व आदि देव वीणा बजा रहे थे।

धर्मचक्र—उस समय हजार आरों से सहित करोड़ों सूर्यों की प्रभा को लज्जित करने वाला धर्मचक्र भगवान के आगे-आगे चल रहा था।

भगवान के चरण कमलों के नीचे सुगंधित सुवर्णमयी कमल खिलते जा रहे थे। देवों के जय-जयकारों से आकाश भी व्याप्त हो गया था।

हरिवंशपुराण में लिखा है—

भगवान के श्रीविहार के समय कुबेर ने घोषणा शुरू कर दी कि-'जिसको जिस वस्तु की इच्छा हो, यहाँ आकर ले ले।' उस समय कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाली भूमि मणिमयी बनाई गई।

आकाश से धन की बड़ी मोटी धारा मेघ के जल के समान बरसने लगी, जिससे वसुंधरा अपने सार्थक नाम को प्राप्त हो गई।

प्रावृषेण्याम्बुधारेव, वसुधारा वसुंधरां।
दिवोऽन्वर्थाभिधानत्वं, नयतीन्यपतत्पथि[१]।।५।।

सभी लोकपाल देव समस्त दिग्भागों के साथ सबकी रक्षा कर रहे थे। कितने ही देव समस्त हिंसक जीवों को दूर से ही भगा रहे थे।

जिनके परिवार की देवियों ने मंगलद्रव्य धारण किए हुए थे तथा जिन्होंने अपने हाथों में कमल लिए हुए थे, ऐसी पद्मा और सरस्वती देवी भगवान की प्रदक्षिणा देकर उनके आगे-आगे चल रही थीं।

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग ६१, पृ. ६९४ से।

इन्द्र हाथ जोड़कर वहाँ-वहाँ के राजाओं के साथ आगे-आगे चल रहे थे। उस समय कुबेर मार्ग को सुशोभित करता हुआ आगे चल रहा था।

आकाशमार्ग में धर्मचक्र भगवान के आगे-आगे चल रहा था। ऋषिगण भगवान के पीछे चल रहे थे। इन्द्र प्रतीहार बनकर आठ वसुदेवों के साथ भगवान के आगे-आगे चलते थे। इन्द्र के आगे तीन लोक की उत्कृष्ट विभूति से युक्त 'लक्ष्मी' नामक देवी, मंगलद्रव्य लिए शची देवी के साथ-साथ जा रही थी। तदनंतर श्री देवी से सहित समस्त एवं परिपूर्ण मंगलद्रव्य विद्यमान थे, क्योंकि मंगलमय भगवान की मंगलमय यात्रा मंगलद्रव्यों से युक्त ही होती है। उनके आगे जिन पर देदीप्यमान मुकुट के धारक प्रमुख देव बैठे थे, ऐसी शंख और पद्म नाम की दो निधियाँ चलती थीं। ये निधियाँ समस्त जीवों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करने वाली थीं तथा सुवर्ण और रत्नों की वर्षा करती जाती थीं। उनके आगे फणाओं पर चमकते हुए मणियों की किरणरूप दीपकों से युक्त नागकुमार जाति के देव चलते थे। उनके आगे धूपघटों को धारण करने वाले समस्त अग्निकुमार देव चल रहे थे। धूपघटों में खेयी गई सुगंधित धूप की सुगंधि लोक के अन्त तक फैल रही थी। वह जिनेन्द्रदेव के यश की सुगंधि को ही फैला रही थी। तदनंतर शांत और तेज गुण को धारण करने वाले, भगवान के भक्त चन्द्र और सूर्य जाति के देव अपनी प्रभा के समूहरूप मंगलमय दर्पण को धारण करते हुए चल रहे थे।

धर्मचक्र का माहात्म्य — जहाँ-जहाँ भगवान का धर्मचक्र चल रहा था, वहाँ-वहाँ किसी का असमय में मरण नहीं होता था। भगवान के विहार क्षेत्र में स्थित समस्त त्रस और स्थावर जीव सुख को प्राप्त हो रहे थे। जो जीव भगवान की इस दिव्ययात्रा में साथ-साथ जाते थे, पृथ्वी पर उन्हें धन आदि समस्त आश्चर्यों की प्राप्ति हो जाती थी। जिस देश में भगवान का श्रीविहार होता था, उस देश में भगवान की आज्ञा न होने से ही मानों किसी को न तो मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ होती थीं और न अतिवृष्टि आदि ईतियाँ ही होती थीं। वहाँ अंधे रूप देखने लगते थे, बहरे शब्द सुनने लगते थे, गूंगे स्पष्ट बोलने लगते थे और लंगड़े चलने लगते थे। वहाँ न अत्यधिक गर्मी होती थी, न अत्यधिक ठंड पड़ती थी, न दिन-रात का विभाग होता था और न अन्य अशुभ कार्य अपनी अधिकता दिखला सकते थे। सब ओर शुभ ही शुभ कार्यों की वृद्धि होती थी।

भगवान जिस-जिस दिशा में पहुँचते थे, उसी-उसी दिशा के दिक्पाल पूजन की सामग्री लेकर भगवान के स्वागत के लिए आ पहुँचते थे। भगवान जिस-जिस दिशा से वापस जाते थे, उस-उस दिशा के दिक्पाल मंगलद्रव्य लिये अपनी-अपनी सीमा तक पहुँचाने आते थे, क्योंकि भगवान तीनलोक के सार्वभौम स्वामी थे[१]।

सो ठीक ही है क्योंकि —**''तित्थयरस्स विहारो लोयसुहो।''**

तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव का श्रीविहार सम्पूर्ण लोक के सुख के लिए ही होता है। हरिवंशपुराण में लिखा है —

आसंवत्सर-मात्मांगैः, प्रथयन्प्राभवीं गतिं।
भासते रत्नवृष्ट्याध्वा-भरोत्यैरावतो यथा।।१०५।।
विहारानुगृहीतायां, भूमौ न डमरादयः।
दशाभ्यस्तयुगं भर्तुरहोऽत्र महिमा महान्।।१०८।।

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग ५९, पृ. ७०२।

अर्थात् जिस मार्ग से भगवान का विहार हो जाता है वह मार्ग, अपने चिन्हों से एक वर्ष तक यह प्रगट करता था कि यहाँ भगवान का विहार हुआ है तथा रत्नवृष्टि से वह मार्ग ऐसा सुशोभित होता था जैसे नक्षत्रों के समूह से ऐरावत हाथी सुशोभित होता है। उस समय मंद बुद्धि के धारक मनुष्य तीक्ष्ण बुद्धि के धारक हो गये थे। समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो गये थे और भगवान के समीप रहने वालों को खेद, पसीना, पीड़ा और चिंता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होते थे। भगवान से अनुगृहीत भूमि में दो सौ योजन तक विप्लव आदि नहीं होते थे। अथवा दश से गुणित युग अर्थात् पचास वर्ष तक उस भूमि में कोई भी उपद्रव आदि नहीं होते थे। यह भगवान की बहुत ही महान महिमा समझनी चाहिए।[१]

भगवान के समवसरण में दर्शन का प्रभाव — एक बार भगवान के समवसरण में विवर्द्धनकुमार आदि नव सौ तेईस राजकुमार, जो कि चक्रवर्ती भरत के पुत्र थे, यह वहाँ पहुँचकर दर्शन कर बोल पड़े और भगवान की स्तुति कर दीक्षा ग्रहण कर ली। ये निगोद से आये थे, इन्होंने इसके पूर्व कभी त्रसपर्याय पाई ही नहीं थी। समवसरण के प्रभाव से वे प्रतिबोध को प्राप्त हो गये और एकदम दीक्षा ले ली, ये उसी भव से मोक्ष गये हैं।

सूर्यवंश — भगवान ऋषभदेव इच्छ्वाकुवंशी थे। भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के नाम से इसी वंश को सूर्यवंश नाम से भी जाना जाने लगा।

भगवान के भरत चक्रवर्ती, कामदेव बाहुबली, वृषभसेन गणधर आदि सभी एक सौ पुत्रों ने दीक्षा ली है और मोक्षपद प्राप्त किया है।

इस वंश में भरत को आदि लेकर चौदह लाख राजा लगातार मोक्ष गये हैं। इसके बाद एक राजा दीक्षा लेकर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ, फिर अस्सी राजा मोक्ष गये, इत्यादिरूप से स्वर्ग-मोक्ष की परम्परा चलती रही है[२]।

यदि कोई कहे कि साक्षात् भगवान के समवसरण की जो महिमा है, सो आज पंचमकाल में जिनप्रतिमा के दर्शन से नहीं हो सकती है ?

यद्यपि यह सत्य है, फिर भी जिनप्रतिमा के दर्शन का फल भी अचिन्त्य है। उदाहरण के लिए देखिए- 'षट्खण्डागम' महान ग्रंथराज की 'धवला' टीका में लिखा है —

जिणबिंबदंसणेण, णिधत्तणिकाचिदस्स वि।
मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो[३]।।

जिनप्रतिमा के दर्शन से निधत्त और निकाचित भी मिथ्यात्वादि कर्मसमूह का विनाश देखा जाता है, अतएव जिनबिम्बदर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में बहिरंग कारण माना गया है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, पापसंघातकुंजरम्।
शतधा भेदमायाति, गिरिर्वज्रहतो यथा[४]।।

जिनेन्द्रदेव के दर्शन से पापों के समूह के सौ-सौ खंड हो जाते हैं जैसे कि वज्र के प्रहार से पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

द्युति नाम के महान् आचार्य अयोध्या में श्रीरामचन्द्र के वन में चले जाने के बाद खिन्नमना 'भरत' को समझाते हुए कहते हैं कि-

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग ५९, पृ. ७०३। २. हरिवंशपुराण सर्ग १३, पृ. २१७। ३-४. धवला पुस्तक ६, पृ. ४२७।

हे भरत! जब रामचंद्र वन से लौटकर आयेंगे, तब तुम दीक्षा ले लोगे तुमने यह प्रतिज्ञा की है, सो तो ठीक ही है फिर उनके आने तक तुम गृहस्थ धर्म का पालन करो क्योंकि यह गृहस्थधर्म — श्रावक धर्म भी मुनिधर्म का छोटा भाई है। उसी के अन्तर्गत वे आचार्यदेव जिनदर्शन की महिमा का फल बतलाते हुए कहते हैं —

फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य, षष्ठस्योद्यानमात्रतः।
अष्टमस्य तदारम्भे, गमने दशमस्य तु।।
द्वादशस्य ततः किंचिन्मध्ये पक्षोपवासजम्।
फलं मासोपवासस्य, लभते चैत्यदर्शनात्।।
चैत्यांगणं समासाद्य, याति षाण्मासिकं फलम्।
फलं वर्षोपवासस्य, प्रविश्य द्वारमश्नुते।।
फलं प्रदक्षिणीकृत्य, भुक्ते वर्षशतस्य तु।
दृष्ट्वा जिनबिम्बमाप्नोति, फलं वर्षसहस्त्रजम्।।
अनन्तफलमाप्नोति, स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः।
नहि भक्तेजिनेन्द्राणां, विद्यते परमुत्तमम्।।
कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां, क्षयं भरत गच्छति।
क्षीणकर्मा पदं याति, यस्मिन्ननुपमं सुखं[१]।।''

''जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिंतवन करता है वह बेला का, जो गमन का अभिलाषी होता है वह तेला का, जो जाने का आरंभ करता है वह चौला का, जो जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता है, वह पन्द्रह उपवास का, जो मंदिर के दर्शन करता है वह मासोपवास का, जो मंदिर के आँगन में प्रवेश करता है वह छह मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्ष के उपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का, और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनन्त उपवास का फल प्राप्त करता है। यथार्थ में जिनभक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है। आचार्य कहते हैं कि हे भरत! जिनेन्द्रदेव की भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं, वह अनुपम सुख से सम्पन्न परम पद को प्राप्त कर लेता है।''

जिनमंदिर की व जिनप्रतिमा की पूजा के फल में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं —

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में वत्सकावती देश में 'सुसीमा' नगरी है। उसके राजा चक्रवर्ती वरदत्त थे। एक समय नगर के बाहर ''गंधमादन'' पर्वत पर 'शिवघोष' तीर्थंकर भगवान के समवसरण में चक्रवर्ती आदि भव्य जीव दर्शन करने लगे। वहाँ पहुँचकर वंदना-पूजा करके अपने-अपने कोठे में बैठ गए। उसी समय स्वर्ग से प्रधान देवों ने 'दो देवियों' को साथ में लाकर सौधर्मेन्द्र से कहा — हे इन्द्रराज! ये आपकी देवियाँ हैं। ऐसा कहकर उन्हें समर्पित कर दिया। यह देख चक्रवर्ती ने पूछा —

भगवन्! इन देवियों को पीछे से क्यों लाया गया है? तभी तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सुनकर गणधर देव ने कहा —

---

१. पद्मपुराण पर्व ३२, पृ. ९८

सम्राट्! सुनो, इनका चरित मैं सुनाता हूँ। इसी नगर में कुसुमावती और पुष्पलता नाम की दो बहनें एक माली की कन्याएँ थीं। वे प्रतिदिन 'पुष्पकरंडक' वन से पुष्पों को चुनकर ले जाते समय मार्ग में स्थित जिनमंदिर की देहली पर एक-एक पुष्प चढ़ाकर दर्शन करके घर जाती थीं। आज उस वन में पहुँचने पर उन दोनों को सर्प ने काट दिया, इससे मरकर वे अन्तर्मुहूर्त में ही प्रथम स्वर्ग में देवियाँ उत्पन्न हुई हैं।

दूसरी कथा इस प्रकार है—इसी आर्यखंड में कुंतलपुर देश में एक 'तेरपुर' नगर था। वहाँ वसुमित्र सेठ के ग्वाले ने एक बार एक तालाब से एक 'सहस्रदल—हजार पांखुडी वाला कमल तोड़ दिया। तभी एक देवी ने प्रगट होकर कहा-जो सबसे अधिक पूज्य हो, उसे ही यह कमल देना। ग्वाले ने आकर अपने सेठ से कहा, सेठ ने राजा से कहा—राजा सेठ और ग्वाले को साथ लेकर 'सहस्रकूट' जिनमंदिर पहुँचे, वहाँ विराजमान 'सुगुप्त' मुनि से पूछा-भगवन्! लोक में सर्वश्रेष्ठ कौन हैं? मुनि ने कहा-सर्वश्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान हैं जिनकी प्रतिमाएँ यहाँ मंदिर में विराजमान हैं। तभी ग्वाले ने जिनेन्द्र भगवान के सामने वह कमल चढ़ा दिया और नमस्कार करके घर आ गया। कालान्तर में यह ग्वाला इस पुण्य के फल से राजा 'करकण्डु' हुआ है।

इसकी कथा 'पुण्यास्रव' कथाकोश से पढ़ना चाहिए।

ऐसे ही जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के अपमान से कितने कटुकर्म बंधते हैं। उसकी संक्षिप्त कथा सुनो—जब अंजना ने गर्भवती अवस्था में वसंतमाला सखी के साथ घोर जंगल में एक गुफा में विराजमान मुनिराज के दर्शन करके अपने पूर्वभव पूछे, तब महामुनि ने अपने अवधिज्ञान से कहा-पुत्रि! पूर्व भव में तू महारानी 'कनकोदरी' थी। लक्ष्मीमती नामक अपनी सौत से क्रोध करके अभिमानवश हो उसके घर चैत्यालय में विराजमान जिनप्रतिमा को उठवाकर घर के बाहर फिकवा दिया। इसी बीच वहाँ 'संयमश्री' आर्यिका आहार के लिए आई थीं। इस घटना को जानकर उन्होंने मौन छोड़कर आहार का त्यागकर दिया और रानी कनकोदरी को समझाया और कहा—

हे रानी! तू इस पाप से नरकों में जाकर घोर कष्ट को भोगेगी अतः मेरे कहने से तू इस पाप का प्रायश्चित्त कर और धर्म में चित्त लगा। आर्यिकाश्री के सम्बोधन से रानी नरक जाने से डर गई और 'जिनप्रतिमा' को वापस मँगाकर यथास्थान विराजमान करा दिया पुनः आर्यिकाश्री से धर्मश्रवण कर अपनी शक्ति के अनुसार व्रत-तप आदि स्वीकार किये। इस पुण्य के फल से वह आयु के अंत में मरकर स्वर्ग में देवी हुई पुनः वहाँ से च्युत हो महेन्द्रनगर के राजा महेन्द्र की रानी मनोयोगा से पुत्री अंजना हुई है। पूर्वभव के जिनप्रतिमा के अपमान से इसने बाईस वर्ष तक पति के वियोग का दुःख सहा है। पुनरपि पाप शेष रहने से यह झूठा कलंक लगाकर सास के द्वारा निकाली गई है अब इसके पुत्र रत्न के जन्म के पश्चात् सर्वसुख प्राप्त होंगे। इत्यादि।

इस प्रकार जिनप्रतिमा के दर्शन, पूजन की महिमा को जानकर व उनके अपमान का महान दुःखदायी फल जानकर संसार के दुःख से डरने वालों को भगवान की भक्ति करके मनुष्यपर्याय को सफल करना चाहिए।

प्रशस्ति

–शंभुछंद–

तीर्थंकर समवसरण त्रिभुवन, में सर्वोत्तम अतिशायी है।
यतिवृषभाचार्य आदि वर्णित, गणधर वंदित सुखदायी है।।
इसको पढ़ते वंदन करते, प्रभु समवसरण वंदन होगा।
सीमंधर प्रभु के समवसरण का, निश्चित ही दर्शन होगा।।१।।

श्री मूलसंघ में कुंदकुंद, आम्नाय सरस्वति गच्छ कहा।
विख्यात बलात्कारगण से, गुरु आम्नायों में मुख्य रहा।
इस परम्परा के आचार्यों का, मैं नित वंदन करती हूँ।
बीसवीं सदी के प्रथम सूरि, श्री शांतिसिंधु को नमती हूँ।।२।।

उन पट्टाचार्य सुशिष्य प्रथम, श्री वीरसागराचार्य हुए।
गुरुवर्य आर्यिका दीक्षा दे, मुझ ज्ञानमती को धन्य किये।।
वीराब्द पच्चीस सौ उनतालिस[१], वर पौष शुक्ल दशमी तिथि में।
यह ग्रंथ 'समवसरण रचना', इसको संकलित किया मैंने।।३।।

पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों से, अमृतमय वचन ग्रहण करके।
संकलित किया ग्रंथ मैंने, अतिशय आल्हादित हो करके।
सब भव्यों को ज्ञानामृत का, आनंद मिले भावना यही।
जब तक भूपर जिनशासन है, यह ग्रन्थ सुशोभित करे मही।।४।।

–दोहा–

गणिनी ज्ञानमती ग्रथित, ग्रन्थ रहे चिरकाल।
जिनगुणसंपति देय कर, कर दे मालामाल।।५।।

१. वीर नि. सं. २५३९, ई. सन् २०१३।

समवसरण का ध्यान

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ तीर्थंकराय नमः

-गणिनी ज्ञानमती

षोडशं तीर्थकर्तारं, पंचमं चक्रवर्तिनम्।
द्वादशं कामदेवं च, शांतिनाथं नमाम्यहम्।।

भगवान को केवलज्ञान प्रगट होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अर्धनिमिष में समवसरण की रचना कर देता है। उस समय भगवान तीनों लोकों को और उनकी भूत, भावी, वर्तमान समस्त पर्यायों को युगपत् एक समय में जान लेते हैं।

भगवान शांतिनाथ का समवसरण पृथ्वी से ५००० धनुष (२०००० हाथ) ऊपर आकाश में अधर है। पृथ्वी से एक हाथ ऊपर से एक-एक हाथ ऊँची बीस हजार सीढ़ियाँ हैं। इनसे चढ़कर मनुष्य और तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव-बाल, वृद्ध, अंधे, लूले, लंगड़े, रोगी आदि अंतर्मुहूर्त (४८ मिनट) में ऊपर पहुँच जाते हैं। भगवान शांतिनाथ का समवसरण साढ़े ४ योजन (३६ मील) का गोल है।

इसमें चार परकोटे और पाँच वेदियाँ हैं। इनके आठ भूमियाँ हैं। चारों दिशाओं में बहुत ही विस्तृत वीथी बड़ी-बड़ी गलियाँ हैं।

इस समवसरण में क्रम से पहले धूलिसाल परकोटा, चैत्यप्रासाद भूमि, वेदी खातिकाभूमि, वेदी, लताभूमि, परकोटा, उपवनभूमि, वेदी, ध्वजभूमि, परकोटा, कल्पभूमि, वेदी, भवनभूमि, परकोटा, श्रीमण्डपभूमि और वेदी है। आगे १६ सीढ़ी ऊपर चढ़कर पहली कटनी, ८ सीढ़ी चढ़कर दूसरी कटनी, पुनः ८ सीढ़ी चढ़कर तीसरी कटनी है। इसी पर भगवान विराजमान हैं।

प्रत्येक परकोटे और वेदियों में चारों दिशाओं में एक-एक गोपुर द्वार हैं। जिनमें से पूर्वदिशा में "विजय", दक्षिण में "वैजयंत" पश्चिम में "जयंत" और उत्तर में "अपराजित" ऐसे नाम हैं। इन चारों के उभय पार्श्व में दो-दो नाट्यशालाएं हैं, जिनमें देवांगनाएं भगवान की भक्ति में विभोर हो नृत्य-गान करती रहती हैं। वहाँ द्वारों के दोनों और नवनिधि, मंगलघट और घूपघट आदि स्थित हैं। प्रत्येक परकोटे के द्वारों पर देवगण हाथ में दण्ड, मुदगर आदि लेकर रक्षक बनकर खड़े हुए हैं।

समवसरण में प्रवेश करते ही चारों गली में दिव्य रत्नमय मानस्तंभ हैं जो कि भगवान से बारहगुने ऊँचे हैं। भगवान शांतिनाथ के शरीर की ऊँचाई १६० हाथ है अतः ये बारहगुणे १६०×१२=१९२० हाथ ऊँचे हैं। बीस योजन तक प्रकाश फैलाते हैं। इनके दर्शन से मानी का मान गलित हो जाता है और वह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बनकर अनंत संसार को सीमित कर लेता है।

केवली भगवान के प्रभाव से चारों तरफ चार सौ कोस तक सुभिक्षता, हिंसा और उपसर्गादि का अभाव, सभी जन्मजात शत्रु-सिंह, हिरण आदि का आपस में मैत्री भाव, छहों ऋतुओं के फल-फूलों का एक साथ आ जाना आदि अतिशय हो जाते हैं।

भगवान के श्रीविहार में आकाश में अधर, उनके चरण के नीचे देवगण स्वर्णमय सुगंधित दिव्य कमलों को

रचते जाते हैं और अहिंसा धर्म के दिग्विजय को सूचित करता हुआ 'धर्मचक्र' भगवान के आगे-आगे चलता है एवं सरस्वती-लक्ष्मी देवी आजू-बाजू में चलती हैं। आकाशगामी ऋद्धिधारी साथ में चलते हैं असंख्य देव-देवियाँ, इन्द्रादिगण पीछे-पीछे चलते हैं एवं साधारण मुनि, आर्यिकाएं, मनुष्य, पशु आदि नीचे-नीचे चलते हैं। जहाँ भगवान रुक जाते हैं वहाँ पुनः कुबेर समवसरण की रचना कर देता है।

समवसरण में आठ भूमि और तीन कटनी

इस समवसरण में ये आठों भूमियाँ कटनी-कटनी पर नहीं है। प्रत्युत समतल भूमि पर हैं। पुनः आगे तीन कटनी हैं, जिनके ऊपर—तीसरी कटनी पर गंधकुटी में भगवान विराजमान हैं।

१. पहली "चैत्यप्रासादभूमि" हैं, इसमें एक-एक जिनमंदिर के अंतराल में पांच-पांच प्रासाद हैं।

२. दूसरी "खातिकाभूमि" हैं, इसके स्वच्छ जल में हंस आदि कलरव कर रहे हैं और कमल आदि पुष्प खिले हैं।

३. तीसरी "लताभूमि" हैं, इसमें छहों ऋतुओं के पुष्प खिले हुए हैं।

४. चौथी "उपवनभूमि" हैं, इसमें पूर्व आदि दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन हैं। प्रत्येक वन में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं जिनमें ४-४ जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। प्रत्येक प्रतिमाओं के सामने एक-एक मानस्तंभ हैं।

५. पांचवी "ध्वजाभूमि" हैं, इसमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन दस चिन्हों से सहित महाध्वजाएं और उनके आश्रित लघुध्वजाएं १०८-१०८ हैं। सब मिलाकर ४,७०,८८० हैं।

६. छठी "कल्पभूमि" हैं, इसमें भूषणांग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। चारों दिशा में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात ऐसे एक-एक सिद्धार्थवृक्ष हैं। इनमें चार-चार सिद्धप्रतिमाएं विराजमान हैं ।

७. सातवीं "भवनभूमि" में भवन बने हुए हैं। इस भूमि के पार्श्व भागों में अर्हंत और सिद्धप्रतिमाओं से सहित नौ-नौ स्तूप हैं।

८. आठवीं "श्रीमण्डपभूमि" हैं, इसमें १६ दीवालों के बीच में १२ कोठे हैं जिनमें १. गणधरादि मुनि, २. कल्पवासिनी देवी, ३. आर्यिका और श्राविका, ४. ज्योतिषी देवी, ५. व्यंतर देवी, ६. भवनवासिनी देवी, ७. भवनवासी देव, ८. व्यंतर देव, ९. ज्योतिष देव, १०. कल्पवासी देव, ११. चक्रवर्ती आदि मनुष्य और १२. सिंहादि तिर्यंच, ऐसे बारहगण के असंख्यातों भव्यजीव बैठकर धर्मोपदेश सुनते हैं। वहां पर रोग, शोक, जन्म, मरण, उपद्रव आदि बाधाएं नहीं हैं।

पुनः प्रथम कटनी पर आठ महाध्वजाएं हैं, द्वितीय कटनी पर आठ मंगलद्रव्य आदि है। तृतीय कटनी पर गंधकुटी में सिंहासन पर लाल कमल की कर्णिका पर भगवान शांतिनाथ चार अंगुल अधर विराजमान हैं। इनका मुख एक तरफ होते हुए भी चारों तरफ दिखने से ये चतुर्मुखी ब्रह्मा कहलाते हैं। भगवान के पास अशोकवृक्ष, तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल, चौंसठ चंवर, सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि बाजे और हाथ जोड़े सभासद ये आठ महाप्रातिहार्य हैं। वहीं पर गरुड़ यक्ष और महामानसी यक्षी विद्यमान हैं।

इन शांतिनाथ भगवान को मेरा अनंतबार नमस्कार हो।

(तिलोयपण्णत्ति हरिवंशपुराण और समवसरण स्तोत्र के आधार से)

योजन एवं कोस बनाने की विधि

पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी टुकड़े को परमाणु कहते हैं।

ऐसे अनंतानंत परमाणुओं का	१ अवसन्नासन्न
८ अवसन्नासन्न का	१ सन्नासन्न
८ सन्नासन्न का	१ त्रुटिरेणु
८ त्रुटिरेणु का	१ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु का	१ रथरेणु
८ रथरेणु का	उत्तम भोगभूमियों के बाल का १ अग्र भाग
उत्तम भोगभूमियों के बाल के ८ अग्रभागों का	मध्यम भोगभूमियों के बाल का १ अग्र भाग
मध्यम भोगभूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	जघन्य भोगभूमियों के बाल का १ अग्र भाग
जघन्य भोगभूमियों के बाल का ८ अग्र भागों का	कर्मभूमियों के बाल का १ अग्र भाग
कर्मभूमियों के बाल के ८ अग्र भागों का	१ लीख
८ लीख का	१ जूँ
८ जूँ का	१ जव (पड़ी जव)
८ जव का	१ अंगुल

इसे ही उत्सेधांगुल कहते हैं। इस उत्सेधांगुल का ५०० गुणा प्रमाणांगुल होता है।

६ उत्सेध अंगुल का	१ पाद
२ पाद का	१ बालिस्त
२ बालिस्त का	१ हाथ
२ हाथ का	१ रिक्कू
२ रिक्कू का	१ धनुष
२००० धनुषों का	१ कोस
४ कोस का	१ लघु योजन
५०० लघु योजनों का	१ महायोजन

२००० धनुष का १ कोस है। अतः १ धनुष में ४ हाथ होने से ८००० हाथ का १ कोस हुआ एवं १ कोस में २ मील मानने से ४००० हाथ का १ मील होता है।

एक महायोजन में २००० कोस होते हैं। एक कोस में २ मील मानने से १ महायोजन में ४००० मील हो जाते हैं। अतः ४००० मील के हाथ बनाने के लिए १ मील सम्बन्धी ४००० हाथ से गुणा करने पर ४००० × ४००० = १६,००,०००० अर्थात् एक महायोजन में १ करोड़ साठ लाख हाथ हुये।

वर्तमान रैखिक माप में १७६० गज का १ मील मानते हैं। यदि १ गज में २ हाथ मानें तो १७६० × २ = ३५२० हाथ का एक मील हुआ। पुनः उपर्युक्त १ महायोजन के हाथ १६००००० में ३५२० हाथ का भाग देने से

१६०००००० ÷ ३५२० = ४५४५ $\frac{5}{11}$ आये। इस तरह एक महायोजन में वर्तमान माप से ४५४५ $\frac{5}{11}$ मील हुए।

परन्तु इस स्थूल रूप से व्यवहार में १ कोस में २ मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के २००० कोस को २ मील से गुणा कर एक महायोजन के ४००० मील मानकर उसी से ही गुणा किया जाता है।

जैन सिद्धान्त में ४ कोस का लघु योजन एवं २००० कोस का महायोजन माना है। यहाँ समवसरण की रचना लघु योजन से है अतः इस लघु योजन में ४ कोश व आठ मील होते हैं।

भजन

-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज–सोनागिरी में सोना.....

शांति-कुंथु-अरनाथ की प्रतिमा प्यारी हैं।
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।
तीन लोक की रचना सुन्दर बन गई,
ज्ञानमती माताजी की भावना रही।।
शांति-कुंथु-अरनाथ की प्रतिमा प्यारी हैं।
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।टेक.।।

हस्तिनापुर तीर्थ की धरती हुई पावन।
जो तीन तीर्थंकर प्रभू के जन्म से है धन्य।।
त्रय बार पन्द्रह मास तक बरसे जहाँ रतन।
उस तीर्थ अरु तीर्थंकरों को हम करें वंदन।।
जिनकी महिमा तीन लोक में न्यारी है,
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।1।।

तीनों प्रभू हैं तीन पदवी से सहित कहे।
तीर्थेश एवं चक्रवर्ती कामदेव रहे।।
छह खण्ड की तब राजधानी हस्तिनापुर थी।
फिर चार-चार कल्याणकों से भी पवित्र हुई।।
सुरनर वंदित जिनकी माँ अति प्यारी हैं,
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।2।।

प्रतिमा विशाल बनीं प्रथम ही बार प्रभु त्रय की।
श्री शांतिनाथ व कुंथु अर तीनों जिनेश्वर की।।
इक साथ हो गया मस्तकाभिषेक तीनों का।
अब पूर्ण हो गया स्वप्न माता ज्ञानमति जी का।।
यही "चन्दनामती" खुशी अब भारी है,
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।3।।

चौबीस तीर्थंकरों की कल्याणक तिथियाँ

(नोट-ये पंचकल्याणक की तिथियाँ श्री गुणभद्र आचार्य विरचित उत्तरपुराण केआधार से दी जा रही हैं)

महीना-पक्ष-तिथि	भगवान के नाम	कल्याणक
आषाढ़		
आषाढ़ कृ. 2	आदिनाथ	गर्भ
आषाढ़ कृ. 6	वासुपूज्यनाथ	गर्भ
आषाढ़ कृ. 8	विमलनाथ	निर्वाण
आषाढ़ कृ. 10	नमिनाथ	जन्म, तप
आषाढ़ शु. 6	महावीर	गर्भ
आषाढ़ शु. 7	नेमिनाथ	निर्वाण
श्रावण		
श्रावण कृ. 2	मुनिसुव्रत	गर्भ
श्रावण कृ. 10	कुंथुनाथ	गर्भ
श्रावण शु. 2	सुमतिनाथ	गर्भ
श्रावण शु. 6	नेमिनाथ	जन्म, तप
श्रावण शु. 7	पार्श्वनाथ	निर्वाण
श्रावण शु. 15	श्रेयांसनाथ	निर्वाण
भाद्रपद		
भाद्रपद कृ. 7	शांतिनाथ	गर्भ
भाद्रपद शु. 6	सुपार्श्वनाथ	गर्भ
भाद्रपद शु. 8	पुष्पदंतनाथ	निर्वाण
भाद्रपद शु. 14	वासुपूज्यनाथ	निर्वाण
आश्विन		
आश्विन कृ. 2	नमिनाथ	गर्भ
आश्विन शु. 1	नेमिनाथ	केवलज्ञान
आश्विन शु. 8	शीतलनाथ	निर्वाण
कार्तिक		
कार्तिक कृ. 1	अनन्तनाथ	गर्भ
कार्तिक कृ. 4	संभवनाथ	केवलज्ञान
कार्तिक कृ. 13	पद्मप्रभु	जन्म, तप
कार्तिक कृ. अमा.	महावीर	निर्वाण
कार्तिक शु. 2	पुष्पदंतनाथ	केवलज्ञान
कार्तिक शु. 6	नेमिनाथ	गर्भ
कार्तिक शु. 12	अरहनाथ	केवलज्ञान
कार्तिक शु. 15	संभवनाथ	जन्म
मगसिर		
मगसिर कृ. 10	महावीर	तप
मगसिर शु. 1	पुष्पदंत	जन्म, तप
मगसिर शु. 10	अरहनाथ	तप
मगसिर शु. 11	मल्लिनाथ	जन्म, तप
मगसिर शु. 11	नमिनाथ	केवलज्ञान
मगसिर शु. 14	अरहनाथ	जन्म
मगसिर शु. 15	संभवनाथ	तप
पौष		
पौष कृ. 2	मल्लिनाथ	केवलज्ञान
पौष कृ. 11	चन्द्रप्रभ-पार्श्वनाथ	जन्म, तप
पौष कृ. 14	शीतलनाथ	केवलज्ञान
पौष शु. 10	शांतिनाथ	केवलज्ञान
पौष शु. 11	अजितनाथ	केवलज्ञान
पौष शु. 14	अभिनंदननाथ	केवलज्ञान
पौष शु. 15	धर्मनाथ	केवलज्ञान
माघ		
माघ कृ. 6	पद्मप्रभ	गर्भ
माघ कृ. 12	शीतलनाथ	जन्म, तप
माघ कृ. 14	आदिनाथ	निर्वाण

महीना-पक्ष-तिथि	भगवान के नाम	कल्याणक
माघ कृ. अमा.	श्रेयांसनाथ	केवलज्ञान
माघ शु. 2	वासुपूज्य	केवलज्ञान
माघ शु. 4	विमलनाथ	जन्म,तप
माघ शु. 6	विमलनाथ	केवलज्ञान
माघ शु. 9	अजितनाथ	तप
माघ शु. 10	अजितनाथ	जन्म
माघ शु. 12	अभिनन्दननाथ	जन्म, तप
माघ शु. 13	धर्मनाथ	जन्म, तप
फाल्गुन		
फाल्गुन कृ. 3	अरहनाथ	गर्भ
फाल्गुन कृ. 4	पद्मप्रभु	निर्वाण
फाल्गुन कृ. 6	सुपार्श्वनाथ	केवलज्ञान
फाल्गुन कृ. 7	सुपार्श्वनाथ	निर्वाण
फाल्गुन कृ. 7	चन्द्रप्रभु	केवलज्ञान
फाल्गुन कृ. 9	पुष्पदंत	गर्भ
फाल्गुन कृ. 11	श्रेयांसनाथ	जन्म, तप
फाल्गुन कृ. 11	आदिनाथ	केवलज्ञान
फाल्गुन कृ. 12	मुनिसुव्रतनाथ	निर्वाण
फाल्गुन कृ. 14	वासुपूज्यनाथ	जन्म, तप
फाल्गुन शु. 5	मल्लिनाथ	निर्वाण
फाल्गुन शु. 7	चन्द्रप्रभु	निर्वाण
फाल्गुन शु. 8	संभवनाथ	गर्भ
चैत्र		
चैत्र कृ. 5	चन्द्रप्रभु	गर्भ
चैत्र कृ. 8	शीतलनाथ	गर्भ
चैत्र कृ. 9	आदिनाथ	जन्म, तप
चैत्र कृ. 14 या 4[1]	पार्श्वनाथ	केवलज्ञान
चैत्र कृ. अमा.	अनन्तनाथ	केवलज्ञान, निर्वाण
चैत्र कृ. अमा.	अरहनाथ	निर्वाण
चैत्र शु. 1	मल्लिनाथ	गर्भ
चैत्र शु. 3	कुंथुनाथ	केवलज्ञान
चैत्र शु. 5	अजितनाथ	निर्वाण
चैत्र शु. 6	संभवनाथ	निर्वाण
चैत्र शु. 11	सुमतिनाथ	जन्म, केवलज्ञान, निर्वाण
चैत्र शु. 13	महावीर	जन्म
चैत्र शु. 15	पद्मप्रभु	केवलज्ञान
वैशाख		
वैशाख कृ. 2	पार्श्वनाथ	गर्भ
वैशाख कृ. 9	मुनिसुव्रतनाथ	केवलज्ञान
वैशाख कृ. 10	मुनिसुव्रतनाथ	तप
वैशाख कृ. 12	मुनिसुव्रतनाथ	जन्म
वैशाख कृ. 14	नमिनाथ	निर्वाण
वैशाख शु. 1	कुंथुनाथ	जन्म, तप, निर्वाण
वैशाख शु. 6	अभिनंदननाथ	गर्भ, निर्वाण
वैशाख शु. 9	सुमतिनाथ	तप
वैशाख शु. 10	महावीर	केवलज्ञान
वैशाख शु. 13	धर्मनाथ	गर्भ
ज्येष्ठ		
ज्येष्ठ कृ. 6	श्रेयांसनाथ	गर्भ
ज्येष्ठ कृ. 10	विमलनाथ	गर्भ
ज्येष्ठ कृ. 12	अनन्तनाथ	जन्म, तप
ज्येष्ठ कृ. 14	शांतिनाथ	जन्म, तप, निर्वाण
ज्येष्ठ कृ. अमा.	अजितनाथ	गर्भ
ज्येष्ठ शु. 4	धर्मनाथ	निर्वाण
ज्येष्ठ शु. 12	सुपार्श्वनाथ	जन्म, तप

१. चैत्र कृ. १४ उत्तरपुराण में है। चैत्र कृष्णा ४ अन्य ग्रंथों के आधार से प्रसिद्ध है।